ार की लाज

लेखक—

त्याग, ममता, ठोकर आदि के रचयिता

श्रीयुत रामसुन्दर श्रीवास्तव, साहित्यरत्न



प्रकाशक—

जनता पुस्तक मन्दिर

नीचीबाग

बनारस सिटी

थम स्करण

मूल्य ३।)

प्रकाशक—

जनता पुस्तक मन्दिर

बनारस

१

"यौवन की अवगुण्ठन में, रजनी रजत-दोल पर पैंगे मारती हुई झूल रही थी। चन्द्रिका की मदभरी किरणें मुग्धा सी नीलिमा की हल्की चादर में मोतियाँ पिरो रही थीं। आकाश में हँस रहा था हिमकर, आनन्द विभोर होकर, मचल मचल कर। शस्य श्यामला की भीगी अञ्चल में लिपटी हुई वसुधा का रजत-शृङ्गार हो रहा था। कोमल-वृन्तों पर यौवन की अंगड़ाई अपनी अरुणिमा [illegible] छुपकर नवस्फुटा कलियाँ वायु से अठखेलियाँ कर रही थीं। [illegible] से लिपटी लतायें मौन-वन्दना कर रही थीं, रजनी-रूपसी के लिए चन्द्र तारिकाओं की आरती सजा रहा था।......परन्तु [illegible] सोर्दिल कलिका-सी, बिखरी सौन्दर्य राशि-सी खड़ी थी [illegible], निस्तब्ध ज्योत्स्ना। निराशा-सी मौन वाणी, पीड़ित-[illegible] में विभोर थी। वह भाभी के शब्दों से सिहर उठी थी, "सौन्दर्य क्षणिक है, यौवन उसकी एक मतवाली छाया है जो [illegible] एक-सी नहीं रहती।"

[illegible] गर्व में फूलने लगी, आकांक्षायें जीवन-संगीत की [illegible] तिरोहित होने लगीं। अचानक पीछे से स्वर फूटा—

[illegible]! इस निशीथ में तुम यहाँ कैसे? पिता के वात्सल्य प्रेम [illegible] तरंगें [illegible] हो रही थीं। अहमन्यता ने कठोर [illegible] कर लिया, [illegible] की लालसायें अनुकूल गति पा रही थीं। [illegible] वाणी चन्द्रिका के समान मौन थी, [illegible] मूक भावना, हृदय-विह्वलता की सूचक थी।

"ज्योत्स्ना तुम बोलती क्यों नहीं हो ?" पिताजी पूछते। वह चुप रहती, निश्चल नीहारिका-सी, अपलक नेत्रों से पृथ्वी पर देखती हुई। प्रश्नों की झड़ी लग जाती "बेटी, तुम मौन क्यों हो ? तुम्हें क्या हो गया है ?" पिता ने देखा ज्योत्स्ना को गम्भीर मुद्रा में जाते हुए।

हृदय सिहर उठा, नेत्र विस्फारित हो गए, आश्चर्य की एक हलकी चीख पिता के मुख से निकल पड़ी। पग आगे बढ़ चले, हृदय की ज्वार लहरियों में मन्थन प्रारम्भ हो गया। उन्होंने देखा ज्योत्स्ना को प्रस्तर-मूर्ति-सी अचल, उद्यान के वृक्ष की डाल को पकड़े हुए। वात्सल्य की ममता उस मौन को नहीं सह सकती थी। ममता की प्रेरणा बढ़ चली। वे मातृहीन बेटी के समीप आ गए और उसके कन्धों पर हाथ रखते हुए बोले—"ज्योत्स्ना, बताओ तुम्हें क्या हो गया है ? मैं तुम्हें उदास नहीं देख सकता !"

पुत्री की ममता पिता के वात्सल्य से सनी थी। पिता के करुण स्वरों ने पुत्री की अन्तरात्मा तक कँपा डाली। अहमन्यता की डोरी पर उड़ता हुआ हृदय शनैः शनैः नीचे आ गया। ज्योत्स्ना घूम पड़ी और पिता के सामने खड़ी हो गयी, नमित मुख झाँयी सी कलिका की भाँति। पिता ने देखा—एक आभाहीन परछाईं संकोच तथा लज्जा की आड़ में छिपने का प्रयत्न कर रही है।

"कुछ कहो ज्योत्स्ना !" उसको झकझोर कर पिता ने वाणी की सुकुमारता, मौन की व्याकुलता, अश्रुरूप में नेत्रों से बरस पड़ी। पिता के नेत्रों में भी छलछला लड़ियों के कुछ स्वच्छ और पिघलने वाले मोती। " तुम जानती हो ज्योत्स्ना ! मैं तुम्हारी उदासीनता को

हो जाता। मैं तुम्हारे इस चन्द्रमुख पर उदासीनता के बादल नहीं देखना चाहता। मैं तुम्हें सर्वदा विकसित और झूमती कलिका के रूप में देखना चाहता हूँ। मुझे किसी की चिन्ता नहीं है, मैं तुम्हारे सुख के लिए इतने बड़े ऐश्वर्य की पूजा कर रहा हूँ, अवस्था की हड्डियों से तुम्हारे भावी भाग्य-निर्माण के महल की नींव डाल रहा हूँ। ज्योत्स्ना, तुम्हें याद है कि तुम्हारी स्नेहमयी माता ने मुझसे मरते समय क्या कहा था? केवल यही कि ज्योत्स्ना की आत्मा में मेरी आत्मा सन्निहित है, उसकी हँसी में मेरी मुस्कराहट है, उसे भूल कर भी उदास मत होने देना। ज्योत्स्ना मेरी प्रतिमूर्ति है" पिता का गला भर आया। ज्योत्स्ना अवाक्-सी सुन रही थी और देख रही थी पिता की ममता का एक चल-चित्र।

व्यथा पूर्ववत् थी, मैंने विश्व का सुख केवल तुम्हारे सुख के लिए बलिदान कर दिया है, मुझे कुछ नहीं चाहिए, केवल तुम्हारे अल्हाद की एक वाणी ही मेरे सन्तप्त हृदय-मरुस्थल को लहलहाने में सफल है। तुम्हारे आज की स्थिति ने मेरे इतने बड़े शक्तिशाली हृदय को द्रवित कर दिया है। इस शरद की निशीथ बेला में तुम्हें विश्व-आलोकित करने वाले हिमकर-हास पर अश्रु-अर्चना करते देख मेरी वृद्ध-छाती दहक उठी है।

ज्योत्स्ना फूट पड़ी, शून्य की गम्भीर गूँज की भाँति, ऊषा-बेला में चहकती कलियों की भाँति, एक सिहरन और एक तड़पन लिए—"पिताजी! आज भाभी की कटूक्तियों ने मुझे निराश कर दिया है, मेरे आशारूपी महल की एक एक ईंटे ढहा दी है, भाभी को मेरे सौन्दर्य और स्वतन्त्रता से ईर्ष्या है, वह मेरे स्वतन्त्र जीवन को नहीं देख सकतीं।"

"पगली ज्योत्स्ना! बस केवल इसी बात के लिए मौन को

अखंड साधना कर रही थी। भाभी के शब्दों से तुम जानती हो वह तुमसे बड़ी हैं, उनका तुमको समझाना एक [illegible]य है और उसको सुनकर उसपर चलना तुम्हारा धर्म है।' [illegible] भयंकर ज्वालामुख को छाती में दबाकर मुख पर कृत्रिम [illegible]लाते हुए पिता ने कहा और उसके मस्तक पर हाथ फेरने लगे।

पिता का अभय वरदान पाकर स्वतन्त्र रूप से [illegible] करने वाली हरिणी के समान ज्योत्स्ना पुनः थिरकने लगी, [illegible]सी वसुधा के रजत शृङ्गार के ऊपर अपनी अनुपम प्रतिभा बिखरती हुई। चल पड़ी ज्योत्स्ना, गर्विता मयूरिनी की भाँति अपने पंख फैलाती हुई और सगर्व नेत्रों से पृथ्वी पर देखती हुई मानो सारा शृङ्गार उसके पाद-पद्मों पर लुटाया जा रहा हो। पिता [illegible] किसी गूढ़ चिन्ता में डूब उदास से, जीवन के युद्ध में [illegible]जित-से चले जा रहे थे।

ज्योत्स्ना अपने कक्ष में पहुँची। दीप-शिखा को [illegible] गई द्वार कौच पर बैठ गयी। अपनी सफलता पर कक्ष की प्रत्येक वस्तुओं को तुच्छ दृष्टि से देखने लगी। अकस्मात उसका [illegible] दीवाल पर चमकते हुए दर्पण पर पड़ा। एक अप्सरा की छाया उस दर्पण में चमक उठी। विस्मित-सी, विह्वल-सी, लोल लहरियों के भँवर-सी वह चंचल हो गयी। उसने देखा एक अनुपम सौन्दर्य, विश्व-नियन्ता का एक मधुर खिलौना, जो अपने आप को देखकर विस्मय कर रहा हो। कुटिल अलकों से घिरा चन्द्रमुख, मदभरे विशाल नयन, कटाक्षों से सजा चितवन, मुख की [illegible] अरुणिमा, खिल उठी। वह तन्मय होकर स्वयं को देखने [illegible] आलोचक की भाँति, भूली हुई स्मृति की भाँति। सौन्दर्य, जी[illegible] और साकार सौन्दर्य। उसकी अतृप्त पिपासा, सुधा का, [illegible] का, जगत की ऐश्वर्यमयी कल्पना का पान करने लगी। परन्तु [illegible]

सन्तोष न था। एक प्यास थी, कोमल हृदय की कोमलतम भावनाओं की जो उसको, उसकी चेतना को विस्मृति की लहरों में भुलावा दे रहा था। जिस सौन्दर्य की प्रतिभा से कवि, चित्रकार तथा गायक सभी मत्त रहते हैं, उसका संचित कोष मेरे हृदय-मञ्जूषा में बन्द है। उसकी मैं स्वामिनी हूँ परन्तु उसपर मेरा कोई अधिकार नहीं। यह रूप, यह अनुपम रूप जिसकी समता बन-देवियाँ नहीं कर सकतीं, जिनको देखकर ऊषा की अरुणिमा पीली पड़ जाती है, सन्ध्या की लाली क्षितिज के कोरों में छिपने का प्रयत्न करने लगती है—उस अखंड, अनन्त, असीम वैभव की साम्राज्ञी ज्योत्स्ना, आज इस भवन के एक छोटे कक्ष में बन्द है। भयंकर विडम्बना है, तिसपर प्रताड़ना मेरे रूप और यौवन पर।

परन्तु...विचारों की कल्पना सीमा में बन्ध गयी। वह विचारों की तन्मयता में भूलने-सी लगी।

अभिमान की चरम सीमा क्रोध है। आहत अभिमान की वेदना बड़ी दुखदायी होती है। यदि यह पहले शान्त नहीं हुई तो आगे चलकर उसमें भयंकर लहरों के समान मन्थन होने लगता है। भयंकर आँधी के आने के पूर्व जिसप्रकार आकाश धूमिल हो उठता है, प्रकृति मौन हो जाती है, उसीप्रकार क्रोध के पूर्व एक आहत शान्ति में प्रलयंकर ताण्डव होने लगता है जो मानव-जीवन में सिहरन पैदा कर देती है। अभिमान की व्यङ्गोक्ति, क्रोध का परिचय मात्र है। अभिमान की साक्षात् मूर्ति ज्योत्स्ना, क्रोध के अभिशाप पर विजय प्राप्त करके सो रही। विशाल भवन के सुसज्जित प्रकोष्ठ में, दे... मानो विजय-महत्वाकांक्षी नारी का स्वरूप धारण कर सफ-को ...ता की गोद में थी।

परन्तु ज्योत्स्ना के पिता, नगर के भूतपूर्व जज बाबू उमेशचन्द्र एक गद्देदार कोच पर बैठे सिगार के धुयें में अपने जीवन की धुँधली रेखा देख रहे थे। उनकी भावी आशा पर आज पहला आघात हुआ था। स्वप्नों की मधुर कल्पना पर निराशा के हलके बादल दिखाई पड़े थे। हृदय में विचारों का मन्थन था, नेत्रों में संसार का भावी चित्रपट था। पाश्चात्य सभ्यता का बरदान लिए उमेशचन्द्र जीवन को एक खेल समझते थे और ऐश्वर्य के आँधी के सम्मुख संघर्षों की छाया को मलीन समझ बैठे थे। पाश्चात्य वातावरण का प्रभाव आपके रोम रोम में व्याप्त था और इसी का परिणाम था कि ज्योत्स्ना स्वच्छन्दता और अल्हड़ता से होड़ ले रही थी। आज रात्रि की घटना ने बाबू उमेशचन्द्र को एक बड़े रहस्यमय उलझन में डाल दिया था। ज्योत्स्ना की स्वच्छन्द-प्रवृत्ति से आप परिचित थे और आप भी उसे पूर्ण स्वतन्त्र देखना चाहते थे। परन्तु जहाँ सीमा लघुता का बन्धन है वहाँ किसी किसी वस्तु की अधिकता उसके विनाश का कारण भी। इस द्वन्द में पड़े उमेशचन्द्र आज जीवन के अन्तिम पटाक्षेप में, सफलता की सीमा को अनन्त में देख रहे थे, जहाँ तक पहुँचना उनकी शक्ति के बाहर था।

ज्योत्स्ना की भाभी लज्जा के शब्दों ने जिस प्रकार ज्योत्स्ना के हृदय में एक तूफान खड़ा कर दिया था, उसी प्रकार बाबू उमेशचन्द्र के भी हृदय को एक उलझन में डाल दिया था। लज्जा सचमुच लज्जा ही थी, साक्षात सौन्दर्य की मूर्ति, कोमलता तथा मधुरता की दीर्घ छाया, नारी-सुलभ सुविधों का पूँजीभूत उस दुबले पतले गौराङ्ग कलेवर पर भ्रू कटाक्ष से तनी आँखें सौभाग्य की अचल रेखा से सुशोभित विशाल भाल तथा सुन्दरता लहरों पर सरसिज की हल्की मुसकान खेल रही थी और बिखरी।

रही थी एक नारी जीवन की पवित्र प्रतिभा, जिसको देवी का प्रसाद कहते हैं। वह ज्योत्स्ना की भाँति सुशिक्षित नहीं थी, उसे स्वच्छन्दता का अमर वरदान नहीं मिला था और न उसे यही मालूम था कि भारतीय नारी भी स्वतन्त्र रह सकती है। उसे विज्ञान दर्शन का ज्ञान न था, साहित्य के आनन्द से कोसों दूर थी, फिर भी उसके पास एक रत्न था जो उसके हृदय को गौरव के साथ प्रकाशित कर रहा था, वह था नारी का सुन्दर आदर्श। जिसके सहारे वह बाबू उमेशचन्द्र के सम्मुख निर्मल होकर बोलती, जिसके भरोसे वह अपने पति सुरेशचन्द्र का कंठहार बनी हुई थी। यद्यपि वह एक आधुनिक वातावरण से प्रभावित परिवार में जीवन व्यतीत कर रही थी फिर भी उसमें कृत्रिमता का समावेश न था, विचारों में असम्बद्धता न थी और न भावों में परिवर्तन ही। यह बात नहीं कि ज्योत्स्ना से घृणा थी; वरन उसे आदर्श नारी के रूप में देखने के लिये ही, वह कभी २ उस पर दो चार छींटे डाल दिया करती थी। उसे भी ज्योत्स्ना पर उतनी ही ममता थी, जितनी उसके पिता और भाई को थी। परन्तु ज्योत्स्ना अपनी भाभी की इस अकपट स्नेह को समझने में असमर्थ थी।

शैशव से ही, प्रेम और ऐश्वर्य के पलनों में झूलती हुई ज्योत्स्ना आज यौवन की सीमा को छू रही थी। वह बी० ए० पास हो चुकी थी। आधुनिक विश्वविद्यालय के वातावरण में उसने अपने को एक सजीव चित्र की भाँति देखा था। विद्यार्थी जीवन की चंचलता उसके साथ अभी खेल रही थी।

प्राची के धुँधले पट को हटाकर ऊषा ने स्वप्नमय संसार को देखा और पक्षियों के कलरव के साथ ताली बजाकर निद्रित संसार को जगाने का उपक्रम करने लगी। पलभर में गुलाल रंग में

रंगा हुआ सूर्य गगन-प्राङ्गण के कण कण को स्पर्श करने का प्रयत्न करने लगा। प्रातःकाल की अरुण रश्मियाँ ज्योत्स्ना के सुप्त मुख पर निछावर होने लगीं। एकाएक भावों की मूर्छा हटी। ज्योत्स्ना ने आँखें खोलीं तो सारे पिछले स्वप्न अदृश्य थे। उसे विदित हुआ कि उसका रत्नागार लुट गया है। वह चौंक-सी पड़ी परन्तु कुछ देर बाद इधर उधर उच्छृखलों की भाँति ठिठक-सी गयी, मानों चढ़ा हुआ नशा उतर रहा हो। वह उठी और रात्रि की घटना का स्मरण करती दर्पण के सम्मुख जा खड़ी हुई। रात्रि की रूपसी का लुटा हुआ यौवन दर्पण में झाँकने लगा, सौन्दर्य की प्रतिमा उदास खड़ी थी केवल स्मृति को विस्मृत करने के लिए। दर्वाजा खुला और दासी ने पूछा—चाय ले आऊँ ?

"नहीं, जाओ।"

दासी क्षण भर के लिए रुकी और चली गयी। ज्योत्स्ना एक बार खिड़की के बाहर झाँककर कुछ देखना ही चाहती थी कि दर्वाजा पुनः खुला और उसकी भाभी लज्जा ने धीरे से प्रवेश किया। ज्योत्स्ना पीछे घूमी, भाभी को अकस्मात आया देखकर अवाक् हो रही। पैर भूमि से सट गए, वाणी गले में अवरुद्ध हो गयी। नेत्र एकबार गर्व से उठे परन्तु संकोच और शील ने उसे नत कर दिया। वह नीचे देखने लगी गर्व में फूली आशा की भाँति। भाभी ने सारा भेद समझ लिया। वह ज्योत्स्ना के स्वभाव से परिचित थी और उसे यह भी विदित था कि पिछले दिन उसी ने ज्योत्स्ना को प्रताड़ना दी थी। ज्योत्स्ना को क्रोधित देखकर भाभी से न रहा गया। वह दुखित होते हुए भी हँस कर बोली:—

"ज्योत्स्ना क्या तुम मुझसे अप्रसन्न हो ?" शब्दों में कोमलता थी, परन्तु न मालूम क्यों ज्योत्स्ना की क्रोधाग्नि और धधक उठी

उसने समझा कि अब ये और जले पर नमक छिड़कने आयी हैं। उसका मुख-मंडल लाल हो उठा, फिर भी वह मौन थी। लज्जा से भी न रहा गया। वह व्यंग-मिश्रित स्वर में बोली—

"क्या मेरे शब्दों से अधिक चोट लगती है ज्योत्स्ना ?"

"चोट ही नहीं लगती है, घाव हो जाता है।" ज्योत्स्ना फूटे घड़े की भाँति फूट पड़ी।

लज्जा के मुख पर कातरता की पीली आभा दौड़ गयी। उसे अपने हृदय की दुर्बलता पर बड़ा क्रोध आया। वह बड़ी देर तक स्तम्भित-सी खड़ी रही। फिर धीरे धीरे ज्योत्स्ना के सन्निकट आकर उसका हाथ पकड़ते हुए बोली—"मेरी बातों से बिगड़ गईं रानी। मैंने तो केवल हँसी में वे बातें कही थीं। मेरा विचार तुम्हारा दिल दुखाना न था। मेरे कहने का अभिप्राय केवल यह था कि सौन्दर्य-मद उस तीव्र शराब का-सा नशा है जो स्त्री को विवेक से दूर ला पटकता है। आजकल की अधिकांश लड़कियाँ अपने रूप-शृङ्गार के भुलावे में आकर अपनी स्त्री-सुलभ मर्यादा खो बैठती हैं। मेरा संकेत उन स्वतन्त्र और स्वच्छन्द लड़कियों की ओर था कि जो गार्हस्थ-जीवन के सुख को उपेक्षा की दृष्टि से देखती हैं और वाह्याडम्बर के झकोरों में फँसकर अपने को गिरा देती हैं—न कि तुम्हारी ओर।

एक सहारा पाते ही ज्योत्स्ना भी थिरकने लगी:—

"तो क्या आप उन लड़कियों से घृणा करती हैं जो किसी से तर्क वितर्क करतीं अथवा किसी पार्टी या डिनर में सम्मिलित होती हैं।

नहीं घृणा तो नहीं करती परन्तु उनका यशगान भी नहीं करती, स्त्री होकर पुरुष की बराबरी करना ही अपने को अवनति के गढ़े में ढकेलना है।"

"तो आप का यह विचार है कि पुरुष सर्वशक्तिमान परमात्मा बना रहे और स्त्रियाँ उनके इशारों पर नाचने वाली दासियाँ। आज संसार के अन्तर्गत जितने भी देशों ने सफलता प्राप्त की है, उसमें स्त्रियों ने पर्याप्त सहयोग दिया है।"

"स्वीकार करती हूँ मैं तुम्हारे इस तर्क को, पर इतने ही से हमारे कर्तव्य की इतिश्री नहीं हो जाती। मुख्य भाग तो रह ही जाता है। और वह है पति में लीन होकर उसके बसाये संसार में लीन हो जाना। इसका साम्प्रत पूर्णरूपेण अभाव-सा है और यही कारण है कि आज की स्त्रियों को वास्तविक सुख प्राप्त नहीं होता और वे अपने निराशामय जीवन से घृणा करने लगती हैं और भयंकर से भयंकर कार्य्य करने के लिए प्रस्तुत हो जाती हैं।"

"तब तो स्त्रियों को नर्क का कीड़ा बनना ही ठीक है न भाभी। पुरुष, समाज का निर्माणकर्ता है इसलिए वह कभी भी स्त्री जाति को अग्रसर न होने देगा। वह तो नारियों को विलासिता की एक वस्तु समझता है और इसके आगे कुछ नहीं।

"ठीक है ज्योत्स्ना! परन्तु तुम जानती हो कि भारत में नारी का पद पुरुष से कितना ऊँचा है। उन्हें देवियों का पद प्राप्त है। जब यही देवियाँ अपने महान लक्ष्य से विमुख होकर पुरुष के साथ रहकर समान अधिकार की प्राप्ति की आशा करने लगती हैं तो वे स्वयं अपने पद से नीचे आ जाती हैं।"

"तब तो पुरुषों को स्त्रियों की क्या आवश्यकता है, वे स्वयं सब काम कर लेंगे।"

"नहीं ऐसा नहीं है, स्त्री पुरुष का प्राण है, आत्मा है। स्त्री में पुरुष को महान बना देने की शक्ति है, नारी मानव जीवन का एक शृङ्गार है। तभी तो बड़े २ लोगों ने स्त्रियों की प्रशंसा

की है और करते चले आ रहे हैं"—इतने में रमेशचन्द्र बाहर से घूमकर आ गए और भीतर आकर लज्जा से बोले—

"ज्योत्स्ना को कौन सा उपदेश दे रही हो ?"

इसी तरह कुछ बातें हो रही थीं। आजकल उपदेश देना तो एक परम्परा है जिसका प्रभाव एक चिकने घड़े पर पानी की बूँदों के सदृश होता है।"

"तुम उदास क्यों हो ज्योत्स्ना ?"

डूबते को तिनके का सहारा मिला। निरालम्ब, निस्सहाय ज्योत्स्ना को पुनः एक सुदृढ़ किनारा मिला। वह कहने लगी:—

"भैया ! मैं आजकल सब की आँखों का काँटा हो रही हूँ।"

"क्या कहा" आश्चर्य से सुरेशचन्द्र के नेत्र तन गए।

"हाँ भैया, मेरी स्वतन्त्रता पर लोगों को ईर्ष्या है।"

"तो क्या तुम्हारी भाभी ने तुम्हें कुछ कहा है।" कहते हुए सुरेशचन्द्र ने अपनी वक्र दृष्टि लज्जा की तरफ फेंकी और गम्भीर होकर बोले—"देखो, खिलती हुई कली को पैरों से कुचल देना शक्ति और साहस का परिचायक नहीं—तुम ज्योत्स्ना से बड़ी हो—बड़े होने के अधिकार का दुरुपयोग करना ही छोटे की आँखों से उतर जाना है। इसे कभी नहीं भूलना चाहिये।" पति की बात लज्जा अधिक न सह सकी। उसे बड़ी मानसिक पीड़ा हुई। उसे आशा न थी कि केवल एक बात के लिए गृह में भूकम्प का-सा अनुभव होगा। वह प्रातःकालीन किरणों के समान पीली पड़ गयी और चुपचाप कमरे से बाहर हो गयी। सुरेशचन्द्र भी किसी चिन्ता में धीरे धीरे चल पड़े, परन्तु ज्योत्स्ना अचल-समाधि-सी चुप थी।

× × × ×

२

सम्राटों की क्रीड़ास्थली, रंगमहलों की सजीव पुतली दिल्ली हँस रही थी अपने भाग्य परिवर्त्तन पर रीझ रीझ कर तथा खीझ खीझ कर। दिल्ली की गलियों ने कई बार दीवाली मनायी थी और दीवाला भी। ऐश्वर्य की विलासिता में डूबी थी और कत्ले-आम की अरुण-धारा में भी। सुख के सजीव सपने देखे थे और दुख की प्रत्यक्ष कल्पना भी। इतिहास के पन्नों से झाँकती दिल्ली अब भी वर्त्तमान है, परन्तु उसकी वक्षस्थली पर कितने आये और चले गए। यही है संसार चक्र !

उसी प्रतिभा-सम्पन्न नगरी के एक भाग में बाबू उमेशचन्द्र जज का भवन चमक रहा है। सामने एक छोटा सा बगीचा है। उसके उस ओर कुछ गरीबों की झोपड़ियाँ हैं, जिसके रहने वाले प्राणी मनुष्य होते हुए भी मनुष्यता के अधिकारी नहीं थे। भवन के चारों ओर ऊँचे २ वृक्षों की सघन छाया में पक्षियों का कल-रव होता रहता। उसी प्रकृति की हलकी छाया में ज्योत्स्ना पक्षियों की भाँति स्वतन्त्र होकर चहकना चाहती। वह छोटे छोटे बच्चों की क्रीड़ा देखकर मचल-सी पड़ती, आनन्द में विभोर होकर थिरक उठती।

दिन भर का थका सूर्य अपने विश्राम-गृह की ओर जा रहा था। ज्योत्स्ना भवन के फाटक पर साइकिल से उतरी।

साइकिल लेकर जाता हुआ नौकर बोला—

"हुजूर ! अब तो यह अच्छी चलती है।"

हँसती हुई ज्योत्स्ना बोली—"हाँ, हाँ, अब तो मानों इसे दो दो पङ्ख लग गये हैं, हवा से बातें करती है और पगली की तरह भागती है।"

"हुजूर! यह एक बार बड़े सरकार को लिए दिये मोटर से लड़ गयी थी तभी से सरकार ने इसपर चढ़ना छोड़ दिया था।"

ज्योत्स्ना हाँ हाँ कहती हुई अपने कमरे में पहुँची और टेबिल-फैन खोलकर कोच पर बैठ गयी। दासी चाय लेकर आयी। ज्योत्स्ना ने पूछा—पिताजी कहाँ हैं?

"कहीं नाच देखने गए हैं" दासी ने कहा।

"अकेले।"

"जी हुजूर।"

ज्योत्स्ना किसी अज्ञात वेदना से व्यथित हो गयी, परन्तु क्षण भर बाद ही अनमनी-सी बोल उठी—

"अच्छा वह रामदास की नयी बहू कैसी है?"

"बड़ी अच्छी है सरकार! देखने में तो साक्षात् लक्ष्मी है परन्तु उसका भी भाग्य—"

"भाग्य क्या?" शब्दों में उत्सुकता थी।

"यही कि उसकी सास बड़ी कठोर है, उसे अभी ही तालाब पर बर्तन माँजने भेजती है। कुयें से पानी भरवाती है। वह लज्जा से मरी जाती है।"

"तब तो बड़ी बुरी बात है। अभी नयी बहू है, उसको अच्छी तरह रखना चाहिए न कि आग की तरह उसपर बरसना।"

"क्या कहूँ सरकार! वह बुढ़िया बड़ी कठोर है।"

"इस समय वह कहाँ होगी, उसको देखने की मेरी बड़ी इच्छा है।"

"अभी तालाब पर ही होगी, सरकार।"

"तब मैं अभी जाती हूँ" कहकर वह तनकर खड़ी हो गयी और झूमती हुई तालाब की ओर चल पड़ी, एक सौभाग्यवती का दर्शन करने।

रामदास की नवविवाहिता वधू प्रभा, सन्ध्या को अपने भाग्य का ऐश्वर्य लिए तालाब के किनारे आकर खड़ी हो गयी। उसने तालाब को शून्य नेत्रों से देखा और एक लम्बी श्वाँस लेकर बर्तन माँजने सीढ़ी पर बैठ गयी। स्मृतियाँ उसके हृदय को नीड़ बना रही थीं, बचपन का गृह, सखियों के साथ क्रीड़ा, स्वतन्त्र प्राणी की भाँति बगीचों में तथा खेतों की पगडंडियों पर दौड़ना। उसी वेदना में दो चार आसुओं की बूदें टप से गिर कर तालाब के जल में मिल जाते। वह सिहर उठती परन्तु बर्तन सामने थे। पुन: अपने भाग्य को माँजने लगती। सन्ध्या हो गयी, प्रकाश किसी सुदूर देश के लिए चल पड़ा और अन्धकार धीरे धीरे फैलने लगा। सर्दी के कुँहासे से वस्तुयें अधिक प्रत्यक्ष नहीं दिखलायी पड़ती थीं। उसे अब भय मालूम हो रहा था। शीघ्रता में वह बर्त्तनों का बोझ लेकर उठी और ज्यों ही घूमी कि उसकी मुठभेड़ एक स्त्री से हो गयी। वह स्त्री बिजली सी चमक पड़ी—

"अन्धी है क्या रे, दिखाई नहीं देता कि कौन आ रहा है?"

"क्षमा बहन! अन्धेरे में दिखलायी नहीं पड़ा।"

"जवानी सभी को अन्धा बना देती है। नयी बहू है न, अभी सबसे टक्कर लेगी तभी तो बाद में बादल की तरह गरजेगी"

मुझसे अपराध हो गया, मैंने जान बूझकर नहीं धक्का दिया। व्यर्थ का दोष न लगाओ।"

"दोष क्यों न लगाऊँ, तुम क्या इन्द्र की परी हो जो मुझे तुम्हारा डर होगा। मारे घमण्ड के जमीन पर तो पैर भी नहीं पड़ते और चली है बात बनाने।"

प्रभा का दुबला पतला शरीर काँपने लगा और काँपती बोली—

"हाथ जोड़ती हूँ, जाने दो, मुझसे अपराध हुआ क्षमा करो।"

"अपराध क्यों न होगा, पति के घमण्ड में है। भगवान यदि मुझे विधवा न बनाता तो तुम्हें तो एक ही झपेटे में ठीक कर देती। जिस बात पर घमण्ड करती हो वह सदा नहीं रहेगा।"

सिहर उठी प्रभा किसी अज्ञात वेदना से। उसकी वाणी रुक गई, वह अन्धकार में खड़ी थी कि अचानक 'टार्च' का प्रकाश चमका और ज्योत्स्ना अन्धकार में चमक उठी। प्रभा के नेत्र चकाचौंध हो गये उस सुन्दर रमणी को देखकर। वह अपने फटे अंचल से अपने को छिपाने का प्रयत्न करने लगी। दूसरी स्त्री जो भर्त्सना कर रही थी ज्योत्स्ना को देखते ही अन्धकार में अन्धकार ही की भाँति मिल गयी। बच गयी केवल प्रभा और ज्योत्स्ना उस नीरवता में शान्त और गम्भीर प्राणी की भाँति। ज्योत्स्ना का हृदय एक भार से, एक उद्वेलित विचार-माला से मथ रहा था, यौवन का उन्माद सहानुभूति के रूप में बदल रहा था। नारी-सुलभ लज्जा बिखरना चाहती थी परन्तु मध्य में थी एक अपरिचिता प्राणी की मूक भावना। ज्योत्स्ना का स्वर भावनाओं के मूर्छना में तिरोहित होता हुआ फूट पड़ा:—

"तुम इतनी रात में यहाँ कैसे आती हो, डर भी नहीं लगता"

वह चुप थी, मौन थी, एक नारी के सम्मुख जो अपरिचिता हो, जो अनजान हो।

ज्योत्स्ना ने उसकी स्वाभाविक सुलभता को मौन के आवरण में छिपते हुए देखा। वह भी कुछ देर के लिए मौन हो गयी, कदाचित किसी प्रेरणा के वशीभूत होकर, जो उसे प्रभा की आन्तरिक भावनाओं की जानकारी के लिए बाध्य कर रही थी।

ज्योत्स्ना ने अपने को प्रगट कर देना ही अच्छा समझा और बोली—

"तुम मुझे नहीं पहचान सकी, मेरा नाम ज्योत्स्ना है।"

प्रभा ने एक बार उसकी ओर देखने का साहस किया परन्तु न देख सकी। उसे यह नाम कुछ परिचित सा प्रतीत हुआ परन्तु लज्जा ने, परिचय को मूक वाणी में समाधिस्थ कर दिया। वह चुप हो रही अपने स्वामिनी के सम्मुख, एक स्वतन्त्र और स्वच्छन्द युवती के सम्मुख। मौन की विलम्ब भावना से ज्योत्स्ना विह्वल हो उठी। उसने कातर स्वरों में कहा—

"तुम बोलती क्यों नहीं हो, तुम्हारा नाम क्या है?" आग्रह की सीमा टूट चुकी थी।

प्रभा ने संकुचित नेत्रों से ज्योत्स्ना की ओर देखा और मन्द स्वर में बोली—प्रभा।

ज्योत्स्ना के मुँह से भी एक हलकी आवाज निकल गयी—'प्रभा' और एक आनन्दातिरेक से उसका हृदय नाच उठा।

"तुम इतनी सर्दी में क्यों आती हो, प्रभा।"

चलती हुई प्रभा, धारा के कोमल स्पर्शों से पुलकित हो रही थी और ज्योत्स्ना की वाणी से रोमांचित हो अन्धकार की धुंधुली छाया में चल रही थी, साथ में ज्योत्स्ना भी। प्रभा के पास ज्योत्स्ना के प्रश्न का कोई उत्तर नहीं था। लज्जा थी, संकोच था तथा यौवन की एक स्वाभाविक अनुभूति थी। ज्योत्स्ना स्वामिनी थी, प्रभा दासी थी, दोनों में अन्तर था महान, विशद और असीम परन्तु किसी पक्ष में दोनों ही एक थे। ज्योत्स्ना ने पुनः पूछा—

"प्रभा, क्या तुम मेरे प्रश्नों का उत्तर नहीं दोगी?"

प्रभा का हृदय सिहर उठा। उसने ज्योत्स्ना की ओर लज्जा भरी आँखों से इसप्रकार देखा मानों किसी भावना ने उसे

स्तम्भित कर दिया हो। उसने क्षण भर के लिए मस्तक नत कर लिया और बोली—

"मैं क्या कहूँ ?"

"क्यों ? तुम्हें अपने ऊपर अधिकार नहीं है। तुम्हें मुझसे तो लज्जा नहीं करनी चाहिए।"

एक फीकी हँसी के साथ प्रभा अपने घर के द्वार पर जा पहुँची। ज्योत्स्ना की वाणी रुक गयी। वह भी प्रभा के साथ उसके घर में चली गयी। घर में पहुँच कर प्रभा उसके बैठने के लिए उपक्रम करने लगी। ज्योत्स्ना ने देखा कि प्रभा कितनी कर्मनिष्ठ और चंचल है। उसने बैठते हुए कहा—

"प्रभा, तुम तो बहुत काम करती हो।"

वह कुछ कहना ही चाहती थी कि प्रभा की सास भीतर से निकल आयी और दाँत निकाल कर बोली—"अरे मालकिन आप कैसे यहाँ चली आयीं!"

"मैं तुम्हारे बहू को देखने आयी हूँ, यह बड़ी सुशील और अच्छी है।"

"हाँ, सरकार" उसके मुख पर एक कातरता की रेखा खिंच आयी।

"परन्तु तुम बहू को जाड़े की रात में तालाब पर क्यों भेजती हो?"

"क्या करें सरकार! हम लोग गरीब हैं न, हमारे यहाँ इसको छोड़कर और कौन है जो घर का काम काज करेगा।"

"तो घर ही में काम कराया करो। अभी युवती है, इतनी सर्दी में, फिर भी रात में, अकेले भेजना ठीक नहीं।"

"अरे सरकार, यह भी अपना अपना भाग्य है। गरीबों को दुनियाँ में सभी रास्ता दिखलाता है। अगर यह भी किसी बड़े

घर की बहू होती तो ससुराल वालों की आँखों और सिरों पर रहती परन्तु जब जन्म ही गरीब के यहाँ हुआ है तब अमीरी कैसे करेगी।"

वृद्धा की बातों से ज्योत्स्ना को एक हलकी ठेस लगी। उसे आज संसार का एक कटु अनुभव हुआ। गरीब के पास क्या धरा है, केवल विवशता—जिसके सम्मुख उसे सब कुछ करना पड़ता है। वह कुछ सोच कर बोली—

"तुम्हें बहू का विशेष ध्यान रखना चाहिए। प्रभा, भाग्य-शालिनी दीख पड़ती है। भगवान शीघ्र ही उसके ऊपर दया करेंगे मेरी ऐसी धारणा है।"

वृद्धा ने ललचायी आँखों से ज्योत्स्ना की ओर देखा और ज्योत्स्ना ने भी मुड़कर दृष्टिपात किया तो विदित किया कि प्रभा की दोनों रसभरी आँखें किसी भार से लदी, ज्योत्स्ना की वाणी की सत्यता का अनुमान कर रही हैं। आकांक्षा के लाल डोरे उसकी काली पुतलियों पर अंकित हो गये। प्रभा फूल उठी, हृदय में। नारी के लिए उसकी शुभ-कामना सबसे हितकर वस्तु है। प्रभा के हृदय से ज्योत्स्ना के प्रति एक प्रकार की श्रद्धा पैदा हुई, कदाचित एक दासी की भाँति।

ज्योत्स्ना ने प्रभाके प्रति एक सद्भानुभूतिपूर्ण भाव प्रदर्शित किया और उससे अपने घर आने को कह कर चली गयी। स्त्री जाति की प्रारम्भिक अवस्था बड़ी लज्जाशील होती है। यौवन का उन्माद आशा के हिंडोले पर जब दूर तक पेंग मारता है तब उत्साह का मधुर झोंका उसे और भी आनन्दित और प्रफुल्लित बना देता है, जिससे उसका नवीन हृदय भाँति भाँति की उच्च आकांक्षाओं का नीड़ बन जाता है। प्रभा को ज्योत्स्ना के शब्द याद आने लगे और वह अपना भविष्य उन्हीं शब्दों की सुन्दर छाया में देखने

लगी। वर्षा में भीगती हुई मधुमक्खी की भाँति वह अपने में ही सिमिटने लगी। उसके कोमल मुख पर वेदना और गर्व का अन्धकार छाने लगा। व्यथित पिपासा की ज्वाला ने उसे विह्वल बना दिया और खारे सागर का जल उसकी आखों में छिपने लगा। अतीत, वर्त्तमान और भविष्य सभी अपनी अपनी स्थिति लिए आने लगे। वह एक दरिद्र परिवार की पुत्री थी। वृद्ध पिता किसी प्रकार उस परिवार का खर्च चलाते थे। यद्यपि कुटुम्ब अधिक बड़ा न था फिर भी वह आधुनिक वातावरण में नहीं पल सकी थी। गाँव के स्कूल में कक्षा छः तक पढ़कर उसे सन्तोष करना पड़ा। आगे पढ़ने का कोई अवलम्ब न था। धनाभाव के कारण ही उसका विवाह एक निर्धन परिवार में हुआ और वह अपना अचल सौभाग्य और अनुपम सौन्दर्य लेकर अपने ससुराल आयी। उसे वह दिन अब भी स्मरण था जब उसकी स्नेहमयी माता ने रोते हुए प्रभा के मुख को आँसुओं से धोया था, रोते हुए उसे वस्त्र और आभूषण पहनाये थे। अतीत के स्मरण ने प्रभा को विचलित कर दिया। शैशव के मधुर स्वप्न यहाँ आकर पूर्ण रूप से विपरीत हुए। उसका हृदय पता नहीं कैसा कर उठा। एक आन्तरिक पीड़ा और असन्तोष से उसके हृदय का मन्थन होने लगा। वह विचारों की धारा में अबाध गति से बहने लगी। कब उसे नींद आ गयी, वह स्वयं न जान सकी।

—×—

३

बाबू उमेशचन्द्र करीब दस बजे रात को नृत्य देखकर लौटे तो उनका मन उदास था। उनके मित्रों और सहयोगियों ने उन्हें ज्योत्स्ना का विवाह शीघ्र कर देने की राय दी थी। यद्यपि उमेश बाबू पहले इस पक्ष में न थे परन्तु लज्जा के शब्दों ने उन्हें एक प्रकार से सचेत कर दिया। ज्योत्स्ना की पूर्ण स्वतन्त्रता देकर अब वे स्वयं पछता रहे थे। ज्योत्स्ना की स्वतन्त्रता अब निरंकुशता का रूप धारण कर रही थी। उमेशचन्द्र अपने जीवन की प्रारम्भिक भावनाओं एवं यौवन की प्रथम अँगड़ाई की मादकता देख चुके थे। उन्हें इस प्रपंची विश्व की लीलाओं का पूर्ण ज्ञान था। ज्योत्स्ना को पूर्ण स्वतन्त्रता देकर अब वे स्वयं पछता रहे थे। वह इसी चिन्ता में बैठे सिगार के धुयें फेंक रहे थे कि ज्योत्स्ना कमरे में प्रवेश करती हुई बोल उठी—

"पिताजी, आप डान्स में मुझे नहीं ले गये ?"

"हाँ ज्योत्स्ना, बात यह थी कि मेरे मित्र रायसाहब विपिन-बिहारी आ गये थे और उनके साथ तुम्हें ले जाना मैंने उचित नहीं समझा।"

"क्यों ? क्या मैं आपके साथ कहीं नहीं गयी थी ?"

"हाँ, हाँ, क्यों नहीं, परन्तु वहाँ सभी लोग हमारे सहपाठी थे और उनकी हँसी खुशी में तुम्हें ले जाना सभ्यता के खिलाफ होता।"

"क्या आधुनिक सभ्यता केवल पुरुषों के लिए है, स्त्रियों का स्थान नहीं है।"

"हाँ, पुरुष के समाज में पुरुष का। नारी के समाज में नारी का। दोनों का संगठित समाज पाश्चात्य देशों में ही सुशोभित होते हैं। यहाँ की सभ्यता और संस्कृति वहाँ से बिल्कुल भिन्न है।"

"यदि समाज पुरुष के लिए है तो आपलोग स्त्रियों का नाच देखने क्यों जाते हैं, नृत्य करने वाली स्त्री भी तो नारी समाज की एक सदस्या है। पुरुष अपने साधन के लिए सभी को अपना साध्य बना लेता है और बाद में उसी पर लांछन लगाने लगता है।"

"मैं ऐसे नृत्य का अवश्य विरोधी हूँ क्योंकि एक नारी की कला पर वाह वाह करना, उसके हाव भाव पर प्रशंसा के पुल बाँध देना, उसके सौन्दर्य पर मधुप की भाँति रीझना और अन्त में उसको वेश्या कह देना, मनुष्य की कम पाशव-वृत्ति का द्योतक नहीं। कोई भी अपनी लड़की की कला पर दूसरों की वाहवाही लेना पसन्द नहीं करेगा।"

"तो आप लोग क्यों नहीं उसके रोकने का प्रयत्न करते।"

"हमारा वैयक्तिक प्रयत्न अधिक सफल नहीं होगा, यद्यपि मैं पाश्चात्य संस्कृति के सभी गुण दोषों से परिचित हूँ परन्तु भारतवर्ष ऐसे महान देश में वैसी सभ्यता का अवश्य विरोधी हूँ"

"इसका तात्पर्य यह है कि आप नृत्य से घृणा करते हुए उसको देखने की उत्कण्ठा को दबा नहीं सकते।"

"ज्योत्स्ना! ऐसी बात नहीं है, नृत्य एक कला है और स्त्रियों में उसके अभिनय को पूर्ण सफल बनाने की कोमलता रहती है। इसीलिए कला के प्रेमी नृत्य देखा करते हैं।"

"परन्तु आज के कला का मूल्य पैसों पर खरीदने वाले भावुक ग्राहक ही उसे खरीदते हैं। उसको कोई बड़ी मा[illegible] धारे स देता। आधुनिक कला से ही आकर्षित हो कितने [illegible]

लीला का स्वाँग रचते हैं और साथ ही साथ उस कला का उप-हास भी करते हैं।"

"कला तो एक देवी प्रतिभा है ज्योत्स्ना! उसपर आश्चर्य करना ही मनुष्य का कार्य है, उसकी सफलता पर उसकी प्रशंसा करना ही उसका मूल्य है। उसके आकर्षण में एक पाप भी है क्योंकि पाप में आकर्षण रहता है, जो मनुष्य के जीवन को एक भुलावे में रक्खे रहता है।"

ज्योत्स्ना पिता के विचारों से स्तम्भित-सी हो गयी। वह पिता को आज की सभ्यता में पूरा रंगा हुआ समझती थी परन्तु उनके हृदय में छिपी हुई भारतीयता की एक क्षीण झलक देख, वह साश्चर्य नेत्रों से उनकी ओर देखने लगी।

उसको चुप देख उमेशबाबू ने उसे पास बैठा लिया और उसके सर पर हाथ फेरते हुए बोले—

"बेटी! मैं धीरे धीरे नदी के धसकते हुए करारे की ओर जा रहा हूँ। और क्या मालूम कि वह करारा खड़ा खड़ा एकाएक बिना कोई शब्द किये ही सरिता के जल में कब डूब जाय। इसलिए मैं सोचता हूँ कि तुम्हारा भी कोई ठिकाना कर दूँ। मैं जानता हूँ कि तुम मेरे इस विचार से अधिक दुखी होगी परन्तु संसार बड़ा मायावी है, ज्योत्स्ना! मनुष्य के सामने मनुष्य सीधा साधा देवता रहता है परन्तु पीछे वह पशु से भी कठोर और क्रूर हो जाता है।"

ज्योत्स्ना की हृदय गति अवरुद्ध-सी होती दीख पड़ी, उसका रक्त उसकी धमनियों में जमता सा प्रतीत हुआ। वह काँप उठी किसी भावी आशंका से डरकर। जिस घटना की उसने अपने कल्पना तक नहीं की थी, जिस साम्राज्य की वह अकेली वहाँ अब दूसरे अपरिचित का साम्राज्य फैलेगा,

उसी की आज्ञा का पालन करना पड़ेगा, आँख मूँद कर, निस्पन्द होकर चाहे वह सिंहासन पर बिठा दे या जलती ज्वाला में ढकेल दे, एक शब्द बोलने का अधिकार नहीं, क्यों, वह पुरुष है और नारी असहाय, अबला-संसार की सबसे दुर्बल और निर्बल जीव। उसने कातर नेत्रों से पिता की ओर देखा और काँप कर रह गयी, कुछ न बोल सकी। उमेशबाबू चुप न थे। उनकी वाणी एक विषाद का रूप लिये फूटने लगी—

"तुम्हें मालूम है कि मेरे न रहने पर तुम्हारे भाई अथवा भाभी कोई भी, तुम्हारी इस स्वतन्त्रता को नहीं देखना चाहेंगे और तब तुम इस जगत की प्रपंच-माया का शिकार बनोगी। मायावी पुरुषों की जाल में फँसोगी और सभ्यता के नाम पर अपना अलौकिक हृदय रत्न कुछ चमकते विचारों पर अर्पण करने लगोगी। मुझे इससे भय है। मैं अपनी सत्ता को इस चमकती दुनियाँ में नाश होने देना नहीं चाहता।"

ज्योत्स्ना अब अधिक न सह सकी और फूट फूट कर रोने लगी। उसका हृदय फटने लगा। एकमात्र संरक्षक पिता की ममता से वह लदी लता के समान झुकने लगी, प्रसन्नता से अथवा मादकता से नहीं, परन्तु एक विषाद, एक अचिन्त्य प्रेरणा से। उसका मुख पिता की गोद में छिप गया। पुत्री की यह दशा देख पिता के नेत्र भी भर आये।

अश्रुओं के अधिक निकल जाने से पीड़ा की वेदना कुछ हलकी हो जाती है। प्रेम, उमंग तथा प्रपंच के ठुकराये जल के छोटे छोटे कण मानस में शूल की भाँति चुभते हैं परन्तु बाह्य जगत में वही जल सारे अरमानों को लेकर आते हैं तो फूल से भी कोमल अश्रु का रूप धारण कर लेते हैं। ज्योत्स्ना ने धीरे से अपना भरा हुआ मुँह ऊपर उठाया और बोली—

"पिताजी ! मैंने कौन सा अपराध किया है जिससे आप मुझे इतना शीघ्र जलती ज्वाला में फेंकना चाहते हैं। आपने मुझमें कौन सी ऐसी त्रुटि देखी, जिससे यह विचार आपके हृदय में उठा। अभी से मेरे साथ इतना कठोरता का व्यवहार क्यों करना चाहते हैं ? मैं इसे कैसे सहन कर सकूँगी !"

"अधीर होने का कोई कारण नहीं। सभी को जीवन में इस परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। जीवन में विजय-पराजय आशा-निराशा, उत्थान—पतन सभी क्रम से एक दूसरे के आगे पीछे आते रहते हैं। इसमें वही सफल हो सकता है जो सारी विपत्तियों को हँस हँस कर झेल ले, जो सहर्ष आपदाओं का स्वागत करे।"

"आप ठीक सोचते हैं पिताजी ! परन्तु जिसने कभी भी दुख का अनुभव तक नहीं किया वह एकाएक पराये घर के झंझटों को कैसे झेल सकती है ? जो सर्वदा स्वतन्त्र रही, जिसको पुरुषों के शासन से घृणा है वह क्योंकर उस बन्धन में फँसना चाहेगी।"

"समय सर्वदा परिवर्त्तनशील है, आज तुम जिसे सहारे की चट्टान समझ बैठी हो वह पता नहीं कब धीरे से खिसक जायेगी। इसीलिए मैं तो यही चाहूँगा कि तुम्हें एक ऐसे स्थान पर बिठा दूँ जो अचल हो और जहाँ तुम महारानी की तरह सुशोभित हो।"

पिता की हठ-वादिता देखकर ज्योत्स्ना घबड़ा उठी और बिना उत्तर प्रत्युत्तर के वह अपने कमरे में जाकर फूट फूट कर रोने लगी। अपने सौन्दर्य के सामने विश्व को तुच्छ और आभा-हीन समझने वाली ज्योत्स्ना आज उसी के प्रथम आघात से अपने संतप्त हृदय को शान्त करने का प्रयत्न कर रही थी।

उमेशबाबू ने अपने को बड़ा कठोर बनाकर अपनी अन्तिम

भावना ज्योत्स्ना के सामने प्रगट की थी और उसको पूर्ण सफल बनाने के लिए सब प्रकार से सचेष्ट हो रहे थे। ज्योत्स्ना के भावों से उनको बड़ा दुख हुआ था। वे उसी चिन्ता में पड़े उलझ रहे थे कि सुरेशचन्द्र कमरे में आ पहुँचे और कुर्सी पर बैठते हुए बोले—

"पिताजी! ज्योत्स्ना की पढ़ाई का क्या होगा? आगामी जुलाई में वह फिर से एम० ए० में नाम लिखाना चाहती है।"

"नहीं, अब उसे पढ़ने नहीं दूँगा। मेरा तो विचार यह है कि उसकी अब शादी कर दूँ और उसके बाद यदि उसकी इच्छा हो तो स्वयं पढ़ सकती है परन्तु मैं बिना उसके विवाह के उसको आगे पढ़ने का थोड़ा सा भी पक्षपाती नहीं हूँ।

"परन्तु वह तो विवाह नहीं करना चाहती। उसके विचार तो बहुत ही स्वतन्त्र हैं। वह अकेली होकर अपना समय काटना चाहती है।"

"नहीं, उसे अकेली नहीं रहना पड़ेगा। मैं मृत्यु के सन्निकट आया, पता नहीं कब इस संसार से चल बसूँ। मेरे न रहने पर उसकी रखवाली कौन करेगा, उसको पूर्ण स्वतन्त्रता के साथ कौन रहने देगा। मैं यह जानता हूँ कि उसकी ऐसी अवस्था कर देने से उसकी आकांक्षायें बालू की भीत की भाँति ढह जायेंगी, उसकी आशाओं पर तुषारापात हो जायगा, परन्तु विवश हूँ। मैं मरने के पश्चात् किसी प्रकार का कलंक अपने नाम पर लेना नहीं चाहता।"

पिता की बात सुनकर सुरेशबाबू को ऐसा प्रतीत हुआ मानों किसी ने उन्हें ऊँचे पहाड़ पर खड़ा कर नीचे झोंक दिया हो। वह आँख फाड़ फाड़ कर अपने पिता को देखने लगे। उन्हें विश्वास नहीं हो रहा था कि वे अपने पिता उमेशचन्द्र के

बैठे हैं। उन्हें पिता में एक महान अन्तर मालूम पड़ा और साथ ही आश्चर्य भी।

"यदि वह विवाह करने को तैयार न हुई तो?" सुरेशबाबू ने अकस्मात प्रश्न किया।

"क्यों न होगी, उसको मेरी आज्ञा माननी पड़ेगी। मैं उसका पिता हूँ। मुझे उसका जीवन सुन्दर और असुन्दर दोनों रूपों में ढालने का अधिकार है। मैं उसे संसार की सारी वस्तुओं से अधिक चाहता हूँ परन्तु जगत की मर्यादा के सामने स्वयं चकित हूँ। यह संसार प्रपंचपूर्ण है। यहाँ शक्ति का बोलबाला है, कपट का व्यापार है, मृगतृष्णा की पिपासा है। जो जितना कठोर होगा, जो जितना स्वच्छन्द होगा, वह उतना ही इस संसार के संघर्षों का सामना कर सकेगा। जिसमें यह शक्ति नहीं होगी वह कीटाणुओं की भाँति मन्द पवन के झोंके से ही अपनी जीवन लीला समाप्त कर देगा।"

"अच्छा जब आप उसका विवाह करने पर दृढ़-प्रतिज्ञ हैं तो वर की तलाश कीजिए। आप जानते हैं कि वह पढ़ी लिखी है। पति भी उसके मनोनुकूल होना चाहिए।"

"हाँ, मैंने अपने मित्रों से कहा है, आशा है कि वे लोग अच्छे वर की तलाश अवश्य करेंगे।"

× × × ×

४

प्रभा का घर सूर्य के प्रकाश में चमक रहा था। कच्ची कच्ची दीवालें और उनपर खपरैलों की हलकी उठान लताओं के झुरमुट में छिप रही थीं। दालान में एक ओर टूटी चारपायी पड़ी थी और दूसरी ओर सूखे कंडों का एक ढेर खड़ा था। प्रभा की सास कहीं बाहर गयी थी, वह अलसायी सी, चिन्तित-सी खपरैलों की छाया में बैठी धान की बालियाँ बीछ रही थी। इस घर में आकर प्रभा को बड़े ही कष्ट का अनुभव हो रहा था। उसे भर पेट भोजन न मिलता था, उसका सुदृढ़ और सुन्दर शरीर शिथिल हो रहा था। परन्तु वह अपना अभाव किससे कहती? उसका पति रामदास शराबी था। जितने रुपये वह उमेश बाबू के यहाँ से पाता वह सुरा-देवी के चरणों पर चढ़ा देता। डर के मारे कोई उससे बोलता न था। प्रभा अपने फूटे भाग्य पर खीझ रही थी कि दर्वाजा धीरे से खुला और चमकीले वस्त्रों में ज्योत्स्ना सामने आ खड़ी हुई। स्वामिनी को सम्मुख देखते ही प्रभा लज्जा और संकोच के मारे गड़-सी गयी। वह भरपूर नेत्रों से उन्हें न देख सकी। ज्योत्स्ना ने देखा कि प्रभा के फटे वस्त्रों में से उसका विकसित यौवन कातर नेत्रों से झाँक रहा है, मुख की लालिमा में मादकता का नशा चढ़ा है, अधरोष्ठ के भीतर धवल दाँतों की पंक्तियाँ छिप गयी हैं। आज ज्योत्स्ना ने बड़ी श्रद्धा और स्नेह से प्रभा को देखा और उसकी यह दयनीय दशा देखकर उसको बड़ा क्षोभ हुआ। वह समीप आकर बोली—

"प्रभा, तुम मुझे देखकर इस प्रकार लज्जित क्यों होती हो?"

वह बोल न सकी। वह संकुचित होने लगी लजीली लता के समान, अपनी ही सीमा में सिकुड़ती हुई।

"एक नारी को दूसरी से लज्जित तो नहीं होना चाहिए, फिर तुम तो परिचित भी हो चुकी हो।" प्रभा अब भी चुप थी, भारी सरिता की भाँति अपने में ही चंचल होकर। ज्योत्स्ना ने देखा प्रभा किसी चिन्ता में शान्त बैठी है। वह वहीं बैठने का उपक्रम करने लगी। प्रभा की हठ-चेतना को एक ठेस लगी, वह सजग हो उठी और तत्क्षण खड़ी हो गयी। उसकी भरी दृष्टि में एक विचित्र आकर्षण था जो कदाचित ज्योत्स्ना को भी चंचल कर सकता था। प्रभा ने ज्योत्स्ना के लिए चारपायी बिछा दी और नेत्रों की कातरता से बैठने का आग्रह करने लगी। ज्योत्स्ना उसपर बैठती हुई बोली—

"तुम कितनी सरल और सीधी हो प्रभा। गृहस्थों के घरों में तुम्हारे जैसी कुल-वधू के आने से घर, स्वर्ग का रूप धारण कर लेता है।"

प्रभा ने जिज्ञासा भरी दृष्टि से ज्योत्स्ना को देखा और उसकी आन्तरिक भावना ओठों पर केवल बुदबुदा कर रह गयी। मानसिक विशृंखलता ने उसे निराश बना दिया था परन्तु ज्योत्स्ना के शब्दों से वह एक उलझन में पड़ती हुई आशा के गगन में इधर उधर उड़ने लगी, कल्पना के परों को फैला कर वह दूर तक देखती तो, जहाँ हरियाली दिखाई देती वहीं बड़े बड़े ऊसर स्थल भी।

वह कल्पना की ऊँची उड़ान में ही पड़ी थी कि ज्योत्स्ना ने पूछा—

"क्या सोचती हो प्रभा, कुछ कहो तो—"

"कुछ तो नहीं" उसके मुख से एकाएक निकल गया और वह अपने को संयत करने लगी।

"तुम मुझसे अपने को छिपाती हो, यह अच्छी बात नहीं है! मैं तो तुम्हारे घर पर तुमसे बातें करने आयी हूँ और तुम लुकी छिपी फिर रही हो।" स्वर में हास्यमिश्रित व्यङ्ग था।

अब प्रभा अधिक नहीं सुनना चाहती थी अपने स्वामिनी से, जो उसके प्रति सहानुभूति प्रगट कर रही थी। देखते ही देखते उसके धवल दाँतों की हँसती पक्तियाँ खिलीं और वह बोली—

"आप बड़ी हैं, शिक्षित हैं। मैं आपके प्रश्नों का क्या उत्तर दूँ।" उसके ओंठ दब गये।

"परमात्मा के यहाँ से सभी समान आये हैं प्रभा। किसी को कोई विशेषाधिकार नहीं। छोटा बड़ा, ऊँच नीच यह सब मनुष्य की कल्पना है। समाज का मान-दंड मनुष्य ही बनाता है। यदि वास्तविक दृष्टि से देखा जाय तो सभी समान हैं, केवल कर्त्तव्यों से भिन्न भिन्न हैं। फिर नारी जाति में कैसी असमानता! हरएक दृष्टि में सभी नारियाँ समान हैं।"

प्रभा ने प्रश्न-सूचक मस्तक उठाया और एक भावना की वक्र रेखा उसके उन्नत भाल पर दौड़ गयी—सभी नारियाँ समान हैं। तो इतनी विषमता क्यों? एक तो अधीश्वरी बनी स्वर्ग-सुख का अनुभव कर रही है और दूसरी नर्क-यातना का दृश्य देख रही है। ज्योत्स्ना कहती जा रही थी—

तुम सोचती होगी कि मैं बड़ी सुखी हूँ और तुम दुखी। परन्तु यह एक कल्पना है। नारी का सारा सुख उसके सन्तोष से है। धन रहने पर भी सभी सुखी नहीं होते। धन तो अहमन्यता तथा मिथ्या गर्व को जन्म देता है जिससे जीवन नारकीय हो जाता है। मैं तो सबको समान समझती हूँ, यदि मैं अपने घर

की स्वामिनी हूँ तो तुम भी अपने घर की पटरानी।"

प्रभा हँस पड़ी और बोली—

"आप तो विचित्र तर्क करती हैं, कुछ समझ में नहीं आता।"

"मैं जो कहती हूँ वह अमर सत्य है। मेरा तुम्हारे हृदय पर कोई अधिकार नहीं है ?"

"मैं अनायास ही तुम्हारी ओर आकर्षित होती चली आ रही हूँ, इसका पता तक नहीं है।"

"मैं तो आपके किसी काम की भी नहीं हूँ।"

"यह तुम नहीं जानती, हीरा स्वयं अपना मूल्य नहीं जानता, वह अपने को पाषाण ही समझता है। मेरा हृदय कहता है कि तुम्हारा विकास होगा प्रभा।

"आपकी कृपा रहेगी तो सब कुछ हो जायगा।"

"मैं कोई देवी नहीं हूँ। मैं तुम्हारे ही समान एक अबला हूँ। अन्तर केवल यही है कि तुमने अपने सौभाग्य की लालिमा मादक नेत्रों से देखी है और मैं उसे अभी तक एक स्वप्न समझे बैठी हूँ।"

"यह आप क्या कह रही हैं ? आपके सौभाग्य की कल्पना भी मेरे हृदय के विचारों से परे है।"

"नहीं, नहीं, यह तुम्हारा भ्रम है। जिस स्थिति में तुम आज हो, मैं कदाचित ऐसी अवस्था में पहुँच कर न रहूँ। मेरा क्षेत्र स्वतंत्र है, अनियन्त्रित है। पहाड़ी सरिता की भाँति मेरी जीवन-धारा पर्वत खंडों पर उछलती हुई अब स्थल की मन्द गति में बहने में सकुच रही है। मेरी तीव्र गति में अवरोध हो रहा है जो मेरे लिए अहितकर है।"

"ऐसा क्यों ?" प्रभा के नेत्र आश्चर्य से टँग गये।

ज्योत्स्ना को अपनी भाभी लज्जा के शब्द याद आ गये और

पिता की बातें स्मरण हो आयीं। वह भीतर ही भीतर सिहर उठी और कुछ शान्त होकर बोली—

"सभी का जीवन सुख-मय नहीं होता। सुख-दुख का चक्र सर्वदा घूमा करता है। ज्योत्स्ना गम्भीर हो गयी। प्रभा भी उसकी बातों से कुछ दुखित सी हो गयी। वह इस रहस्य को न समझ सकी कि उसकी स्वामिनी एकाएक क्यों दुखी होगयी। उसे आश्चर्य होता कि धनवान पिता की स्नेहमयी पुत्री इस प्रकार मानसिक चिन्ता से क्यों विह्वल है। उसने कुछ पूछना चाहा परन्तु ज्योत्स्ना के मुख पर विषाद की गहरी छाया देख कर शान्त हो गयी।

कुछ देर तक दोनों मौन की प्रतिमूर्ति बनी बैठी रहीं। ज्योत्स्ना नत मस्तक किये बैठी थी, निस्पन्द नीरव समाधि सी। प्रभा कभी कभी उसे देख लेती थी, कदाचित किसी जिज्ञासा के वशीभूत होकर, परन्तु कुछ पूछने का साहस न करती थी।

दो किनारे समीप होकर भी दूर थे।

किसी निश्चित चेतना ने ज्योत्स्ना की मौन साधना भंग की। उसने एक बार सूखे नेत्रों से घर की वस्तुओं को देखा और पुनः प्रभा को देख कर बोली—

"आज मुझे एक जगह निमन्त्रण में जाना है, देर हो रही है।"

"क्या आप अकेली ही जायेगीं!"

"हर्ज क्या है? मैं तो बहुधा अकेली ही जाती हूँ।"

प्रभा को यह सुनकर आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—

"तो क्या कोई आपको मना नहीं करता।"

"मना क्यों करेगा, मैं बच्ची थोड़े ही हूँ जो भूल जाऊँगी। उसने हँसते हुए कहा—

"परन्तु मैं तो सुनती हूँ कि स्त्रियों को कभी भी कहीं अकेले

नहीं जाना चाहिए, वे बहुधा भूल जाती हैं और फिर पता नहीं अकेले रहने पर कैसी पड़े·········।"

मन्द हँसी के साथ ज्योत्स्ना बोली—

"तुम बड़ी सीधी हो, तुम्हारी जैसी ही स्त्रियाँ अकेले रहने पर मूर्ख बन जाती हैं।"

"स्त्रियाँ तो पुरुष के हाथ की कठपुतली हैं। वे बहुधा भूलती रहती हैं।"

ज्योत्स्ना ने इस व्यंग का अर्थ स्पष्ट समझ लिया। उसने प्रभा से कहा—

"तुम्हें मेरे साथ निमन्त्रण में चलना होगा।"

"आप भी कैसी बातें करती हैं। आपके साथ मैं कैसे जा सकती हूँ। कहाँ आप स्वामिनी और मैं एक दासी।

"मैं तो तुम्हें कुछ नहीं कह रही हूँ। तुम मेरे साथ रहोगी तो एक सहारा रहेगा।"

"यह तो ठीक है परन्तु मैं कैसे जा सकती हूँ।"

"क्यों?"

प्रभा चुप रही। ज्योत्स्ना ने समझा कि कदाचित इसके पास अच्छे कपड़े न हों। उसने कहा—

"तुम्हें अच्छे अच्छे कपड़े पहनाऊँगी और सजाकर ले चलूँगी।"

"परन्तु फिर भी एक बड़ी रुकावट है, न घर में सास हैं और न वे ही—।" लज्जा से उसका मुख लाल हो गया।

"मैं सबको मना लूँगी। तुम तैयार तो होओ।"

"वहाँ पता नहीं कैसे कैसे लोग होंगे, क्या होगा मैं तो कुछ भी नहीं जानती।"

"अरे एक छोटी सी पार्टी है, मेरे मित्र ही तो रहेंगे।"

"पार्टी में क्या होता है ?"

"आपस के लोग इकट्ठे होकर कुछ खाना खाते हैं और मनोरञ्जन करते हैं।"

"तो क्या उसमें पुरुष भी रहेंगे, या अकेले स्त्रियाँ ही।"

"क्या तुम्हें पुरुष से घृणा है.........?"

"नहीं, परन्तु एक स्त्री का दूसरे पुरुष से निडर होकर बातें करना भी क्या अच्छी बात है। हमारे गाँवों में तो लोग इसे एक पाप समझते हैं।"

"तुम बड़ी भोली भाली हो। स्त्रियाँ जितनी पुरुषों से डरती हैं, उतना ही वे उन्हें दबाते हैं। आजकल की दुनियाँ में स्त्रियों को पुरुषों के समान निडर होना चाहिए।"

"मुझसे तो ऐसा नहीं हो सकता। बाप रे। स्त्री होकर पुरुष के सर पर चढ़ना भी कोई अच्छी बात है।

"अच्छा, तुम मेरे साथ चलो। ये सब बातें जाने दो...।" अभी बात भी पूरी न हो पायी थी कि प्रभा की सास भीतर आ गयी और ज्योत्स्ना को देखते ही दाँत निकाल कर बोली—

"सरकार आप कब से आयी हैं" और प्रभा को सम्बोधित कर बोली—

"तुमने बैठने का भी अच्छा प्रबन्ध नहीं किया, कैसी मूर्ख हो तुम।"

प्रभा सिटपिटा सी गयी। परन्तु ज्योत्स्ना ने उठते हुए कहा—

"मैं प्रभा को एक जगह ले जा रही हूँ।"

"कहाँ ?" और यह आप ऐसे लोगों के साथ कैसे जा सकेगी ?"

"भले ही जायेगी, उससे जाने को तो कहो।"

"वह जाय, मैं मना तो करती नहीं, परन्तु यह सब बड़े भाग्य

"अभी तो नयी हवा है, बाद में इसको समझोगी।" सुनील ने व्यंग किया। इससे वहाँ दो दल हो गया। एक में ज्योत्स्ना, सरोज, विमला और प्रभा थी और दूसरे में सुनील, मोहन और विपिन थे। ये सभी एक ही कक्षा के छात्र थे।

"क्या समझेंगी हमलोग? समझे वह पुरुष वर्ग जो बाहर से कुछ और भीतर से कुछ और होते हैं। अपनी स्वार्थ-सिद्धि में लगे, वे मनुष्य स्त्रियों की महानता को समझने में कैसे समर्थ हो सकते हैं।" ज्योत्स्ना ने व्यंग करते हुए कहा—

"ठीक कह रही हैं आप, परन्तु संसार-सागर में नौका को एक पतवार से खेने का साहस करना उस बालक के साहस के समान है जो अपनी चारपायी पर पड़े ही पड़े चन्द्रमा को छू लेना चाहता है" आँख तरेरता हुआ विपिन बीचही में बोल उठा।

"यह शिक्षा किसी मूर्ख स्त्री को जाकर दो जो दुनिया को न जानती हो, मैं तो इस प्रकार की मनोवृत्ति रखने वाले पुरुषों से घृणा करती हूँ। मैं इस विवाद के बिल्कुल विपरीत हूँ।"

"जरूर, जरूर! तुम किसी स्त्री से शादी कर लेना।" हँसता हुआ मोहन बोल उठा।

जाने दो ज्योत्स्ना इन पुरुषों पर तुम विजय नहीं पा सकती। ये स्त्रियों के भाग्य विधाता होते हैं, इनको गवर्नर जैसा विशेषाधिकार है। किसी को उठाना और किसी को गिरा देना इनके लिए खेल है।" सरोज ने भरे कंठ से कहा—

ज्योत्स्ना का अनुमान सच निकला। उसने अनुमान कर लिया कि वह विवाद से दुखी है, इसलिए उसने पूछा—

"तो सरोज, विवाह के पश्चात् नारी की सभी म[illegible] चली जाती है, उसका कोई अपना अस्तित्व नहीं रह[illegible]। और

क्या तुम भी पुरुषों का अत्याचार सह लेती हो ?

"मैं क्या कहूँ ज्योत्स्ना ! किसी बात को सहना मेरी सीमा के बाहर की बात है। जिस दिन मेरे आत्माभिमान का पतन होगा, उस दिन अत्याचार का शिकार हो जाऊँगी। परन्तु उसकी महत्ता हृदय तक ही सीमित है, उसमें सजीवता का संचार नहीं है। आकांक्षायें उठती हैं परन्तु निराशा के कोरों से टकराकर चूर चूर हो जाती हैं। जीवन निस्तब्ध है। यदि कभी कभी आशायें बलवती हो जाती हैं तो उन्हें शान्त करने में पर्याप्त संयम का सहारा लेना पड़ता है। विवाह के पूर्व जब मैं स्वतन्त्र थी तब इसी आत्म-गौरव के सहारे ऊँची से ऊँची आकांक्षाओं को लेकर उड़ जाती थी परन्तु अब वही आत्म-गौरव अपने दुर्भाग्य पर सर पटकता है। क्या करूँ—संसार में नियति के कार्यकलाप से कण कण परिवर्तित होता रहता है।" सरोज ने दुखी हृदय का उद्गार प्रगट किया।

"मैं तो यह चाहती हूँ कि स्त्री को अपना अस्तित्व रखना चाहिए और जब उसपर किसी प्रकार का आक्षेप होने लगे तो उसका जबर्दस्त विरोध करना चाहिए।" विमला ने कहा।

"ठीक है परन्तु मर्यादा के सम्मुख स्त्री का सभी गौरव अस्तित्वहीन है, उसका कोई मूल्य नहीं है। पति के ऊपर वह अपना अधिकार नहीं रख सकती। पति का गौरव स्त्री की श्रद्धा, उसके प्रेम तथा आत्मसम्मान की सीमा को भी पार कर सकता है। वह अपने अधिकारों का पूर्ण प्रयोग कर सकता है।"

"तब तो स्त्रियाँ कुछ भी नहीं कर सकतीं।" ज्योत्स्ना ने निराशायुक्त भरी स्वर में कहा—

"स्त्री को यह अधिकार नहीं है कि वह केवल अपने सुख के लिए दूसरों की इच्छाओं की बलि दे दे। भारतीय त्याग, निष्ठा,

कर्त्तव्य-परायणता सभी विश्व में अपना अद्वितीय जोड़ रखते हैं। केवल इसीलिए कि यहाँ की नारियाँ इसका महत्त्व और मूल्य आँकना जानती हैं, खरे और खोटे की पहचान कर सकती हैं।"

"परन्तु यह ठीक नहीं है, सरोज! भारत की स्त्रियाँ अब भी लकीर की फकीर बनी हुई हैं, जहाँ सारे संसार की स्त्रियाँ पुरुषों की समता कर रही हैं, वहाँ भारत की नारियाँ प्राचीन महात्म्य की उपासना में ही जीवन का लक्ष्य समझ बैठी हैं जिससे स्त्रियों में गुलामी घर करती जा रही है और पुरुष भी अपनी विलासिता का क्षेत्र विस्तृत करता जा रहा है। पुरुष यह जानता है कि स्त्री सभी प्रकार के अत्याचार कलंक और अपमान सहने के लिए बनायी गयी है, क्योंकि उसके सामने लोक लज्जा का रूप है, मर्यादा का गहरा आवरण है। यह सब होते हुए भी यदि तुम्हारे जैसी नारियाँ इसको दूर करने का प्रयत्न नहीं करती तो यह उनकी दुर्बलता ही नहीं, पतन की पराकाष्ठा है। तुमलोग भी उसी प्राचीनता का आवरण ओढ़ कर ऐसे जीवन से घृणा और तिरस्कार लिए फिरती हो। तुम्हें अपनी आत्म-मर्यादा की सीमा ही नहीं प्रतीत होती। नारी-जाति दिन प्रति दिन बड़ी शीघ्रता के साथ विनाश की ओर जा रही है और पुरुष-समाज अपने अधिकारों का दण्ड लेकर उसके प्रारब्ध के साथ छेड़खानी करता जा रहा है। इस अत्याचार के रूप को यदि सेवा कहें तो एक कल्पना ही नहीं, एक अन्ध परम्परा की समुचित व्याख्या होगी। मेरा तो अपना व्यक्तिगत विचार यह है कि कहीं भी परतन्त्र रह कर अपनी मर्यादा की सत्ता का ह्रास नहीं करना चाहिए।"

"हाँ ज्योत्स्ना, तुम्हारे विचार वस्तुतः ठीक हैं। बिना अधिकारों के नारी-समाज विशृङ्खल हो रहा है।" सरोज बोली—

ज्योत्स्ना के मुख से ऐसी लम्बी और अभिमानपूर्ण व्याख्या सुनकर विपिन ने कहा—

"तब तो आप लोगों को एक संगठन करके पुरुषों के प्रति एक आन्दोलन चलाना चाहिए।

"आन्दोलन ही नहीं मिस्टर विपिन, स्त्रियों में एक क्रान्ति होगी और हम देखेंगे कि कैसे पुरुष अपने कुत्सित अधिकारों का प्रयोग करता है।"

"हमलोग भी आपकी कुछ कुछ सहायता कर देंगे।" कहते हुए सभी उठ खड़े हुए। तार्किक बुद्धि के बादल उस हास्य से फट गये। विपिन आदि तो विदा लेकर चल पड़े परन्तु ज्योत्स्ना उन्हीं विचारों में लीन थी। उसका मस्तिष्क गत भावनाओं से अन्दोलित हो रहा था। सरोज ने कुछ सोच कर कहा—

"तुम्हारी सभी बातें ठीक हैं ज्योत्स्ना, परन्तु यदि तुम आत्म-सम्मान की छाया में नारी स्वभाव-गत स्नेह, कर्त्तव्य तथा त्याग से मुख मोड़ बैठोगी तो क्षुधा की भयंकर ज्वाला कौन सहेगा। सभी तो अपने घर की रानी होकर नहीं आतीं। यहाँ माता, पिता या भाई कोई भी नहीं रहता जो तुम्हारे दुखों को देख कर सम-वेदना तक प्रगट करे। जिस समय तुम्हारी भिक्षा, तुम्हारी दया, तुम्हारी सारी आकांक्षाओं का आधार केवल एक पुरुष होगा जो तुम्हें स्वर्ग की देवी बना सकता है, इन्द्र की अप्सरा बना सकता है अथवा नारकीय जीवन व्यतीत करने के लिए अकेला संसार में छोड़ सकता है, उस समय नारी अपना प्रस्फुटित यौवन लेकर कहाँ जायेगी ? किस कोने में अपनी मतवाली मादकता छिपाने का प्रयत्न करेगी ?"

"इसीलिए प्रत्येक नारी को आत्मनिर्भरता का पाठ सीखना चाहिए उसे इतना स्वाधीन बन जाना चाहिए जिससे वह तथा

अपने बच्चों का पालन कर सके। हमारा पातिव्रत धर्म इतना दुर्बल नहीं है कि संसार उसे देखते ही देखते लूट लेगा। नीच जाति की स्त्रियाँ भी तो स्वावलम्बिनी होती हैं।"

"अरे भोली भाली ज्योत्स्ना! तुम कितना चतुर बनती हो, उतनी मूर्ख भी हो। जिस काम को तुम इतना सरल समझ रही हो, वह उतना ही कठिन है। हम स्वावलम्बी बन सकती हैं परन्तु वंश-गत लज्जा कैसे छोड़ेंगी। यह कोई इंग्लैंड या अमेरिका नहीं है कि दिन भर आफिसों में काम करेंगी और रात को होटलों की सैर करेंगी। हमारा धर्म इतना महान और पवित्र है जिसके बल पर हम सभी प्रकार की प्रताड़ना सह सकती हैं—मान, अपमान, तिरस्कार तथा दम्भ। परन्तु भूलकर भी पति को अपमानित करने का विचार तक नहीं कर सकतीं। पति को जिसकी हमारे यहाँ देवता से समता की गयी है, जिसके आशीर्वाद से नारी-देवी बन सकती है, जिसकी एक वाणी अभय वरदान देती है, जिसकी करुणा का एक छोर भूमंडल तक कँपा डालता है, उसका अपमान, उसकी अवहेलना कौन किस साहस पर करेगा ?"

"तो क्या स्त्री को पुरुष का आजीवन दासीत्व स्वीकार करने का बीड़ा उठाना पड़ेगा? उसे अपने अधिकारों की रक्षा का कोई स्वत्व नहीं है। कैसी स्वार्थपरता है। पुरुष केवल इसलिए बड़ा है कि उसके हाथ में समाज-निर्माण की शक्ति है। यदि स्त्रियाँ भी साहस का काम करें, परिश्रम करें तो पुरुष भी उनसे डरेगा। स्त्रियों के संगठन के सम्मुख पुरुष की बड़ी से बड़ी शक्ति झुक जायेगी।"

"हाँ, हाँ, अवश्य! तुम उनके सामने बन्दूक लेकर चलना।" हँसती हुई सरोज ने ज्योत्स्ना के अरुण कपोलों पर एक हल्की

चपत लगायी। सभी उठीं और अपने अपने घरों की ओर चल पड़ीं। ज्योत्स्ना भी प्रभा को लेकर मोटर में आ बैठी। उस समय सन्ध्या हो रही थी। प्रभा ने आज जीवन का नवीन चित्र देखा था। उसने आज ही देखा कि कालेज की शिक्षा प्राप्त लड़कियाँ सीमित मार्ग से कितना आगे बढ़ गयी हैं कि लौटकर प्राची सीमा में आना उनके लिए दुष्कर है। अन्धकार में लुप्त उस मार्ग को खोजने ही में वे अपने को भूल जाती हैं।"

प्रभा को चुप देख कर ज्योत्स्ना ने कहा—

"प्रभा तुम तो वहाँ पूर्ण मौन थी।"

"फिर करती ही क्या? उस विवाद में मैं क्या बोलती और फिर मेरा अधिकार ही क्या था।"

"तुम भी तो स्त्री हो फिर इसमें, अधिकार की कौन सी बात थी। विषय तो स्त्रियों के हित के लिए ही था।"

"आप जैसी विदुषियों के लिए ही, मुझ जैसी मूर्खं के लिए नहीं।"

"ज्योत्स्ना उसके मुख की ओर संदिग्ध नेत्रों से देखने लगी।"

—×—

५

बाबू उमेशचन्द्र अपने पूर्व निश्चित योजना के अनुसार ज्योत्स्ना के विवाह की तैयारी में संलग्न हो गये। विवाह को सफल बनाने के लिए उन्होंने अपने मित्रों से राय ली, बड़ों से पूछा और छोटों की सहानुभूति चाही। बड़ी दौड़ धूप के पश्चात् लाहौर के एक प्रसिद्धि प्राप्त वकील बाबू कृष्णमुरारी के साथ

विवाह पक्का हुआ। बाबू कृष्णमुरारी बड़े ही सुन्दर, सीधे और सरल थे। घर की भी स्थिति अच्छी थी, बढ़िया बंगला, एक छोटी-सी कार, दो चार नौकर चाकर। वे अकेले थे। परिवार में और कोई बड़ी-बूढ़ी न होने के कारण उमेश बाबू कभी कभी हिचकते थे। यह सोचकर कि ज्योत्स्ना वहाँ जाकर कैसे रहेगी ? किससे बातचीत कर मन हलका करेगी। परन्तु जब उनके मित्रों ने वर के रूप और गुण की प्रशंसा की तो विवाह के लिए प्रस्तुत हो गये।

सबका समय एक सा नहीं व्यतीत होता। नियति के भौंहों में बल पड़ते ही बड़ी २ ऐश्वर्यशालिनी अट्टालिकायें धूल के कणों में मिल जाती हैं। भाग्य की उज्ज्वल रेखा भविष्य के अन्धकार में धुँधली दिखलाई देने लगती है। दीर्घ चेतना में हृदय की आशा भर मिटती है।

ज्योत्स्ना ने जब पिताजी को अपने कार्य पर अचल की भाँति दृढ़ देखा तो माथा पीट कर रह गयी। वह कर ही क्या सकती थी ? पिता के सम्मुख एकाएक जाकर विवाह को अस्वीकार कर देने में उनकी वृद्धावस्था की जड़ पर अन्तिम आघात होता। झुलस उठी ज्योत्स्ना की लहलहाती आशा करुण वेदनाओं की ज्वाला से, निःश्वासों की दीर्घ फुङ्कार से, परन्तु........कर ही क्या सकती थी। स्वतन्त्र पक्षी को जिसप्रकार स्वर्ण पिंजर में बन्द कर उसकी आवभगत की जाती है, ठीक वही दशा ज्योत्स्ना की थी। जिस आत्मसम्मान, स्वावलम्बन, निर्भीकता और नारी स्वातन्त्र्य का वह दम्भ भर रही थी, उसकी वही प्रवृत्तियाँ उसके भाग्य को देख देखकर इठला रही थीं और दे रही थीं उसे एक प्रताड़ना। वह विचित्र चक्र में विस्मय सी, विमूढ़-सी पड़ी थी—लोक मर्य्यादा को लिए, प्रताड़ना और अपमान लिए, क्रोध तथा निराश जीवन का एक वरदान लिए।

घर आमंत्रित नर-नारियों से भर गया। बालकों की चहल-पहल से क्षुब्ध वातावरण प्रफुल्लित हो गया। विवाह की तैयारियाँ प्रारम्भ हो गयीं। नये २ लोग घर में दिखाई देने लगे। ज्योत्स्ना को उपहार, भेंट तथा व्यङ्ग के पुरस्कार अर्पित किये जाने लगे। वह सब सहती थी पाषाण मूर्ति की भाँति निर्जीव होकर। उसे कभी अपने भाग्य से ईर्ष्या होती, कभी गर्व भी। जिस भाभी को वह अपना एकमात्र विपक्षी समझती थी, उसके शब्दों का प्रत्यक्षीकरण देखकर उसकी अहमन्यता निराशा के घेरे में जा छिपी। उसकी इच्छा हुई कि वह चलकर भाभी के पैरों पर गिर पड़े और रो रोकर उससे क्षमा माँगे। वह इसी उधेड़बुन में पड़ी ही थी कि भाभी स्वयं आ पहुँची। उनके मुख पर एक अपूर्व शोभा थी और अधरों पर वेदनामय मुस्कराहट। ज्योत्स्ना, भाभी को देखते ही सिहर-सी उठी। परन्तु आज उसकी सिहरन क्षमामयी थी। वह कुछ कहना ही चाहती थी कि भाभी का कोमल कंठ फूट पड़ा—

"ज्योत्स्ना, तो तुम अब एक से दो हो जाओगी।"

ज्योत्स्ना ने कोई उत्तर नहीं दिया। शायद लज्जा से या अपनी हठीली-प्रकृति से—कौन जाने! पर उसने अपनी आँखों को एक बार भाभी की आँखों से मिला दिया अवश्य। भाभी को उसके बिछोह का बहुत दुःख हो रहा था। ज्योत्स्ना को चुप देख भाभी की मानसिक पीड़ा उग्र हो उठी।

"कल लाहौर से बारात आवेगी। तुम्हारे भावी पति एक अच्छे वकील हैं। तुम्हें वहाँ सब प्रकार का सुख मिलेगा परन्तु... हम लोगों को सबसे बड़ा दुख यही है कि तुमसे हम लोगों का साथ छूट जायगा। भाभी के नेत्रों में आँसू आ गए परन्तु वह कहती ही जा रही थी:—

"इसमें किसी का कोई अधिकार नहीं है। सभी स्त्रियों को दूसरे के घर जाना ही पड़ता है। सुख दुख सभी के साथ लगा रहता है। पिताजी तथा तुम्हारे भैया को कम दुख नहीं है परन्तु वे भी क्या करें। मनुष्य सब कुछ घर में रख सकता है परन्तु अपनी ही पैदा लड़की को रखना उसे पहाड़ उठाने के बराबर कठिन मालूम होता है। यही समाज का—संसार का विचित्र नियम है।"

भाभी के शब्दों से ज्योत्स्ना अपने ही भीतर रोने लगी परन्तु अपनी दुर्बलता छिपाने के लिए वह भरसक प्रयत्न कर रही थी। अन्त में लज्जा ने कहा—

"ज्योत्स्ना, मैंने तुम्हें कई बार प्रताड़नायें दी हैं और मुझे यह भी विश्वास है कि उससे तुम्हारे मर्मस्थल को कड़ी ठेस लगी होगी, इसलिये मैं आज तुमसे क्षमा माँगने आयी हूँ।"

अब ज्योत्स्ना अपने को न संभाल सकी। हृदयोद्गार लिए आँसू बाहर ढुलक पड़े, और वह लड़खड़ाते हुए स्वर में बोल उठी—

"यह क्या कह रही हो भाभी अपनी बिछुड़ती हुई ज्योत्स्ना से? मुझे क्यों व्यर्थ में लज्जित कर रही हो, अतीत की स्मृतियों से हृदय को वेदना का ज्वलित कुण्ड क्यों बना रही हो, मुझे क्षमा करो।"

ज्योत्स्ना रोती हुई लज्जा के पैरों पर गिरना ही चाहती थी कि लज्जा ने उसे गोद में उठा लिया और बहुत देर तक उसे विविध प्रकार से सान्त्वना देती रही।

दूसरे दिन बारात आयी। दिन भर सभी घर के लोग आतिथियों की सेवा में व्यस्त रहे। इधर ज्योत्स्ना को घेर कर उसकी सहेलियाँ उसका मजाक उड़ा रही थीं। प्रभा भी आज घर के

काम काज में लगी थी। उसको ज्योत्स्ना के पास बैठने तक का अवकाश न था। रात्रि को बारात दरवाजे पर आयी। रोती हुई ज्योत्स्ना के भाग्य पर सिन्दूर की लाली खिंच गयी और आज वह संसार में अकेली से दुकेली हुई। सब लोग भोजन के प्रबन्ध में लग गये। कुछ लोग जो थके माँदे थे सो रहे परन्तु......।

ज्योत्स्ना विरहिणी पृथ्वी की गोद में सुषुप्ति अवस्था में पड़ी, अपना भविष्य निर्माण कर रही थी। सारा जड़, चेतन स्तब्ध था, केवल चाँदनी जाग रही थी सोये हुए जगत की रखवाली करने के लिए। उसके साथ ज्योत्स्ना भी सिसकती हुई अपने मतवाले स्नेह को आँसुओं में बहने से रोकने का प्रयत्न कर रही थी। उसने अन्धकार में अपने आभूषणों को टटोला। सभ्यता पर असभ्यता का आवरण पड़ा था, स्वतन्त्रता पर परतन्त्रता की बेड़ियाँ जकड़ी थीं। उसका अन्तर, उसका नारी हृदय अपमान से, अभिमान से भीतर ही भीतर छटपटाने लगा। प्रतिबन्ध, नियम, निषेध उसको दुर्विनीत करने लगे। उसकी दीप्ति से अलं-कारों की शोभा मलिन पड़ जाती थी, उसके नेत्रों की चमक से तारे फीके पड़ जाते। वह दीर्घ श्वासों के बवण्डर से, उपेक्षा की आँधी से शून्य में मँडराने लगी। ज्योत्स्ना का वास्तविक हृदय बाहर आने के लिए छटपटाने लगा। वह संसार के प्राणियों में दया ढूँढ़ने का प्रयत्न करने लगी, हृदय की कोमल आकांक्षाओं को प्रत्यक्ष देखने का प्रयास करने लगी परन्तु उसे मिला क्या... दया की सुकुमारिता में एक क्रूरता, सभ्यता के आडम्बर में बर्बरता तथा मानवता की छाया में एक स्वार्थपरता। वह घबड़ा गयी और अपने कमरे के घने अन्धकार से बाह्य जगत की स्वच्छ चाँदनी में आ गयी। चाँदनी उसकी चिर परिचिता थी। उसे देखकर ज्योत्स्ना को कुछ सन्तोष हुआ। वह उस चाँदनी को

अपनी शरीर के रोम रोम में भर लेना चाहती थी—वह खड़ी २ पता नहीं कब तक चन्द्र से अपनी ज्योत्स्ना मिलाती रही—

प्रातःकाल होते ही सूर्य अपनी प्रखर किरणों को लेकर आ गया। ज्योत्स्ना की विदाई हुई। सारा भवन रुदनमय हो गया। पिता का तो कहना ही क्या, वह अब अकेले रह गये, उनकी बोलती चिड़िया चली गयी। सुरेश, लज्जा, प्रभा तथा सगे सम्बन्धी सभी उदास थे। घर मानो काटने दौड़ता था। सभी वस्तुयें अस्त-व्यस्त थीं। धीरे २ सम्बन्धियों ने अपनी राह ली।

एक ज्योत्स्ना के बिना सारा गृह अन्धकारमय हो गया।

× × × ×

६

बसन्त ऋतु की मादकता में ज्योत्स्ना भी अपने हृदय में बसन्त छिपाकर पति के घर आयी। आकाश स्वच्छ था, वातावरण सुहावना था, पक्षीगण अपने नीड़ों से रंगरेलियाँ मचा रहे थे, लतायें झूम २ कर एक दूसरे को चूम रही थीं, वृक्षों में नये नये पत्ते निकल आये थे। सूर्य की रश्मियों में कुछ गरमी आ चुकी थी। अपने को अकेले बंगले में पाकर वह विचारों की चौकड़ी भरने लगी। दिन भर बाबू कृष्णमोहन कचहरी में रहते, सन्ध्या की अरुणिमा को लिए घर आते और ज्योत्स्ना के आमोद प्रमोद का साधन एकत्र करते।

यौवन की ऊषा, एक उन्माद लिए आती है जिसमें मस्ती का संसार बसाया जाता है। उसकी मनमोहनी मादकता मनुष्य को

ऐसी भूलभुलैया में डाल देता है, जिसमें उसे केवल एक प्यास लगी रहती है, प्रेम की, सौन्दर्य की और एक अतृप्त आशा की। हृदय आशाओं का कोटर बन जाता है। चाह, टीस का रूप धारण किसी को खोजता फिरता है—जिससे वह कुछ पा सके, कदाचित प्रेम, संसार की सृष्टि का सार प्रेम। उसी समय हृदय का व्यापार सौन्दर्य के हाट में होता है, जहाँ बड़े २ व्यवसायी अपनी रूप मँजूषा लेकर प्रेम का क्रय विक्रय करने आते हैं और जिसको जो सौदा सस्ता होता है वह उसे खरीद लेता है, पागलों की तरह, उन्मत्तों की भाँति और उसी की मस्ती में घूमता है, मतवाला सा, पागल सा.........और न जाने कैसा कैसा होकर.........।

नये घर में ज्योत्स्ना को सुख ही सुख था, नौकर, दासियाँ रसोईयाँ और सब प्रस्तुत वस्तुयें। बंगले के सामने एक टेनिस कोर्ट था और पीछे हरी २ दूर्वादल से सुशोभित मैदान। एक छोटी कार और उसमें घूमने वाले दो ही व्यक्ति, स्त्री और पुरुष जिनका एक अलग संसार था, जीवनभर का, मृत्युपर्यन्त का, परन्तु सब कुछ होते हुए भी हृदय एक नहीं था। एक के जीवन में यदि सन्तोष था तो दूसरे में असन्तोष, एक की प्यास शान्त थी तो दूसरे की अतृप्त पिपासा थी, एक का हृदय स्वतन्त्र था तो दूसरा अपने को परतन्त्र समझ रहा था, एक अपनी अवस्था से सन्तोष कर अपना सीमित संसार बनाना चाहता था तथा दूसरा पक्षियों की भाँति स्वतन्त्र होकर इधर उधर उड़ना चाहता था। अन्तर था दोनों में पृथ्वी और आकाश का,—शून्य और असंख्य का। दोनों हृदय एक होते हुए भी एक दूसरे से दूर थे। दोनों कूलों को स्पर्श करती सरस धारा प्रवाहित हो रही थी परन्तु दोनों आपस में मिल नहीं पाते थे। किसी को भी यह प्रतीत नहीं होता

था कि दूसरे किनारे पर क्या है ? एक विचित्र उलझन में दोनों पड़े थे। यदि एक को नियमों पर अधिकार था तो दूसरे को उसके खंडन करने की बुद्धि थी। यदि एक ने आधुनिक शिक्षा का वरदान लिया था तो दूसरा भी सभ्यता का सजीव पुतला बना था। अन्तर होते हुए भी महान अन्तर था। दोनों इसको समझते थे। परन्तु एक दूसरे के सम्मुख अपने विचार प्रगट न कर सकते थे। इसी भाँति दिन की आँधी में महीने भी उड़ते गए।

कृष्णमुरारी लाहौर के एक अच्छे वकील ही नहीं थे, वरन् उनकी विद्वत्ता भी सभ्य समाज में पर्याप्त रूप से अपना स्थान रखती थी। उनकी आय अच्छी थी परन्तु वे रुपयों का मोह न करते थे। उनका विश्वास था कि धन वह मद है जो मनुष्य को मनुष्यता से गिराकर उसके सर्वनाश का मार्ग तैयार करता है। इसीलिए अपनी आय का अधिकांश दीनों की सेवा में, स्त्रियों की शिक्षा में तथा अच्छे कामों में लगा देते थे। उनको अपनी चिन्ता नहीं थी। उनका विचार था कि जब हम अपना धन अच्छे कामों में लगा रहे हैं तो हमें धन की कमी न होगी। उनके विचार बड़े दार्शनिक थे। वे जीवन को एक खेल समझते थे और उसके आडम्बर को एक नशा। उनके विचार इतने परिपक्व और सुदृढ़ होते थे कि लोग दाँतों तले अँगुली दबाते और उनकी मुक्त कंठ से प्रशंसा करते। उनके जीवन में सादगी थी। उनके भोजन और रहन-सहन में आडम्बर का लेशमात्र लगाव न था। उनके केश मस्तक पर बिखरे रहते, वस्त्र भी ठिकाने के न होते। जो मिलता खा लेते और अपने काम में जुट जाते। कचहरी में आपकी तूती बोलती थी। बड़े बड़े उच्च पदाधिकारी आपका सम्मान करते थे। क्योंकि आप सत्य का पक्ष लिया करते थे। कभी कभी तो आप कोर्ट में पदाधिकारियों के सम्मुख घंटों तक व्याख्यान देते चले

जाते परन्तु आपको रोकने का कोई साहस न कर सकता था।

अपने उद्देश्यों को सफल बनाने के लिए एक शिक्षित नारी से विवाह करने का विचार किया था। वह पूर्ण हुआ, परन्तु ज्योत्स्ना के विचारों से आप दुखी ही नहीं निराश हो गये। वे एक अच्छे मनोवैज्ञानिक थे। उन्होंने थोड़े ही दिनों में यह जान लिया कि ज्योत्स्ना के विचार मुझसे अधिक भिन्न हैं। इसी चिन्ता में वह अधिक व्याकुल से रहने लगे। वे हृदय चाहते थे, थोथे प्रेम का आडम्बर नहीं। वे गुणपारखी थे, रूप-दीप के शलभ नहीं। उन्हें यह भलीभाँति विदित हो गया कि ज्योत्स्ना एक स्वतन्त्र और धनाढ्य परिवार की कन्या है, उसके विचार ऊँचे होते हुए भी पाश्चात्य-रंग में सने हुए हैं। ज्योत्स्ना को उन्होंने बहुत समझाया, पर उनकी सभी बातें उलटे घड़े पर पानी की तरह सिद्ध हुई। फलतः जिस गाड़ी का बोझ उन्होंने अपने ऊपर लिया था, उसको शान्ति पूर्वक चलाने में ही भलाई समझ कर, ज्योत्स्ना की प्रत्येक इच्छाओं की पूर्ति में कोई कोर-कसर न होने देते। फिर भी ज्योत्स्ना की दृष्टि में उनका मूल्य नहीं के बराबर था।

ग्रीष्म की सन्ध्या एक आलस लिए आती है और विश्राम का लालच दिये चली जाती है। लाहौर भी सूर्य की प्रखर किरणों का कोप भाजन बन रहा था। लोग भयंकर ऊष्णता से व्याकुल होकर किसी तरह दिन काट रहे थे। पूँजीपति, उच्च पदाधिकारी इस भीषणता के लिए शिमला की ओर चल पड़े थे। ज्योत्स्ना सर्वदा ऐसे ऋतु में नैनीताल या शिमला में रहती थी। इसीलिए उसकी इच्छा वहाँ जाने की हुई। सन्ध्या को जब वकील साहब घर लौटे तो उन्होंने देखा कि ज्योत्स्ना बाहर चहल कदमी कर रही है। उसे इस प्रकार घूमते देखकर उन्होंने स्मित करते हुए पूछा—

"क्यों बाहर घूम रही हो ?"

"बड़ी भयंकर गर्मी है, मुझसे यहाँ की गर्मी सहन नहीं होती"

"कमरे में शिलिङ्ग-फैन तो लगा ही है।"

"गर्मी इतनी भीषण है कि एक पल रहना कठिन हो रहा है। भला फैन की हवा से कहाँ तक गर्मी दूर हो सकती है। थोड़ी ही देर में हवा गरम हो जाती है........" कहते हुए रुमाल से भाल का पसीना पोंछने लगी।

"फिर क्या चाहती हो तुम ? स्पष्ट बतलाओ न।"

"मेरी इच्छा शिमला जाने की है, मैं यहाँ नहीं रह सकती।" उसने भृकुटि पर बाल लाते हुए कहा—

"तो तुम्हारे साथ शिमला कौन जायेगा ! मैं तो कभी न शिमला गया हूँ और न जाऊँगा ही ?" मुझे यहाँ के कार्यों से अवकाश ही नहीं मिलता कि ठंढी हवा खाने के लिए पहाड़ पर जाऊँ।"

"परन्तु मैं तो यहाँ की गर्मी से झुलस जाऊँगी।"

"तुम्हारी ही तरह और भी स्त्रियाँ यहाँ रहती हैं, जो गर्मी में हवा खाने नहीं जातीं।"

"तो क्या मैं सबको रोक रही हूँ, यदि वे इस गर्मी में मरना चाहें तो मरें, मैं क्यों मृत्यु को निमन्त्रण दूँ।" स्वर में कुछ तेजी लाकर वह बोली—

"ऐसी कडुवी बात मुँह से नहीं निकालनी चाहिये ज्योत्स्ना ! वे भी तो हमारी ही तरह रक्त मांस से बनी हैं। वे भी दुख सुख का अनुभव हमारी तुम्हारी करती हैं। उनकी इच्छा रहते हुए भी नहीं जा पातीं, तो क्या उन्हें कुछ हो जाता है। सहनशीलता ही मनुष्य को उच्च बनाती है।"

"मैं बहुत उपदेश की बातें सुन चुकी हूँ—अब सुनने की

इच्छा नहीं। मैं शिमला अवश्य जाऊँगी। मुझे तो यहाँ रहना काल-कोठरी के समान प्रतीत हो रहा।"

"मुझे आज ही मालूम हुआ कि गर्मी में नगर कालकोठरी बन जाता है, इसके भी पहिले भारतवर्ष में मनुष्य ही रहते थे और उनके साथ स्त्रियाँ भी तथा सुन्दर सुन्दर बच्चे। उस समय भी यही भीषण गर्मी पड़ती थी और सभी हँस हँस कर खेल खेल कर इसे झेल लेते थे। यदि आज अंग्रेज न आते तो शिमला, नैनीताल, मंसूरी, दार्जिलिंग इत्यादि स्थान हवा खाने के लिए न बनते और भारतीयों में यह महारोग न पैदा होता। हम लोग तो पाश्चात्य शिक्षा से इतने गिर गये हैं कि अपनी संस्कृति छोड़-कर उनकी साधारण से साधारण बातों के अनुयायी अन्धे की भाँति हो जाते हैं। आज वे कह दें कि सूर्य उत्तर में निकलता है बस फिर क्या! दूसरे दिन सभी लोग पूर्व दिशा को उत्तर मानने लगेंगे। ऐसी तो दशा भारत की है।"

पति की विचारों से ज्योत्स्ना को बड़ी झुँझलाहट पैदा हुई, परन्तु कर ही क्या सकती थी, विवश थी। आज उसे अपनी परवशता का भान वृहत् रूप में हुआ। वकील साहब ने देखा कि मेरे कहने का प्रभाव ज्योत्स्ना पर उलटा पड़ा, इसलिए वह बोल उठे:—

"यदि तुम्हारी इच्छा हो तो तुम जा सकती हो, मैं इसका सब प्रबन्ध कर सकता हूँ परन्तु मेरा जाना तो नितान्त असम्भव है।"

ज्योत्स्ना तो पहले ही से जानती थी कि मेरा कहना व्यर्थ होगा। दूसरे पति का आक्षेप सुन कर वह और भी बिगड़ उठी थी। इसलिए उसने निराशा भरे शब्दों में कहा—

"अब मैं नहीं जाऊँगी।"

"वकील साहब चुप रह गये। क्योंकि वे जानते थे कि स्त्रियों

की जितनी प्रशंसा की जाती है उतनी उनमें गर्व की मात्रा बढ़ जाती है। अन्त में उन्होंने निश्चय किया कि ज्योत्स्ना से अधिक बोलना अपने आपको गिरा देने के समान है।

इसी प्रकार कई दिन बीत गए और आपस का मनमुटाव बढ़ चला। ज्योत्स्ना को आये कई महीने हो गये थे। पिता के कई पत्र भी आ चुके थे कि तुम चली आओ परन्तु ज्योत्स्ना ने अभी तक जाने का कोई निश्चय नहीं किया था। अब वह समझने लगी कि उसका भाग्य ही विपरीत है नहीं तो पिताजी मुझे इस अन्धकारपूर्ण कूप में क्यों ढकेल देते। मैं घर जाकर उनसे पूछूँगी कि आपने क्या देखकर मेरा विवाह उनसे किया। जिसको न बात करने का अवकाश, न कुशल क्षेम पूछने का समय, रात दिन पुस्तकों के पृष्ठों से उलझे रहना, पाश्चात्य-सभ्यता से घृणा, स्त्री-स्वातन्त्र्य से उदासीन, ऐसे व्यक्ति के साथ आपने मेरा विवाह कर किस अपराध का बदला लिया है। उसके सम्मुख, विश्व-विद्यालय के विशाल प्राङ्गण में सहस्रों मयूरों के मध्य में अपने पंखों को बिखराती हुई मयूरिनी की भाँति चलते समय का चित्र खिंच आया। उसी सुखद स्मृतियों की कटु वेदना लेकर वह सो जाती, कुछ समय के लिए अपने सन्तप्त हृदय को शान्त करती हुई॥

वकील साहब को दाम्पत्य सुख न होने के कारण बड़ी निराशा हुई। गृह-कलह से दूर ही रहने का वे जी जान से प्रयत्न करते। ज्योत्स्ना भी उनकी इस उदासीनता का अर्थ समझती थी। वह बराबर सोचा करती कि एक-न-एक दिन उसे यहाँ से अवश्य हटना पड़ेगा। क्यों न पहले ही हट जाऊँ। एकाएक उसके पिता का पत्र आया कि तुम्हारे भाभी को पुत्र उत्पन्न हुआ है। पत्र पढ़कर उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। घर जाने का एक बहाना भी मिल गया। वह इसी प्रसन्नता में सन्ध्या को बैठी वकील

साहब का मार्ग देख रही थी। सन्ध्या निकल गयी, रजनी सज कर आ गयी परन्तु वकील साहब का पता नहीं। ज्योत्स्ना की उत्सुकता क्रोध में परिवर्तित होने लगी। वह सोचने लगी:—

अब ये रात को भी मुझसे दूर रहना चाहते हैं, अच्छी बात है। मैं एक बार यहाँ से निकल तो जाऊँ फिर भूल कर भी इस घर को नमस्कार न करूँगी। ये हरएक बातें मुझसे छिपाते हैं। पता नहीं कैसे शुष्क हृदय के आदमी हैं कि किसी पर क्या बीत रही है, उसकी चिन्ता ही नहीं रखते। बस पुस्तकों से ही उनसे प्रेम है—वह इसी विचार शृंखला में बँध रही थी कि एकाएक दरवाजे पर थपथपाहट की आवाज आयी। ज्योत्स्ना गम्भीर मुद्रा बनाते हुए दर्वाजा खोल कर हट गयी। परन्तु.........पति के स्थान पर उसने एक नवयुवती को खड़े देखा। वह स्त्री देखने में सभ्य और शिक्षित प्रतीत होती थी। ज्योत्स्ना कुछ पूछना ही चाहती थी, कि वह बोल उठी—

"क्या आप ही वकील साहब की धर्मपत्नी हैं?"

"जी हाँ, आइये, शिष्टता पूर्वक ज्योत्स्ना ने कहा।

"क्षमा कीजियेगा मैंने आपको कभी पहले नहीं देखा था, इसलिए कुछ अशिष्टता हुई।"

"इसमें क्षमा-याचना की तो कोई बात नहीं, यह तो लोक व्यवहार की बात है।"

"धन्यवाद! बधाई देती हूँ आपको।"

"किस खुशी में?" ज्योत्स्ना ने आश्चर्य से पूछा—

"इस खुशी में कि वकील साहब जैसे विद्वान व्यक्ति की आप पत्नी हैं। उनके विचारों में प्रौढ़ता और वाणी में आकर्षण है। ऐसे व्यक्ति की पत्नी वही हो सकती है, जिसके भाग्य प्रबल होंगे।"

ज्योत्स्ना के नेत्र तन गये। वह क्या सुन रही है? वह स्वयं न समझ सकी, परन्तु क्षणभर ही पश्चात बोली—

"मैं तो उनके विषय में बिल्कुल अनभिज्ञ-सी हूँ।

"कोहनूर अपनी चमक से चकाचौंध नहीं होता, वह तो अपने को एक पाषाण ही समझता है। उनका कितना मूल्य है, वह लाहौर का हरएक शिक्षित व्यक्ति जानता है। उनके वाणी में जादू है, उनके व्यवहारों में आकर्षण है जो प्रत्येक व्यक्ति को अपनी ओर आकृष्ट कर लेता है।"

"इतना सब रहते हुए भी, वे मुझे नीरस और तेजहीन प्रतीत होते हैं। मुझसे घण्टे दो घण्टे बैठकर बातें भी नहीं करते।"

स्तब्ध-सी और विस्मय-सी उस युवती ने ज्योत्स्ना की ओर देखा और फिर बोली—

"विचारों के नाप तौल से हृदय पर अधिकार नहीं होता। आडम्बर और व्यर्थ की सभ्यता के ढोंग से कोई हृदय का सौदा नहीं कर सकता। हृदय तो अपने स्वरूप को ढूँढ़ता है जिसमें मिलकर वह एकाकार हो सके। शृङ्गार-बल पर पति पर विजय पाने की कल्पना ही हेय-वृत्ति है। आत्म-सम्मान के दम्भ से कोमल और ऊँचे विचारों को वश में नहीं किया जा सकता। इसके लिए त्याग, श्रद्धा और कर्त्तव्य की आवश्यकता है। वकील साहब विलासिता के पुजारी नहीं, हृदय के पुजारी हैं, गुण के उपासक हैं, कोमल मनोवृत्तियों के संस्थापक हैं।

"क्या मनुष्य महान होकर भी उदास हो सकता है, उसे जीवन से घृणा हो सकती है।

"महानता में ही गम्भीरता है, सागर महान है इसलिए गम्भीर अन्तरिक्ष है, इसलिए निस्पन्द है, नियति का कार्य महान

है इसलिए उसके व्यापार मौन हैं।" स्वरों में आवेश था। ज्योत्स्ना चुप हो गयी पति की प्रशंसा के सम्मुख। उसकी कल्पना आश्चर्य के घेरे में सीमित होने लगी, मैं भी पति के साथ महान हूँ परन्तु......जाग उठी उसकी स्वच्छन्दता, दानवी का रूप धारण कर विचारों की कठोर शिला पर नृत्य करने के लिए। आकृति क्रूर हो गयी, जो मेरे सौन्दर्य का उपासक नहीं है वह महान होते हुए भी तुच्छ है। अन्त में युवती ने उठते हुए कहा—

"मैं अब जाती हूँ, कृपाकर के वकील साहब से कह दीजियेगा कि अलका आयी थी।

"यदि कुछ काम हो तो कहिए मैं उनसे कह दूँगी।"

"नहीं नहीं, कुछ विशेष कार्य नहीं।"

युवती चली गयी।

ज्योत्स्ना ने देखा कि घड़ी बारह बजा रही है—उसकी शंका बढ़ चली—ये रात को कहाँ गये, कचहरी का कार्य तो सन्ध्या को समाप्त हो जाता है। सिनेमा से इनसे प्रेम ही नहीं, इनके स्वभाव से कोई इनका मित्र भी नहीं बन सकता, फिर भी कहाँ गये? यह स्त्री कौन थी? इसका नाम भी विचित्र है अलका, बोलने में बड़ी दक्ष प्रतीत होती है, सुन्दर भी है और स्वस्थ भी। इन्हीं लहरियों में थपेड़े खा रही थी कि दासी ने कहा—

"आप सो रहें, बाबूजी आते ही होंगे।"

"पता नहीं इतनी रात तक कहाँ रह गये?"

"किसी काम में फँस गये होंगे।"

"इतनी रात को भी काम ही होता रहता है।" ज्योत्स्ना कृत्रिम हास्य में हिल उठी—

इतने में दर्वाजा खुला और वकील साहब भीतर आ गये। ज्योत्स्ना को प्रतीक्षा में बैठे देखकर पूछा—

"तुम अभी सोयी नहीं ?"

"आपका आसरा देख रही भी ।"

"मेरा आसरा ! तुम्हें सोना चाहिये था, तबियत खराब हो जायगी—तो ।"

पति का व्यङ्ग ज्योत्स्ना समझ गयी । उसने कहा—

"और आप अभी तक जो जागते हैं......"

"मेरी बात छोड़ो, मैं तो कई कई रात तक बैठा रह सकता हूँ । मुझमें सब कुछ सहन करने की आदत पड़ गयी है ।"

यद्यपि ज्योत्स्ना के हृदय को एक ठोकर लगी तथापि विवाद बढ़ाना उचित न समझ कर बोली—

"आप से मिलने एक युवती आयी थी, कदाचित उसका नाम अलका था । वह तो आपकी बड़ी प्रशंसा कर रही थी ।"

"स्त्रियों के मुख पर रहता ही क्या है, किसी की प्रशंसा किसी की निन्दा । पुरुष है तो देवता है, महान है, विद्वान है, यदि स्त्री है तो सुन्दरी है, गुणवती है, साहसी है, सती है इत्यादि । शब्दों में व्यङ्ग है तो विद्रोह भी, मिठास है तो कड़ुवापन भी ।" कहते हुए वह किताब खोलकर पढ़ने लगे । ज्योत्स्ना ने समझा कि ये आक्षेप मुझपर ही हैं । वह चुप होकर लेट रही और अपने भाग्य से आँखमिचौनी खेलने लगी ।

ज्योत्स्ना की विवशता और असमर्थता बढ़ती गयी और उसी के साथ उसकी स्पर्धा । उसने निश्चय कर लिया, कि वह अब इस पिंजर में बन्द होकर अपने विकास को रोक नहीं सकती । उसे भी हृदय है, वह भी एक बड़े ऐश्वर्य की अधिकारिणी है । क्षोभ और ग्लानि ने उसे बिलकुल पागल बना दिया था । यद्यपि वह यौवन के पथ पर अग्रसर हो चुकी थी परन्तु फिर भी उसमें शैशव का चापल्य था और था एक हठ । घर में उसकी बातें

कभी अपूर्ण नहीं रक्खी गयी थीं। उसका लालन पालन सुख पलनों में हुआ था। वह पति पर शासन करना चाहती थी परन्तु शासन करने के कायदे कानून से वह अपरिचित थी। पाश्चात्य सभ्यता में यह भारी कमी महसूस करते हुए भी उसके पास अब कोई उपाय न था। पति के बातों का वह उलटा ही अर्थ लगाती, जिससे वकील साहब को महान दुःख होता। वे समझाते, शिक्षा देते परन्तु वह उधर ध्यान ही नहीं देती थी। समझती थी—वह स्वयं पढ़ी लिखी है, उसे समझाने के लिये दूसरे की आवश्यकता क्या। उसे विश्वास था कि अन्त में इन्हें मेरी इच्छाओं के सामने झुकना पड़ेगा परन्तु वह नहीं जानती थी कि दोनों के बीच की खाईं दिन-प्रति दिन अधिक चौड़ी होती जा रही है।

दूसरे दिन वकील साहब नित्य की भाँति भोजन कर कचहरी गये और ज्योत्स्ना अपने भाग्य से ईर्ष्या करने लगी। वह उनसे कुछ कह भी न सकी। वह सोचती थी कि यदि मैं घर जाने की बात कहूँगी तो वह तुरन्त आज्ञा दे देंगे परन्तु वह ऐसी आज्ञा की भूखी न थी। वह सम्मान पूर्ण समर्थन चाहती थी। इसी चिन्ता में वह उठकर उनकी पुस्तकों को उलटने पलटने लगी तो उसे एक पत्र मिला जो अंग्रेजी में था और जिसके नीचे 'अलका' लिखा हुआ था। पत्र का आशय था—

"प्रिय वकील साहब। आपके दर्शन किये कई दिन व्यतीत हो चुके परन्तु दुख है कि आप जब से गये, पुनः नहीं आये। आपके बिना मेरी तबियत घबड़ाया करती हैं, इसलिए कभी २ दर्शन देकर मुझे कृतार्थ करते रहिए।" पत्र पढ़ते ही ज्योत्स्ना के शरीर में बिजली दौड़ गयी उसने सशंकित नेत्रों से पत्र को कई बार पढ़ा और उसे लिए हुए धम्म से कोच पर जा बैठी। उसकी विचार-प्रवृत्तियाँ पति के विषय में जितनी थी, सब

में रहस्य विदित होने लगा। वह सोचने लगी—तभी तो अलका उनको देवता बना रही थी, उनकी प्रशंसा के पुल बाँध रही थी। और वे भी उसकी बातें सुनने पर मेरे ही ऊपर आक्षेप करने लगे। ठीक है, इसीलिए वे अब रात को भी देर तक घूमने लगे हैं। मुझे तो पता नहीं क्या सोचते होंगे परन्तु अपनी बात छिपाते हैं। अब उनकी सारी बातें खोज निकालूँगी और कहूँगी कि मुझसे अधिक दर्शन न झाड़ा कीजिये नहीं तो मैं आपका सारा पोल खोल दूँगी। उसको विषाद होरहा था और एक खीझ भी।

वह इसी तन्मयता में थी कि दासी ने आकर एक 'विजिटिंग कार्ड' ज्योत्स्ना के सामने रख दिया। उसने उसे उठाकर पढ़ा तो उसमें लिखा था—कैप्टेन सुनील कुमार! उसके मुख पर एक लाली दौड़ गयी। सुनील उसका बहुत दिनों का सहपाठी था और ज्योत्स्ना को बहुत चिढ़ाया करता था। उसकी सुन्दरता ने कई बार ज्योत्स्ना को अपनी ओर आकर्षित किया था। परन्तु उसकी निष्काम अल्हड़ता उसके स्त्रीत्व को अक्षुण्ण बनाये हुए थी।

यौवन की ऊषा-बेला का सहचर पाकर उन्माद से भरी ज्योत्स्ना उसका स्वागत करने बाहर निकल आयी और देखा कि कार के सहारे फौजी पोशाक में सुनील खड़ा है। ज्योत्स्ना को देखते ही उसकी प्रसन्नता कूक उठी, उसने तन कर फौजी सलाम किया और हँसने लगा। ज्योत्स्ना झेंप गयी और बोली—

"क्या मैं तुम्हारी आफीसर हूँ जो सैल्यूट दे रहे हो?"

"हाँ! उससे भी बड़ी।"

ज्योत्स्ना खिलखिलाकर हँस पड़ी और उसको लेकर अपने कमरे में आयी। कोच पर बैठने का संकेत करते हुए उसने कहा—

"सुनील, तुम तो अब बहुत बदल गये हो। ठीक नेपोलियन से मालूम पड़ते हो।"

"तुम्हारा सुनील अभी उसी तरह है। चाहे कुछ भी हो जाऊँ, लेकिन तुम्हारे सामने उसी तरह रहूँगा।" ज्योत्स्ना के अन्तिम वाक्य से कुछ झेंपते हुए उसने कहा।

"अच्छा घर का क्या हाल चाल है?"

"सब अच्छा है। मैं तो तुम्हारे लिये बड़ा घबड़ा रहा था। बहुत दिनों से तुम्हारा कोई समाचार नहीं मिला था। मैं जब ट्रेनिंग कैम्प में था तब मुझे मालूम हुआ कि तुम्हारी शादी हो गयी। मुझे इस बात का दुख हुआ कि तुमने विवाह के अवसर पर भी मुझे नहीं याद किया। अच्छा तुम्हारे पति देव कहाँ हैं? मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। तुम्हें मैं यहाँ कुछ दुखी देख रहा हूँ, क्या मेरा अनुमान ठीक है?"

ज्योत्स्ना उससे कुछ छिपाती न थी.........परन्तु अपनी मर्य्यादा सभी से छिपानी पड़ती है। उसने कहा—"नहीं! गर्मी के कारण कुछ दुबली पतली हो गयी हूँ।

ज्योत्स्ना ने देखा कि सुनील उससे सारी बातें जान लेना चाह रहा है, इसलिये उसने कहा—

"अच्छा! चलो भोजन तो कर लो।"

सुनील हँस पड़ा—विवाह के उपलक्ष में यहीं रूखा सूखा भोजन या और कुछ.........।

ज्योत्स्ना झेंप गयी। कालेज में उसने सुनील को कितनी ही प्रकार की लालसायें दी थीं, आश्वासन दिये थे, उन सबकी स्मृति आते ही ज्योत्स्ना संकुचित होने लगी, दिन में झुकती हुई कुमुदनी की भाँति, लज्जा के आवरण में छिपती हुई। सुनील ने भोजन किया और बैठकर स्वच्छन्द भाव से ज्योत्स्ना से बातें करने

लगा। बातों के सिलसिले में उसे यह भान नहीं रहा कि अब ज्योत्स्ना दूसरे की स्त्री है, उससे पहले की सी बातें नहीं करनी चाहिए; लेकिन वह अपने स्वभाव से विवश था। मित्रों के मिलते ही उसकी अल्हड़ता फूट पड़ती थी और वह उनका एक खिलौना बन जाता था। बातों में ही सन्ध्या हुई तो सुनील ने कहा—

"ज्योत्स्ना! सिनेमा देखने चलो।"

ज्योत्स्ना अब क्या उत्तर दे। वह असमंजस में पड़ गयी। सिनेमा जाऊँ और वह आ गये तो! क्या सोचेंगे वे? क्या मुझे ऐसा साहस करना उचित है? परन्तु सुनील! उसके प्रेम की कैसे अवहेलना करूँ? वह रुष्ट हो जायगा तो। अभी वह कुछ निर्णय भी न करने पायी थी कि सुनील बोल उठा—

"क्या सोच रही हो ज्योत्स्ना! क्या तुमने अपने आत्मसम्मान को तिलाञ्जलि दे दी है, क्या तुम्हारी स्वतन्त्रता अब पिंजरे के पक्षी की ही भाँति रह गयी है, तुम तो कभी भी ऐसी बातों को स्वीकार न करती थीं। यदि तुम्हें पति देव का डर हो तो मैं उनसे कह दूँगा।"

ज्योत्स्ना अब अपने को न रोक सकी और उठकर दर्पण में अपने सौन्दर्य की परीक्षा करने लगी। अपने को भलीभाँति सजा सजाकर वह सुनील के बगल में कार पर आ बैठी। धीरे से एक धक्का देकर वह छोटी सी कार सड़कों पर दौड़ने लगी और उसी के साथ साथ ज्योत्स्ना की आशायें हरी होने लगीं, और स्वतन्त्र रूप से विचरने लगी!—स्वतन्त्रता कितनी प्यारी वस्तु है। उसे आज ही विवाह के पश्चात् आनन्द की एक अनुभूति हुई थी। उसने सुनील को भरी आँखों से देखकर पूछा—

"सुनील तुम फौज में क्यों गये, क्या दूसरी नौकरी नहीं कर सकते थे ?

उसकी आँखें सड़क पर थीं। वह एक दीर्घ श्वाँस छोड़ता हुआ बोला—

"योद्धा होने में ही युवकों का जन्म सफल होता है। मैं स्वतन्त्रता की वास्तविक मस्ती पाना चाहता था, जिसमें चिन्ता की झलक न हो, संघर्षों की छाया न हो, निराशाओं का कटु अनुभव न हो—वह मस्ती जिसमें केवल वसन्त का राज्य हो, बारहों महीने मादकता की लाली छलकती रहे, उछल उछल कर ललक ललक कर और हृदय सागर-सा विशाल होकर अपनी सीमा को चूम २ कर अठखेलियाँ करते रहे। उस आनन्द को मैंने इस जीवन में देखा, इसीलिए मैं इधर ही आ गया नहीं तो.........।

"नहीं तो क्या..." ज्योत्स्ना ने आगे की बात को पीते हुए पूछा।

"यही कि दुख भरे जीवन की गाथा सबसे कहता फिरता और हृदय को निराशाओं का घोसला बना डालता।"

"क्या प्रेममय जीवन में शान्ति नहीं है।"

"है, अवश्य है और रहेगी। परन्तु सबके लिए नहीं, केवल उनके लिए जिनका हृदय एक है, जो अपने को संसार की जटिलता से अलग रखकर अपना अस्तित्व अलग निर्माण करते हैं, और संसार के वातावरण में पक्षी के जोड़े की भाँति स्वतंत्र उड़ते हैं।"

ज्योत्स्ना चुप थी। मोटर द्रुतगति से चलती चलती एकाएक सिनेमा भवन के सामने रुकी। दोनों उतरे और सिनेमा भवन के भीतर जाकर बैठ गये। हाल दर्शकों से भरा था। सुनील को

सभी एक बार घूम घूमकर देखते थे और साथ में उस रूपवती ज्योत्स्ना को। दोनों किसी भार से चुप थे। सुनील ने भीड़ देख कर कहा—

"कितनी भीड़ है, फिल्म देखने के लिए जनता टूटी पड़ती है। लोग कहते हैं, भारत गरीबों का देश है, यहाँ की अधिकांश जनता भर पेट भोजन नहीं पाती। समाचार पत्रों में इसी की चर्चा रहती हैं परन्तु यहाँ आकर कोई किसी देश की निर्धनता का क्या चित्र खींचेगा, मेरी समझ में नहीं आता। जिसको देखो वह बाबू बना हुआ है चाहे घर में खाने को न हो। एक दिन का उपवास भले हो जाय, स्त्री बच्चों के चाहे शरीर पर वस्त्र भले न हों परन्तु क्या मजाल कि कोई फिल्म बिना देखे निकल जाय।"

"सिनेमा देखने तो गरीब नहीं आते, धनी और अच्छे वेतन पाने वाले अधिकारी ही आते हैं।"

"यह तुम्हारे विचार से, बसन्त में सभी ओर हरियाली ही हरियाली दिखलाई देती है। अधिकतर इसमें बैठे सज्जन साधारण श्रेणी के मनुष्य होंगे जिनको प्रति दिन कुँआ खोदना और पानी पीना पड़ता है, परन्तु उन्हें सिनेमा देखने की ऐसी लत पड़ जाती है,कि भोजन न करेंगे,अपनी आशाओं को कुचलेंगे, परन्तु सिनेमा अवश्य देखेंगे। आधुनिक सभ्यता की देन में यह एक विशेष देन है। अधिकतर जो दीन है वही मदिरा पीते हैं, जुये खेलते हैं और व्यर्थ में पसीने की कमाई को पानी की भाँति बहा देते हैं और अन्त में जब शिथिल हो जाते हैं तो भीख माँगने वालों की संख्या बढ़ाते हैं और साथ २ अपने बच्चों स्त्रियों का जीवन भ्रष्ट करते जाते हैं। यह तो है भारत की दशा। नगर के वातावरण को देखकर कोई भी किसी देश की वास्तविक स्थिति का निराकरण नहीं कर सकता। देश का चित्र तो ग्रामों में रहता है, जो

देश के प्राचीन निवासियों का स्थान है, उनकी सुदृढ़ संस्कृति है। जहाँ आधुनिक सभ्यता का लोलुप शासन नहीं है।"

"तो गरीब ही कुकर्मों और कुरीतियों के शिकार बनते हैं और फिर धनियों का कोई दोष नहीं।

"गरीबों का दोष उनकी मूर्खता के कारण है क्योंकि वे अशिक्षित हैं। उनको अपनी मान मर्य्यादा का ज्ञान नहीं है। वे आनन्द चाहते हैं और उसी आनन्द के लिए कुकर्म करते हैं। परन्तु धनी लोग उन गरीबों की मूर्खता से लाभ उठाते हैं और अपना धन विलासिता में बहाकर दीनों को चूसने के लिए नये २ मार्ग तैयार करते हैं। ये बड़े प्रासाद जिसे देखकर आँखें चकाचौंध हो जाती हैं, इन्हीं दीनों की हड्डियों पर बना है। यहीं लोग स्वर्ग, नर्क की कल्पना कर लेते हैं। एक ओर दीनों की टूटी फूटी झोपड़ियाँ हैं, कोमल शिशुओं का आर्तनाद और नर कंकालों का क्रन्दन स्वर है तो ठीक उसके बगल में धनियों के महल और रेडियो तथा पियानो का मधुर गुञ्जन। इसी को संसार की गति कहते हैं।"

"तब गरीब भी क्यों नहीं अमीर हो जाते। उनके लिये भी तो वही उपकरण हैं, जो धनिकों के लिये हैं।" एक प्रश्न-सूचक दृष्टि ज्योत्स्ना ने फेंकी।

"यदि अमीर उनको बनाना चाहें तब तो, धनिक वर्ग उनको चक्की के आटे की भाँति पीस डालता है। गाँवों में किसान, गरीब मजदूर और दलितवर्गों की दशा अत्यन्त दयनीय होती है, धन का मूल्य है, जीवन का नहीं, चमक का अस्तित्व है, वास्तविकता का नहीं। सभी अपने स्वार्थ की दौड़ में आगे बढ़ रहे हैं।"

"तुम सरकार के नौकर होकर उसके शासन के विरुद्ध बातें क्यों करते हो।" ज्योत्स्ना ने पूछा—

"मैं सरकार की नौकरी करता हूँ अवश्य पर शरीर से, मन से नहीं। चन्द चाँदी के टुकड़ों पर शरीर बेची है, आत्मा नहीं। अपमान के नीचे दबे हुए स्वाभिमान को नहीं भूला हूँ। इसे भूलकर पशु बनने से पहले मरना पसन्द करूँगा। देश की स्वतन्त्रता पर बलिदान होने वाले वीरों की स्मृति मस्तिष्क में वर्तमान है। देश की स्वाधीनता के लिये हृदय में बहुत कुछ छिपा हुआ है, और उसी की पूर्ति के लिये प्रथम परीक्षा में उतरा हूँ। हृदय को कठोर और शरीर को सहन करने योग्य बना रहा हूँ। जो व्यक्ति देश प्रेम से शून्य है, उसे मैं भारत के लिये भारस्वरूप समझता हूँ।

"ओहो! अब तो तुम बड़े देशभक्त होने की तैयारी कर रहे हो, सुनील! पहले से तो तुम्हारे विचारों में बहुत बड़ा परिवर्त्तन हुआ है।"

"यह परिवर्त्तन नहीं युग का प्रवाह है, प्रवाह के विपरीत दिशा में जाने वाले की अवस्था दयनीय ही नहीं शोचनीय भी हो जाती है। इतने में दर्शकों के करतल ध्वनि के मध्य सिनेमा प्रारम्भ हुआ और लोग आबद्ध दृष्टि से चित्रपट देखने लगे। भवन में अन्धेरा था। सुनील ने मुख फेर कर ज्योत्स्ना की ओर देखा तो वह उसी की ओर देख रही थी। दोनों का हृदय 'धक' कर उठा और लज्जित होकर वे सिनेमा देखने लगे। दोनों किसी अज्ञात प्रेरणा से व्याकुल होने लगे। सुनील ने अँगुलियाँ चटकाते हुए कहा—

"कैसी फिल्म है।"

"अच्छी तो है!"

"प्लाट तो बड़ा ही रोचक है, परन्तु कहीं २ अस्वाभाविकता खटक उठती है।"

"कैसी अस्वाभाविकता ?"

"यही कि कहीं २ परम्परा का यथेष्ठ पालन नहीं हुआ है और कहीं २ घटनायें भारतीय संस्कृति के सर्वथा प्रतिकूल हो गयी हैं।

"तुम यही सब देखा करते हो या और कुछ।"

"आधुनिक फिल्मों में सुधार की अधिक आवश्यकता है। केवल तड़क भड़क से फिल्म को अच्छा नहीं समझना चाहिए। इसमें देश काल और परिस्थिति का विशेष ध्यान रखना आवश्यक है। पाश्चात्य देशों में सिनेमा जगत ने पर्याप्त उन्नति की है। यहाँ की एक दो फिल्म कम्पनियाँ आख्यायिकाओं के आधार पर फिल्मों की रचनायें करने में प्रवृत्त हैं और आशा है कि भारतीय चित्र-पट शीघ्र उन्नति करेगा।"

इतने में फिल्म की घटना बड़ी भयानक हुई, सुनील और ज्योत्स्ना भी उधर देखने लगे और देखने में इतने तल्लीन हो गये कि जब तक वह फिल्म समाप्त न हुई, सभी एक टक देखते रहे। खेल के पश्चात् ऐसा प्रतीत हुआ कि सभी एक धारा में बहते जा रहे हैं। स्मृतियों की मूर्छना हटी, लोग उठे और चल पड़े। सुनील और ज्योत्स्ना की कार भी सिनेमा भवन से चल पड़ी।

रात्रि की निस्तब्धता को चीरती हुई छोटी सी कार ज्योत्स्ना के बंगले पर आ रुकी। ज्योत्स्ना उतरी और सुनील से बोली— "अब कब भेंट होगी।"

"जब कहो, तभी आऊँ, मैं तो स्वतन्त्र हूँ।"

"ज्योत्स्ना चुप हो रही और कुछ कहना ही चाहती थी कि स्वर एकाएक रुक गया और उसके मुख पर नीलिमा दौड़ गयी। सुनील बिजली के धुँधले प्रकाश में उस परिवर्तन को न देख सका। सुनील को खड़ा देखकर ज्योत्स्ना ने कहा—मैं जल्दी ही घर जाने वाली हूँ, वहीं मिलना।"

"यहाँ नहीं मिलोगी, उसने उत्सुकता से पूछा।"

वह 'नहीं' कहती हुई चली गयी, धुँधले प्रकाश में एक आभा सी, सजीव परछायीं सी और खड़ा हुआ सुनील देखता रहा। क्षण भर पश्चात् वह घूमा और कार पर बैठकर हवा से बातें करने लगा।

बंगले के भीतर आकर ज्योत्स्ना ने देखा कि उसके पति कोच पर लेटे पुस्तक पढ़ रहे हैं। वह उनसे बिना बोले ही अपने कमरे में चली गयी। वकील साहब ने संदिग्ध नेत्रों से ज्योत्स्ना की ओर देखा तो उनके नेत्र तन गये। ज्योत्स्ना का ऐसा भव्य शृङ्गार उन्होंने कभी नहीं देखा था। उनके हृदय में शंकायें ऊधम मचाने लगीं। वह इसी विचार में पड़े थे कि आज यह इतनी रात तक कहाँ थी? जब ज्योत्स्ना देर तक अपने कमरे के बाहर न आयी तो वकील साहब स्वयं उठे और मुख पर गम्भीरता लिये हुए उसके पास पहुँचे और बोले—

"तुम, इतनी रात तक आज कहाँ रही?"

"सिनेमा देखने गयी थी।"

"किसके साथ?"

"अपने एक मित्र के साथ।"

वकील साहब चुप हो रहे और आकर विचारों में लीन हो गए।

× × × ×

७

प्रातःकाल के आगमन में ऊषा ने अपनी अरुणिमा से उसका स्वागत किया। वकील साहब की मुखाकृति विवर्ण थी। कल की घटना ने उनके हृदय में बड़ा उद्वेग पैदा कर दिया था। पत्नी का इतना कठोर हृदय, इतना नृशंस व्यवहार, उनकी सहन-सीमा के बाहर की बात हो गयी थी। उनका हृदय-प्राङ्गण विचारों के द्वन्द्वयुद्ध से आन्दोलित था। वह अपना कर्त्तव्य सोच रहे थे परन्तु तत्कालिक परिस्थिति सुधारने के कोई लक्षण दृष्टिगोचर नहीं होते थे। कर्त्तव्यशील होकर भी उन्हें निराशा हो रही थी।

वे अपने कमरे में बैठे निस्तार के लिये एक तिनके का सहारा खोज रहे थे, परन्तु वह छोटा-सा तिनका भी उनके विचार-प्रवाह में अटकना नहीं चाहता था। मस्तिष्क की चेतना जब थक जाती तो उठकर घूमने लगते और सोचते—

प्रेम की सीमा में अभिमान की छाया तक नहीं होनी चाहिये, पत्नी अपने पति के लिए सब कुछ त्याग करती है, कठिन से कठिन समय में क्षमता के साथ तत्पर रहती है, अपनी मर्य्यादा और आत्म-सम्मान का गर्व भूल जाती है। फिर ज्योत्स्ना में यह सब बातें क्यों नहीं? क्या मैं उसे प्यार नहीं करता? मैं तो उसे प्रेम करता हूँ, परन्तु जब वह बराबर प्रेम को उपेक्षा दृष्टि से देखती है तो इसमें मेरा क्या दोष? एकाकी प्रेम कब तक टिकाऊ रह सकता है। वह तो उस मिट्टी के घड़े के समान है, जिसके टूटने का समय निश्चित नहीं। यदि उसे कुछ दिन के लिये उसके

पिता के घर पहुँचा दूँ तो ! परन्तु वे क्या कहेंगे । ऊँह ! कुछ भी कहें । गृह-कलह से तो छुटकारा मिल जायगा ।"

वकील साहब का माथा घूमने लगा और माथे पर हाथ रख कर लेट गये । विचारों की धारा प्रवाहित थी—परन्तु एक को दुखित करके दूसरा कभी भी सुखी नहीं रह सकता । उसे इस बात का गर्व है कि मैं जज की पुत्री हूँ, मेरे पास धन है परन्तु प्रेम और कर्त्तव्य के सामने धन का कोई मूल्य नहीं । धन की माया एक पहेली है । फिर हम उस धन से क्यों डरें ? मैंने विवाह किया है, मुझे किसी का भय नहीं । मैं अपने सफ़ाई में अपने पक्ष का समर्थन किसी के भी सामने भलीभाँति कर सकता हूँ परन्तु वह क्या कहेगी ? यदि घर गयी तो झूठे अपराध का भागी मैं बनाया जाऊँगा और उसकी प्रताड़ना मेरे ऊपर पड़ेगी । अच्छा देखा जायगा जो मेरे भाग्य में होगा वही होगा। उसको कोई मिटा नहीं सकता । मैं बहुत दिनों से अकेला ही रहता आया हूँ और रहूँगा, इसमें चिन्ता की कौन-सी बात...।

वह उठे और बिना भोजन किये ही कचहरी चले गये ।

ज्योत्स्ना ने भोजन किया और बैठकर सोचने लगी कि अब घर जाने का कौन सा रास्ता निकालना चाहिए, क्योंकि अब यहाँ रहना हितकर नहीं । उसने पहले सोचा कि पिताजी को एक पत्र लिख दूँ , भैया को भेज दीजिये । वे आकर मुझे लिवा ले जायँ । मैं वहाँ आकर आप से सब बातें बताऊँगी । इस पत्र को तार समझियेगा । वह उठी और पत्र लिखने के लिए ऊपर के दराज से कागज निकालने खड़ी हुई । परन्तु आलमारी का दराज ऊँचा था । वह एक कुर्सी खींचकर उसपर खड़ी हो गयी और कागज निकालने लगी—इसी बीच में उसका पैर लड़खड़ाया और वह गिरने गिरने हुई । अपने को बचाने के लिए उसका हाथ

पास की तस्वीरों पर पड़ा और झनझना कर तीन चार तस्वीरें जमीन पर गिर पड़ीं। शीशा चूर २ हो गया। वह संभल तो गयी परन्तु ऊपर से कूद पड़ी। शीघ्रता के झटके से पास की मेज पर रखा हुआ शीशे का कलमदान एक झन्नाटे के साथ जमीन पर आ रहा और उसके टुकड़े टुकड़े हो गये। उसने एक हलकी दृष्टि से इन वस्तुओं को देखा और अपने कमरे में जाकर पिता को पत्र लिखने बैठी। उसने पत्र में असत्य का पूरा सहारा लिया और अपने को निर्दोष सिद्ध कर पत्र को बन्द किया और पिताजी के पास भेज दिया।

पत्र भेज कर उसने सन्तोष की एक लम्बी साँस ली और लेटकर उपन्यास पढ़ने लगी। तस्वीर और दावात के गिरने का उसको कोई दुख नहीं हुआ।

प्रति दिन के नियमानुसार संध्या को जब वकील साहब घर आये तो उन्होंने कमरे में शीशों तथा दावात के टुकड़ों को पड़ा पाया। उनकी दो अच्छी तस्वीरें भी भूमि पर फटी पड़ी थीं। पहले तो उनके समझ में कुछ न आया कि यहाँ क्या हुआ है, परन्तु यह सोचकर कि ज्योत्स्ना के अतिरिक्त यहाँ आने का कोई साहस नहीं कर सकता, वह उसके पास जाकर बोले—

"ये तस्वीरें किसने गिरा दी हैं? दावात किसने तोड़ी है?"

"मैंने!" उपन्यास में आँखों को उलझाये हुए ही उसने उत्तर दिया।

"तो इन तस्वीरों ने तुम्हारा क्या बिगाड़ा था?"

वह चुप होकर पुस्तक पढ़ती जा रही थी। उसके न बोलने से वकील साहब का क्रोध भड़क जाना स्वाभाविक था। उन्होंने कुछ तीव्रता से पुनः कहा—

"हैं अपराध करने पर अपराधी का चुप रहना ही अपराध

की स्वीकृति है। क्या मैं पूछ सकता हूँ कि इनके तोड़ने फोड़ने से तुम्हारा क्या लाभ हुआ ? यदि नुकसान किया भी तो, उसी तरह उन्हें छोड़ देना, यह संकेत करता है कि तुम मेरी अवहेलना करती हो ? क्या यह शोभनीय है ?"

"कभी नहीं ! चिन्ता की कोई बात नहीं। फिर आ जायँगी।" उपेक्षा से वह बोली।

"अवश्य आ जायँगी ! आप जज की लड़की हैं न, आपके पास धन है; आप सब कुछ कर सकती हैं परन्तु मैं गरीब हूँ। गरीब के पैसे बड़े परिश्रम से आते हैं।"

ज्योत्स्ना ने अपना उग्र रूप धारण किया:—

"हाँ, हाँ, मैं जज की लड़की हूँ यह भी दिखा दूँगी। हमारे यहाँ ऐसी ऐसी तस्वीरें नौकरों के यहाँ बहुत मिलेंगी। मैं इस घर में बातें नहीं सुनने आयी हूँ, किसी की धौंस सहना मैंने नहीं सीखा है"

ज्योत्स्ना की तीक्ष्ण और मर्मभेदी बातें वकील साहब को अत्यन्त असह्य मालूम पड़ीं। वे भृकुटी पर बाल लाते हुए कड़क कर बोले—"मैं भी मनुष्य हूँ—पशु नहीं। सहनशक्ति की भी सीमा होती है। कड़ुवी बातों को निगल जाने की शक्ति अब मुझमें नहीं है। मैं भी तुम्हारी अनधिकार बातों को सहन करने के लिये मजबूर नहीं हूँ।"

"अच्छी बात है। मैं शीघ्र ही पिता के घर जाकर इस झगड़े का पटाक्षेप कर दूँगी।"

"अपराध भी करना और उसपर से आतंक जमाना, यह भी कोई न्याय है। थोड़ी थोड़ी बातों पर घर चले जाने की धमकी देना भी तुम्हारी जैसी स्त्री के लिये ही शोभा देता है।"

"आज एक बात और मुझे मालूम हुई और वह यह कि

आप शिक्षित और विद्वान होकर भी किसी का अपमान करना अच्छी तरह जानते हैं।"

"बात का जवाब बातों से देने से कैसा अपमान और किसका अपमान ?"

"मेरे पिता का और साथ ही साथ मेरा भी।"

मैंने तुम्हारे पिता के विषय में एक शब्द भी नहीं कहा है।"

"प्रताड़ना और प्रशंसा का अन्तर मुझे विदित है। क्या आपने मुझे जज की लड़की कह कर उनको और मुझको अपमानित नहीं किया है।"

"जज को जज कहना तो उसका अपमान नहीं कहा जा सकता।"

"अपराधी आसानी से अपना अपराध स्वीकार नहीं करता।"

"खैर ! क्षमा कीजियेगा" कहते हुए वे कमरे के बाहर हो गये।"

ज्योत्स्ना भी मारे क्रोध के अपने कमरे में चली गयी और विचारों में डूबने उतराने लगी। विचारों की विवशता में वह सिसक सिसक कर रोने लगी। आज वह अधिक दिनों पर रो रही थी। उसका आवेश तूफान सदृश हो गया था। वह सोचने लगी—मैं उनके सामने क्यों झुकूँ जब कि उनपर मेरा भी समान अधिकार है। मैं झुकूँ और वे नहीं—ऐसा कैसे हो सकता है ? परन्तु हृदय को क्या कहूँ ? जब आत्म-सम्मान को धक्का लगता है और हृदय विकल होकर क्रन्दन करने लगता है, उस समय मनुष्य को अनुचित उचित का ध्यान नहीं रह जाता। मैं भी क्रोध में क्या २ कह गयी ? कुछ भी हो, अधिकारों का अपव्यय नहीं होना चाहिये। हृदय का शासन प्रेम से होता है परन्तु जब दोनों खुल कर मिलें तब न ! मैं नारी हूँ, इसलिए उसके अधिकारों का बलि-

दान करना न्याय नहीं है। अच्छा! जो कुछ हुआ और होगा उसे झेलूँगी परन्तु अपने अधिकार के लिए, अपने सम्मान के लिए मर मिटूँगी।

उसने अंचल से आँसू पोंछे और लेट कर छत की कड़ियाँ गिनने लगीं।

ज्योत्स्ना का पत्र जब बाबू उमेशचन्द्र ने पढ़ा तो अवाक से हो रहे। उन्हें पहिले तो एक भ्रम सा हुआ परन्तु उसकी हस्तलिपि पहचान कर उसको पुनः दृष्टि गड़ गड़ा कर पढ़ने लगे। पत्र को पढ़ते ही पढ़ते क्रोध से उनकी भवें तन गईं और मुख पर लालिमा दौड़ आयी। उनका वृद्ध शरीर थरथराने लगा। वे स्वतः बड़बड़ाने लगे—मैंने उसे बड़ा बुद्धिमान और विद्वान समझा था, लेकिन वह तो महामूर्ख निकला। लम्बी २ बातों की लालच में उसने मुझे धोखा दिया। अच्छी बात है उसका सारा मिथ्याभिमान धूल में मिला दूँगा। उसको जेल भिजवा कर छोड़ूँगा। पूछूँगा कि तुमने मेरी बेटी के साथ इतनी क्रूरता का क्यों व्यवहार किया? तुम्हें अपने ऊपर गर्व है तो मैं भी एक पदाधिकारी हूँ, तुमसे किसी हालत में कम नहीं। मैंने तुम्हें भला जानकर अपनी सबसे प्यारी वस्तु तुम्हें दी थी। उसको तुमने ठुकरा दिया, उसका अपमान और निरादर किया। यह असह्य है—

मेज पर हाथ पटकते हुए उमेश बाबू ने नौकर से सुरेश बाबू को बुलवाया और उनके सामने ज्योत्स्ना का पत्र फेंकते हुए बोले—

"देखा न उस ढोंगी की क्रूरता, उसका ज्योत्स्ना के प्रति कितना दुखद व्यवहार है, वह उसे पशु से भी नीच समझता है, यह देखो ज्योत्स्ना का पत्र—

सुरेश बाबू पिता का क्रोध जानते थे और उन्हें यह भी विदित था कि ज्योत्स्ना भी पिता के स्वभाव की प्रतिमूर्ति है,

इसीलिए वहाँ इतना बड़ा काण्ड हुआ होगा। उन्होंने पत्र पढ़ कर कहा—

"तो क्या करूँ।"

"करोगे क्या, तुम्हें उसे लेने जाना पड़ेगा। उसके आ जाने पर मैं उससे समझूँगा।"

"मगर क्या बात हुई है जिससे ज्योत्स्ना वहाँ एक क्षण भी नहीं रहना चाहती ?"

"तुम पूरे कायर हो, डरपोक ! ज्योत्स्ना का पत्र पढ़कर भी तुम्हें क्रोध नहीं आता। क्या तुममें आत्माभिमान बिल्कुल नहीं रह गया है ? एक उत्तर चाहता हूँ—हाँ या नहीं।"

पिता का क्रोध बढ़ता देख सुरेश बाबू ने कहा—

"आप घबड़ाइये नहीं मैं अवश्य जाऊँगा। मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि आखिर इसप्रकार ज्योत्स्ना के पत्र भेजने का क्या कारण हुआ ? अभी तक तो उसने किसी पत्र में भी इस प्रकार की कोई बात नहीं लिखी थी।"

"उसके आने पर यह सब भेद खुलेगा कि उसने लड़की के साथ कैसा पशुवत व्यवहार किया है ?"

"अच्छा कल मैं वहाँ के लिए प्रस्थान कर दूँगा।"

"हाँ, अभी से जाकर तैयारी करो।"

सुरेश बाबू अपने कमरे में आकर लेट गये और कुछ सोचने लगे। लज्जा ने जब पूछा कि पिताजी ने क्यों बुलाया था तो उन्होंने आरम्भ से अन्त तक सभी बताते हुए पूछा—

"इसमें तुम्हारी क्या राय है ?"

"भला पिताजी की आज्ञा के समक्ष मेरी राय का क्या महत्व है।"

"यह तो ठीक है परन्तु कुछ कहो तो। उनकी बातें छोड़ो, इस समय वे क्रोधान्ध हो रहे हैं।

"मेरे विचार में तो पहले यही नहीं आता कि किस कारण से ज्योत्स्ना ने ऐसा पत्र लिखा।"

"उसी विचार धारा में मैं भी बहा जा रहा हूँ, और बिना समझे बूझे इस काम में हाथ नहीं डालना चाहता था...... परन्तु"।

"यह तो मर्य्यादा की बात है, कोई सुनेगा तो यही कहेगा कि लड़की की बात पर दामाद से दुश्मनी ठान रक्खी है। फिर वकील साहब तो बड़े अच्छे और समझदार आदमी हैं।" पति के अपूर्ण वाक्य को पीते हुए लज्जा बोल उठी।

"सच है। उनकी विद्वत्ता की धाक चारों ओर फैलती जा रही है। उनके विचार सभी समाचार पत्रों में निकलते हैं। उनकी प्रशंसा में कालम के कालम रंगे रहते हैं।"

"मेरे विचार में यही बात आती है कि वकील साहब से किसी बात में तनातनी हो गयी होगी, और उसी बात को तिल का पहाड़ का रूप देकर उसने बाबूजी को लिख भेजा है। वह जानती है कि पिता मेरी बातों पर अवश्य विश्वास कर लेंगे।"

"यह कौन बता सकता है कि क्या हुआ? परन्तु मुझे तो कल जाना ही पड़ेगा।"

"क्या पिताजी मान नहीं सकते?"

"क्या तुम उनके हठ से अपरिचित हो?"

लज्जा भी चुप हो गयी। दम्पत्ति-हृदय क्षुब्ध हो रहा था।

इधर पुत्र के चले जाने पर भी उमेश बाबू का क्रोध शान्त नहीं हुआ। वह कभी उठते, कभी बैठकर भुनभुनाने लगते और कभी मुट्ठी बाँधे हुए टहलने लगते। एकाएक उन्होंने पुकारा—

"रामदास—" वह नहीं सुन सका। बस फिर क्या था। हंटर लिये बाहर आ गये और सड़ासड़ तीन चार लगा दिये। वह डर के मारे काँपने लगा। उसको कुछ कहते हुए फिर कमरे में आ गये और कोच पर धम्म से बैठकर अपने मन ही मन ऊटपटांग बड़बड़ाने लगे।

× × × ×



दूसरे ही दिन ज्योत्स्ना अपने जाने की तैयारी करने लगी। वकील साहब सब कुछ देख रहे थे, परन्तु बात बढ़ चुकी थी। दोनों अपने सम्मान की रक्षा में भूले हुए थे। उन्हें कभी अपने ऊपर क्रोध, कभी पश्चात्ताप होता कि मैंने व्यर्थ में उसे क्यों अण्डबण्ड कह डाला ? तस्वीरें टूट गयी थी तो फिर आ जातीं। जब ज्योत्स्ना बिलकुल तैयार हो गयी और उसका सामान मोटर में रखा जाने लगा तो उनका अन्तर-हृदय रो उठा। वे आगे बढ़े कि अब भी सम्भव है, चलकर मना लूँ परन्तु पैरों ने जैसे मन से विद्रोह कर लिया। पैर ठिठके ही रह गये।

यद्यपि ज्योत्स्ना गर्व के वशीभूत हो पति का गृह त्याग कर रही थी। परन्तु उसे बड़ी मार्मिक वेदना हो रही थी, उसका सारा अभिमान जैसे मर मिटा था। मुख की कातरता में एक रूदन था। उसका हृदय छटपटाने लगा घमंड से नहीं एक आन्तरिक स्नेह से। मोटर चली, ज्योत्स्ना के हृदय में हल्की टीस पैदा हुई। उसने पीछे घूम कर अपने बंगले को देखा और भीतर दृष्टि

दौड़ाई तो वकील साहब कदाचित आँसूभरी आँखों से खड़े थे। उसका हृदय धक कर उठा, परन्तु पल भर में हृदय ने अपना असली स्वरूप प्रगट किया। मुख पर एक मुस्कराहट की हलकी रेखा खिंच गयी, जो उसके विजय का संकेत कर रही थी। उसका हृदय कह रहा था—देखा, मैं क्या हूँ और किसकी पुत्री हूँ, मेरा अपमान एक भयंकर अभिशाप है। ज्योत्स्ना की निष्ठुरता कठोर होती गयी, शिला की भाँति। उसने एक बार और पीछे देखा तो वकील साहब अपनी आँखों को रुमाल से पोंछ रहे थे। वह कदाचित मुस्कराई परन्तु आँसू रुक न सके। वह चल चुकी थी परन्तु हृदय सुखी न था। स्वतन्त्रता का वह आत्मिक आनन्द जिसमें पारलौकिक सुख का अनुभव होता है—न था। वह सब प्रकार से अपने को समझाती परन्तु हृदय मचला पड़ता, दुधमुहें बच्चे की तरह।

वकील साहब का हृदय भी चिन्तित था। ज्योत्स्ना का जीवन उनके लिए एक पहेली के रूप में हो गया। वह विचार करने लगे—प्राय: मनुष्य ऐसे होते हैं, जो किसी घटना का परिणाम बिना सोचे ही उसका अर्थ निकाल लेते हैं और जिसके कारण उन्हें अन्त में पछताना पड़ता है। वह सोचते सोचते खिड़की के पास कुर्सी खींचकर जा बैठे और रास्ते की ओर सूखी आँखों से देखने लगे। भावों की परम्परा चलती ही रही, उन्हें किसी वस्तु का अभाव खटकने लगा—

ज्योत्स्ना चली गयी एक अपरिचिता की भाँति। जाते समय मुझसे मिलने तक नहीं आयी, और आती ही क्यों? उसका अपमान हुआ था परन्तु मैं अपने को क्या कहूँ। मैं ही ज़रा झुक जाता तो बिगड़ी बात बन जाती। मैं ही क्यों नहीं उसके पास चला गया? इसमें मेरा ही दोष है परन्तु उसका भी तो कुछ

कर्त्तव्य था, शायद वह आने में सकुचाती रही हो, फिर भी उसे आना चाहिए था—

वह मेरी पत्नी थी और मैं उसका पति। दोनों के विचारों में विरोध होना साधारण बात है परन्तु उसके लिए जीवन भर का वियोग अवश्य दुखदायी है, असह्य है—परन्तु उसके हृदय में मेरे प्रति कुछ भी स्नेह था—अवश्य रहा होगा। कौन स्त्री अपने पति को नहीं प्यार करती? हाँ जिन स्त्रियों पर पश्चिमी शिक्षा और सभ्यता की पालिश है, जो पुरुषों से समान अधिकार का दावा करती हैं, वे अपने पतियों से अवश्य रुष्ट हो सकती हैं। परन्तु भारत में बिना स्त्रियों के मनुष्य का जीवन ही अपूर्ण है, मनुष्य का कोई भी लक्ष्य बिना उसके सहयोग के पूरा नहीं हो सकता, इस दृष्टि से वह मुझसे बड़ी है। नारी पद से, ज्योत्स्ना पद से नहीं। उसमें किसी वस्तु की कमी नहीं है, सुन्दर है, गुणवती है, शिक्षिता है, परन्तु क्या इसीसे स्त्री महान हो सकती है? कदापि नहीं। उसमें शील, कर्त्तव्य, भक्ति और प्रेम रहना आवश्यक है और इन्हीं गुणों के कारण स्त्रियों का स्थान पुरुषों से ऊँचा है। परन्तु ज्योत्स्ना में उनका अभाव है और इसीलिए वह नारी-पद से दूर है।

मैं उसे चाहता था। मेरे हृदय में प्रेम की उमंगें उठती थीं। उसे श्रद्धा की दृष्टि से देखता था। मैं कर्त्तव्य-पथ पर था परन्तु वह अपने कर्त्तव्य को समझते हुए भी नहीं समझ रही थी। अहंकार के वशीभूत हो उसने मुझे नीरस और मूर्ख समझा। यदि मैं छिछले हृदय से उससे प्रेम का आडम्बर करता तो शायद वह अधिक प्रसन्न रहती।

विचारों के संघर्ष से उनके जीवन में निराशा की सीमा बढ़ने लगी, निशा के सघन अन्धकार की भाँति। उन्हें संसार के

इस मिथ्या व्यापार पर बड़ी घृणा हुई। लोग जिस जीवन के सुख को स्वर्ग-सुख से भी बड़ा समझते हैं, उसका परिणाम इतना दुखदायी होता है, उन्हें आज ही मालूम हुआ। उनके सारे दार्शनिक सिद्धान्तों में परिवर्त्तन जान पड़ा। मनुष्य क्या से क्या हो जाता है वह अभी तक समझ न सके। परिवर्त्तन मे ही उन्नति और अवनति है।

जीवन के असन्तोष में उनकी जीवन-गति घूसने लगी।

यहाँ दूसरे दिन सुरेश बाबू की तैयारी के पहिले ही ज्योत्स्ना घर पर पहुंच गयी। उसका एकाएक आना देखकर सभी लोग घबड़ा उठे। नौकरों में हलचल मच गयी। उमेशचन्द्र दौड़कर बेटी को देखने बाहर आ गये। सुरेश बाबू और लज्जा ने भी आकर उसे घेर लिया। वह उदास नहीं थी परन्तु पहले की तरह प्रसन्न भी नहीं। म्लान मुख पर एक हँसी थी। सभी उसके साथ धीरे २ मकान के अन्दर आये परन्तु कोई किसी से कुछ न बोला। सबके चले जाने पर उमेश बाबू ने मृदुल स्वर में पुकारा—"ज्योत्स्ना।"

वह मौन होकर पिता के सामने खड़ी हो गयी।

"तुम्हारे साथ वकील साहब का कैसा व्यवहार था? मैं तुम्हारे पत्र का ठीक आशय न समझ सका। तुम इतनी दुबली पतली क्यों हो गयी—ज्योत्स्ना?"

उसने आँख उठाकर पिता की ओर देखा तो सिहर सी गयी। उमेश बाबू की आँखों में आँसू थे।

"क्या वे तुम्हारा अपमान करते थे।"

"हाँ।"

"क्यों?"

वह फिर चुप हो गयी, क्या उत्तर देती? उसका हृदय उसे

धिक्कारने लगा कि वह क्या कह रही है। अपने पति के विरुद्ध, अपने देवता के विरुद्ध। वह भीतर ही भीतर डरने लगी। सत्य का वह गला घोंट रही थी। हृदय झूठी बातों को कहने से रोकता था। वह अपने को न रोक सकी। आँखों में आँसू आ गये। उसने अपना मुख अञ्चल से छिपा लिया। उमेश बाबू उसकी यह मुद्रा देखकर घबड़ा उठे और अधीर होकर बोले—

"तुम्हें क्या हो गया है? कहो, कुछ कहो भी तो, अपने दुखित पिता से। मैं उसे जेल भिजवा सकता हूँ। उसकी सारी शेखी धूल में मिलवा सकता हूँ। मैंने तुम्हारा विवाह उस मूर्ख से करके बड़ी गलती की है। इसका मुझे अब पश्चात्ताप हो रहा है।"

ज्योत्स्ना पिता से कुछ कहना नहीं चाहती थी परन्तु यह सोचकर कि मेरे न बोलने से पिता को बहुत दुख होगा उसने अपना अपराध छिपाते हुए कहा—

"वे मुझे कहीं भी जाने से रोकते थे। कड़ा प्रतिबन्ध लगाते थे। बात की बात में डाँट देना प्रति दिन की बात हो गयी थी। शिमला जाने के लिये कहा तो अन्यमनस्क होकर बोले—शिमला में रखा ही क्या है? मैंने किसी तरह से रो रो कर अपने दिन वहाँ काटे हैं।"

"और कुछ कहा था?"

"हाँ, मुझे "जज की लड़की है न" कहकर अपने मित्रों और नौकरों के सामने अपमानित किया था। परिणाम यह हुआ कि नौकर भी मेरी उपेक्षा करने से नहीं चूकते थे।"

"अच्छा नौकर तक तुम्हारी उपेक्षा करते थे।" स्वर में कठोरता थी।

"जी!"

"ऐसा व्यवहार कब से आरम्भ हुआ था ?"

"विवाह के थोड़े ही दिन बाद से।"

"तब तो तुम्हें बड़ी तकलीफ उठानी पड़ी होगी। पहले ही क्यों नहीं लिखा ? अभी तक तो उनके दिमाग को ठंडा कर दिये होता।" आवेश से ओठ काँप रहे थे।

विवाद को तूल देना मैं नहीं चाहती थी। इसलिये मौन रह कर सह लेती थी। परन्तु जब अपमान की मात्रा बढ़ती गयी और मुझे वह अपमान असह्य होने लगा, तब मैंने आपके पास लिखा। नहीं तो आपको क्यों कष्ट देती पिताजी।" और वह सिसकने लगी।

पिता का अहंकारी हृदय पुत्री के स्नेह में पिघलने लगा। ज्योत्स्ना के मस्तक पर हाथ फेरते हुए सान्त्वना मिश्रित स्वर में बोले—"ज्योत्स्ना ! तुम अब इसे ही अपना घर समझो। मैंने समझा कि तुम्हारे विवाह से उऋण होकर मैं सुख की मौत मरूँगा, परन्तु देखता हूँ वह सुख मेरे भाग्य में नहीं। तुम्हारे विचारों के अनुकूल न चलकर मैंने जो भूल की उसका परिणाम आँखों देख रहा हूँ। खैर ! चिन्ता की कोई बात नहीं। इतना बड़ा महल, इतना ऐश्वर्य सब तुम्हारा है। तुम यहाँ आनन्द से रहो अपने वृद्ध पिता की आँखों की पुतली बनकर, अन्धे की लकड़ी बनकर। स्वतन्त्र होकर रहो। सारा सुख तुम्हारे चरणों पर लोटेगा। मैं उनको बहुत जल्द ठीक करता हूँ। तुम्हारा नहीं मेरा अपमान किया है, मेरे भाग्य पर हँसी की है।"

"जाओ ज्योत्स्ना ! आनन्द से रहो, अब यहाँ तुम्हारा राज्य है सुख से विचरो, कोई तुम्हें रोकने वाला नहीं है। वह चली गयी चिन्ताओं में उलझते हुए और उमेश बाबू भी सन्तोष की एक दीर्घ साँस खींच कर आरामकुर्सी से उठ गये।

थोड़ी ही देर बाद लज्जा, ज्योत्स्ना के कमरे में आई तो उसने कि वह बैठी हुई कुछ सोच रही है। लज्जा को देखते ही वह खड़ी हो गयी और बोली—

"आओ, भाभी, बैठो।"

लज्जा ने मुस्कराते हुए कहा—"आज तो मेरा बड़ा सम्भान हो रहा है। बात क्या है?"

"वही पुरानी बात! यानी फिर मैं तुम्हारे पल्ले पड़ी।"

"पागली कहीं की, यह क्या कहती हो। अपना भी कहीं पराया होता है। पल्ले पड़ते हैं पराये। तुम तो हमारी अंग हो।"

"दुर्दिन आने पर कोई किसी का साथ नहीं देता भाभी।"

"तुम्हारे ऊपर कौनसा दुर्दिन आया है? किस घर में लड़ाई झगड़ा नहीं होता, परन्तु उस झगड़े को हृदय में स्थान देना ही विनाश की ओर अग्रसर होना है। जो स्त्री-पुरुष झगड़ कर गाँठ नहीं बाँधते वे फिर एक हो जाते हैं। यदि पुरुष नहीं मिलता तो स्त्री का कर्त्तव्य है वह सब कुछ भूल जाये। क्योंकि उसे घर की लक्ष्मी का पद प्राप्त है। इस पवित्र पद को भूलकर स्त्री स्त्रीत्व को खोकर अपना भविष्य अन्धकारमय बना लेती है।"

"जले पर नमक न लगाओ भाभी?"

"ऐसा सोचकर अपने भाभी के प्रति अन्याय न करो मेरी ज्योत्स्ना! मैं तुम्हें कितना प्यार करती हूँ, यह कदाचित तुम अभी तक नहीं समझ सकी हो। जो प्यार करता है, वह उसके हित के लिये यदि कडुवी बात हो, तो भी कहने में उसे नहीं हिचकना चाहिये। यही उद्देश्य मेरा है। मेरा सीख देना कर्त्तव्य है। पति के भूल को भूल जाना ही स्त्री को पति के हृदय में ऊँचा स्थान देता है........."

अभी लज्जा की बात पूरी भी नहीं हुई थी कि इतने में प्रभा

आ पहुँची। उसको देखते ही ज्योत्स्ना उठ खड़ी हुई और आदर के साथ उसे बैठाया। देर तक बातें होती रही। सुरेशचन्द्र के आने पर लज्जा तो चली गयी परन्तु प्रभा बैठी ही रही। आज प्रभा के सामने ज्योत्स्ना एक पहेली बनकर आयी थी। वह जान गयी थी कि ज्योत्स्ना स्वयं यहाँ चली आयी है। प्रभा बैठी ज्योत्स्ना के म्लान मुख को स्थिर दृष्टि से देख रही थी। उसे इस प्रकार देखते हुए ज्योत्स्ना को आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—

"मेरे मुँह की ओर क्या देख रही हो प्रभा ?"

"यही कि मनुष्य के भाग्य की रेखायें भी आपस में खेलती हैं"

"वह खेल समाप्त हो गया, जिसका उमंग हमारे हृदय में था।"

"वह कैसा खेल था ?"

"जीवन का एक खेल, जिसे सबको खेलना पड़ता है और मैंने खेल लिया, पुलक पुलक कर, मचल मचल कर। उस खेल से हृदय भर गया, प्यास शान्त हो गयी। उसका सबसे अच्छा फल मृत्यु है, जिसमें पिपासा नहीं, हृदय की आकांक्षायें नहीं और न कोई तड़प या सिहरन है। है केवल शान्ति, चिरप्रसुप्त शान्ति। वही इसका श्रेष्ठ बरदान है।"

"क्या कह रही हो ज्योत्स्ना, वह खेल समाप्त होने का नहीं, उसमें तुमको भाग लेना होगा। उसमें कल्याण ही कल्याण है, ध्वंस की छाया तक नहीं। तुमने उस खेल के अंकित भाव नहीं समझे क्योंकि तुम्हारे यौवन की चपलता तुम्हें दूसरे लोक में ले जा रही थी, जहाँ तुम्हारा प्रसार न था। तुमने अपने छोटे से हृदय में सागर को बन्द करना चाहा। यही तुम्हारी भूल हुई। तुमने परिणाम का मूल्य नहीं समझा, बल्कि स्थिति का मूल्य समझा।"

"मैं तुम्हारी बातों का अभिप्राय नहीं समझ रही हूँ।"

"यदि इसी को समझ जाओ तो तुम बहुत कुछ हो सकती हो ?"

मैंने क्या नहीं समझा है प्रभा, दुख को और उससे उत्पन्न होने वाले सुख को। जीवन की लहरें तरंगित हो चुकी हैं, उनमें कम्पन आ चुका है परन्तु किनारों का पता तक नहीं है, भूली सी भ्रमी सी, भटकी सी, वह अपने में ही लहरा रही है।"

"सोचो विचारपूर्वक सोचो कि आगे क्या है। भविष्य का स्वप्न सर्वदा आनन्ददायक होता है। उसी में अन्तिम परिणाम का फल निहित है जो मानव-जीवन का सार है।"

ज्योत्स्ना इस विचार से घबड़ा उठी। उसके मुख पर एक हल्की कातरता दौड़ आयी......। दस बज गये थे। प्रभा उठी और चल पड़ी, परन्तु ज्योत्स्ना कुछ सोच रही थी।

बाबू उमेशचन्द्र का क्रोध अब भी शान्त नहीं हुआ था। वह कृष्णमुरारी को बिना दण्ड दिये छोड़ना नहीं चाहते थे। वह दिन भर इसी चिन्ता में बैठे थे कि कौनसा रास्ता निकालें कि मुर्गी भी मरे और डंडा भी न टूटे, परन्तु उनके मस्तिष्क में कोई विचार टिक नहीं रहे थे। क्रोध पाप का जन्म जात भाई है। शरीर के भीतर जितनी भी दूषित मनोवृत्तियाँ होती हैं उनमें सबसे शीघ्र और व्यापक रूप में प्रभाव डालने वाली शक्ति का नाम ही क्रोध है। क्रोधी मनुष्य वैरी की क्षति चाहता है, परन्तु उसके परिणाम का रूप नहीं देखता।

यही दशा उमेश बाबू की थी। वह केवल ज्योत्स्ना के सम्मुख कृष्णमुरारी को दण्ड देकर सच्चे पिता का पद लेना चाहते थे। वे बेटी के लिए सब कुछ कर सकते थे। जब विचारों से ऊब गये तो उन्होंने सुरेश को बुलाया और पूछा—

"अच्छा तो तुमने कृष्णमुरारी के विषय में क्या सोचा ?"

"अभी तक तो मैंने कुछ नहीं सोचा है, आखिर, सोचना क्या है ?"

मेरे कहने का तात्पर्य यह है कि उसको किसप्रकार दण्ड देना चाहिए।

"उनको क्या दण्ड दीजियेगा, उन्होंने क्या किया है ?"

"उसने मेरी लड़की का अपमान किया है और साथ ही साथ मेरा भी। मैं इसको कभी सहन नहीं कर सकता। मैं ज्योत्स्ना की दूसरी शादी कर दूँगा परन्तु भूल कर भी उससे फिर सम्बन्ध न रक्खूँगा।"

"आप क्या कह रहे हैं पिताजी ? जरा यह सोचिये कि जब आप ज्योत्स्ना के दूसरे विवाह की तैयारी करेंगे तो समाज और आपकी मित्र मण्डली क्या कहेगी ? आप अपनी ख्याति पर कालिमा पोतने का साहस किस बल पर करने जा रहे हैं।"

"तुम्हें कुछ भी बुद्धि नहीं है सुरेश, तुम्हारा सारा पढ़ना लिखना बेकार हुआ। तुम मनुष्य और उसके विचारों को नहीं समझते। तुम मुझे समाज का भय दिखलाते हो। अरे ? इस समाज को समाज का रूप तो हमीं लोगों ने दिया है और हमीं उससे डरकर चुप बैठे रहें। समाज से वे डरें जो विचारों के कमज़ोर हैं जिनमें आत्माभिमान नहीं है, जो संसार में जीना नहीं चाहते। समाज ढोंगी पुरुषों का एक गुट्ट है, एक बाहरी ढाँचा है जिसकी आड़ में हम सब कुछ कर सकते हैं। हमारे पास किस वस्तु की कमी है। धन है, नाम है और सम्मान। अधिक चाहिए ही क्या, इस समाज का मुँह बन्द करने के लिए जो ताल ठोंक कर मैदान में खड़ा हो जाता है, वही साहसी है और जो उस क्षेत्र में जाने से डरता है वही कायर के नाम से सम्बोधित किया जाता है।"

"परन्तु पिताजी ! पूर्व पति के जीवित रहते, पुनः विवाह करना तो शास्त्र से निषिद्ध है।"

"भले ही हो, पर मैं करूँगा और अपने अपमान का बदला लूँगा।"

"सुरेश बाबू आवाक होकर पिता का मुख देखने लगे।"

"मेरी ओर क्या देख रहे हो ?"

"तो क्या आपने यह निश्चय कर लिया कि ज्योत्स्ना का दूसरा विवाह होगा।"

"हाँ होगा और अवश्य होगा।"

सुरेश बाबू को पिता की यह निश्चयात्मक प्रवृत्ति इतनी असह्य मालूम पड़ी कि वे तिलमिला उठे। क्रोधावेश में वह वहाँ से चले गये। पिता को पुत्र का यह बर्ताव खटका अवश्य, परन्तु क्रोध के घूँट को जबरदस्ती निगल कर मौन हो विचारों में गोते लगाने लगे।

× × × ×

९

ज्योत्स्ना के चले जाने पर कृष्णमुरारी की दशा पहले से और बुरी हो गयी। यद्यपि उन्हें कलह से छुटकारा मिला था, फिर भी वह अनुभव कर रहे थे कि एकाकी जीवन कोई जीवन नहीं। जीवन की दौड़ में वह अब अपने को पूर्ण सफल बनाने में हतोत्साह से होने लगे। उनकी वह विलक्षण प्रतिभा कुछ लुप्त सी होने लगी। उनका जीवन उदास होने लगा। दिन भर कच-

हरी जैसे नीरस जगह से लौटने के बाद वे पुस्तकों से उलझ जाते। एक दिन इसी विचार-परिधि में उनका मस्तिष्क घूम रहा था कि नौकर ने एक पत्र लाकर मेज पर रख दिया। उन्होंने अन्यमनस्क भाव से पत्र खोला और पढ़ने लगे। पढ़ते समय उनकी भौंहें तनती जाती थीं और भाल की रेखायें फैलती और सिमटती जाती थीं। पूरा पत्र पढ़ लेने पर उन्होंने उसे टेबुल पर रख दिया और सोचने लगे—"यह सुनीलकुमार कौन है ? इससे ज्योत्स्ना का सम्बन्ध कब से है, यह उसके साथ सिनेमा कब गई थी और ज्योत्स्ना ने उसे यह कैसे बताया कि मैं शीघ्र ही लाहौर जाने वाली हूँ वहीं मिलना ! कुछ समझ में नहीं आता क्या बात है ? लिखने वाला पढ़ा लिखा है, भाव बड़े ही मार्मिक और चोटीले हैं। दोनों में अवश्य प्रेम है।

सचमुच नारी हृदय बड़ा मायावी है। मैं ज्योत्स्ना को केवल गर्विता ही समझता था, पर मेरी यह भूल थी। वह प्रेम की नाट्यशाला में अभिनय कर रही थी और इसीलिये वह मुझसे खिंची-सी रहती थी—मेरी बातों को उपेक्षा की दृष्टि से देखती थी। अपने को निर्दोष प्रदर्शित करती थी और मुझ पर शंका। बड़ों का यह कहना कि दूषित हृदय सर्वदा सशंक रहता है, बिलकुल ठीक है। मैंने ज्योत्स्ना को निर्मल और एक उच्चकुल की शिक्षिता नारी समझ रखा था, यह मेरी दृष्टि का दोष था। मेरे हृदय में उसके प्रति श्रद्धा थी, आतुरता था, प्रेम था, परन्तु अब रह गया केवल घृणा, तिरस्कार और लांछन।

उन्होंने स्थिर दृष्टि से खिड़की के सहारे खड़े होकर उस ओर देखा जहाँ आकाश पृथ्वी को छू रहा था। एकाएक उन्हें ज्योत्स्ना को क्षितिज के छोरों पर छाया के समान खड़ी होकर अट्टहास करते देखा। उन्होंने घबड़ा कर आँखें मूँद ली। इतने में नौकर

ने आवाज लगाई—"बाबूजी भोजन ठंढा हो रहा है, चलिए।"

स्वप्न हटा, स्मृतियाँ आयीं और वकील साहब अनमने से भोजन करने गए और थाली पर बैठ गए। खाना रक्खा था परन्तु हाथ न उठते थे। फिर नौकर ने कहा—

"बाबूजी आपको क्या हो गया है ?"

"कुछ भी तो नहीं" अपने को स्थिर करते हुए वकील साहब ने कहा।"

"आप बड़े उदास और थके-से मालूम पड़ते हैं, क्या तबियत कुछ खराब है ?"

"नहीं-नहीं बिल्कुल ठीक हूँ।" फीकी हँसी हँसते हुए उन्होंने कहा।

"बाबूजी ! बहूजी कहाँ गयी हैं ? अभी लौटी नहीं।"

"अपने पिता के घर गयी हैं, कब लौटेंगी, पता नहीं।"

"कुछ काम था क्या ?"

"बिना काम के कारण और बिना कारण के काम नहीं होता। उनको जाना था इसलिए चली गयी और.........।" वह चुप होकर खाने लगे। नौकर कुछ देर आगे की बात सुनने के लिये प्रतीक्षा करता रहा परन्तु जब कुछ न बोले तो वह भी चुप हो गया।

अभी भोजन करके लेटे ही थे कि अलका आ पहुँची। उसे यह विदित था कि ज्योत्स्ना अपने घर चली गयी है। इस समय उसका आना वकील साहब को अखरा, परन्तु उन्होंने अपना आन्तरिक भाव प्रगट न होने दिया। वह एक कुर्सी खींच कर उनके सामने बैठ गयी। परन्तु वकील साहब बगल में पड़ी हुई किताब को उठाकर, उसके पन्ने उलटने लगे। अलका को उनका यह व्यापार विचित्र जान पड़ा। उसने उनकी मुखाकृति पर उदा-

सीनता की स्पष्ट छाया देखी। उनको अन्यमनस्क देख उसने प्रश्न किया—

"आपकी श्रीमती जी कब तक आयेंगी?"

"यह उनकी इच्छा पर निर्भर है।"

"क्या आपका उनपर कोई अधिकार नहीं।"

"पत्नी पर अधिकार रखने की कला को शायद मैं नहीं जानता और न अपनी रहस्यमय पत्नी को समझने की मुझमें शक्ति ही है।"

"आज कल आप बहुत उदास दिखाई देते हैं। कारण क्या है?" वार्तालाप के क्रम को दूसरी ओर फेंकने के अभिप्राय से अलका ने पूछा—

"पत्नी के चले जाने से उदास हो जाना मनुष्य-स्वभाव है।" हृदय-की टीस को जबरदस्ती दबाते हुए उन्होंने उत्तर दिया।

"तो आप उन्हें बुला क्यों नहीं लेते?"

"उनको आना होगा तो वे स्वयं आयेंगी।"

अलका इसका कुछ कुछ मतलब समझ रही थी परन्तु पूरी बात न मालूम होने के कारण वह अधिक जोर डालकर पूछने से डर रही थी। उसने एक दिन अपने कालेज में वकील साहब का व्याख्यान सुना था और तभी से वह इनके विचारों पर मुग्ध होकर आया जाया करती थी। यद्यपि अलका का इस तरह स्वच्छन्द आना वे अच्छा नहीं समझते थे परन्तु उसके निष्कपट व्यवहार और उज्ज्वल विचार से वे उससे कुछ कह नहीं सकते थे। अलका को बहुत नजदीक से देखने पर वे उसके आन्तरिक विचारों को समझ गये थे। दूर २ रहने पर भी वह छाया की भाँति उनके पीछे पड़ी थी। वह उनसे क्या चाहती है, यह वह स्वयं नहीं समझ रहे थे। क्योंकि जब कभी वह आती, सदा एक

न एक नवीन विचार लिये। उसी पर उनसे बातें करती और चली जाती। यही क्रम उसका चल रहा था। वकील साहब को जब कभी वह उदास देखती सिहर उठती थी। यह सिहरन क्यों होती ? यह उसके लिये एक पहेली थी। फिर आज उन्हें उदास देख वह कैसे चुप रहती—उसने पुनः साहस कर वही प्रश्न दुहराया—

"आखिर आप इतने उदास क्यों हैं ? क्या मैं कुछ सहायता कर सकती हूँ ?"

"धन्यवाद ! प्रसन्नता और उदासी का तो जीवन के साथ गठबन्धन है। मनुष्य न हमेशा प्रसन्न रहता है और न हमेशा उदास। मनोरञ्जन का साधन एकत्रित हुआ कि उदासी गयी। और वह मनोरञ्जन कैसे मिल सकता है यह सोच रहा हूँ। कुछ २ सोचा भी है।"

"वह क्या ?" साश्चर्य अलका ने पूछा—

"यही कि थोड़े दिनों के लिये बाहर चला जाऊँ।"

"कहाँ जाइयेगा ?"

"अभी निश्चित नहीं है, परन्तु कहीं न कहीं जाना निश्चय है।"

"यही एक उपाय क्यों ? और दूसरे उपाय भी तो हैं।"

"मन की तरंग है। चाहता हूँ एकान्त में जाकर शान्तिमय जीवन व्यतीत करना।"

"क्या शान्ति यहाँ नहीं मिलती ?"

"नहीं यहाँ तो उसमें हास्य, वेदना और पीड़ा है, जो सबको सहन नहीं होती। शान्ति का वास्तविक आनन्द एकान्त में मिलता है। बड़ी २ कन्दराओं और गुफाओं में तपस्या करते हुए ऋषियों को उस झोपड़ी में ब्रह्मानन्द की मस्ती मिलती है, जिसकी तुलना किसी भी वस्तु से नहीं की जा सकती। एकान्त ही जीवन है।

एक में सब है और सब में ही एक है। एक में शान्ति है, क्योंकि आकाश एक है, इसलिए शान्त है। एकान्त में मनुष्य की प्रवृत्तियाँ स्वच्छ और उदार हो जाती हैं। संसार के बड़े २ महात्मा एकान्त सेवी थे। उन्होंने जो सत्य का संदेश दिया वह अमर है।"

"तो आप सत्य की साधना में एकान्त-सेवी होने जारहे हैं।"

"नहीं, मैं तो अपने हृदय की शान्ति के लिए बाहर जा रहा हूँ।"

"तो कब तक वापस आयेंगे।"

"यह भी नहीं बता सकता कि आऊँगा या नहीं, क्योंकि भविष्य के अक्षर अदृश्य हैं।"

"तो क्या आपको बाहर अकेले अच्छा लगेगा। पुस्तकें आदि मिलेंगी।"

"बाहर पुस्तकों की क्या आवश्यकता? मैं तो केवल हृदय को शान्ति देने जा रहा हूँ।"

अलका ने देखा कि वकील साहब को ज्योत्स्ना के चले जाने का बड़ा दुख है, इसलिए वह उनको प्रेमपूर्ण शब्दों से आकर्षित करने का प्रयत्न करने लगी, परन्तु उसके सारे प्रयास असफल हो रहे थे। उसने देखा कि वकील साहब कहीं दूसरी जगह जाना चाहते हैं तो उसे बड़ा धक्का लगा। वह उनके साथ २ रहना चाहती थी, परन्तु वह अपने मुँह से कहे कैसे? कैसे कहे कि उनके बिना उसका जीवन शून्य मालूम पड़ेगा? बहुत देर तक अपनी बातों से उनको बहलाने का प्रयत्न वह करती रही, परन्तु वह समुद्र की भाँति गम्भीर होकर बैठे थे। आज वह बहुत थोड़े में उत्तर दे रहे थे। बातचीत करते २ अधिक समय हो गया और अपने वार्तालाप का कुछ भी असर वकील साहब पर न होते देख उसने जाने की आज्ञा माँगी। वकील साहब ने

नमस्ते किया। अलका के चले जाने पर उनकी स्मृतियाँ पुनः अबाध गति से कल्पना क्षेत्र में दौड़ने लगीं—

"मैं सब कुछ छोड़ सकता हूँ ? जब हृदय में हँसी नहीं, उमंग और आनन्द नहीं, तो जीवन का महत्त्व ही क्या ? संसार से अलग हो जाने पर भी शान्ति नहीं मिलती, क्यों ? इसीलिए कि हृदय शान्त नहीं है। इसमें किसी का दोष नहीं। मेरे भाग्य का दोष है। इतने दिन तक मैं अकेला था, पूर्ण स्वतन्त्र था। किसी भी प्रकार की चिन्ता न थी परन्तु ज्योत्स्ना, पता नहीं कहाँ से मलयानिल-सी आयी और बवण्डर के समान धूल उड़ाती निकल गयी। भविष्य में क्या होगा, इस जीवन में शान्ति होगी या नहीं यह अन्धकार के गर्त में है। इससे अच्छा तो कहीं चल चलना ही ठीक है, न यहाँ रहूँगा न चिन्ता अधिक चिन्तित करेगी परन्तु फिर भी स्मृति को कहाँ छोड़ूँगा, वह तो छाया की भाँति पीछे २ चलेगी। भयंकर प्रताड़ना है भगवान !

विचारों के द्वन्द से घबड़ा कर वह कुछ लिखने बैठ गए दत्तचित्त होकर, किसी अज्ञात प्रतिभा से प्रभावित होकर और लेखनी अविश्रान्त गति से सफेद पृष्ठों पर नीली २ रेखाओं में कुछ अंकित करने लगी। वह लिखते २ कुछ सोचने लगते और फिर लिखने लगते। विचारों की दौड़ थी। भाव उठते और अंकित होते, कई घण्टे लिखते रहे। जब लेखनी रुकी तो वे एक अंगड़ाई लेकर बैठ गए और पढ़ने लगे। जब थोड़ा भाग अवशेष रह गया तो विचार-लहरी तेज हो गयी—

"संसार रहस्यमय है, मनुष्य का जीवन रहस्यमय है; इसी लिए वह अपने को न समझता है और न संसार को। उसे प्यास रहती है हृदय की, परन्तु वह उसे ओस की जल से तृप्त करना चाहता है। वह हृदय का हृदय से व्यापार नहीं करता

बल्कि विचारों का, कल्पनाओं का सौदा करता है जो बुदबुदे के समान नाशवान है। विश्व की सृष्टि के दो ही मुख्य आधार हैं, एक नारी और दूसरा पुरुष! दोनों एक होते हुए भी दो हैं, दोनों में असमानता होते हुए बड़ी समानता है। दोनों का सम्मिलित जीवन ही स्वर्ग है और दोनों का अभिन्न जीवन ही नर्क है। मनुष्य की स्वर्ग और नर्क की धमकी केवल उसे भुलाने के लिए दी गयी है। पुरुप की आशा और श्रद्धा का रूप ही नारी है।"

वह पढ़ते पढ़ते रुके और कुछ सोचने लगे, दत्तचित्त होकर और पुनः लिखने में संलग्न हो गए।

दूसरे ही दिन उनका लेख समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ। उनके विचारों से शिक्षित समाज में धूम सी मच गयी। प्रशंसा भरे पत्र आने लगे और बधाइयाँ मिलने लगीं, परन्तु वे उन सबको हँसकर देख लेते—

और लोगों की बुद्धि की विशालता पर सूखी मुस्कराहट बिखेर देते। लोगों ने आपके दीर्घ जीवन की कामना की, सुन्दर जीवन के लिये शुभ सम्वाद भेजे और भविष्य—निर्माण के लिये श्रद्धाञ्जलि अर्पित की। परन्तु कचहरी का एक योग्य वकील, दार्शनिक कृष्णमुरारी अपने भूले जीवन को एकान्त में खोजने जा रहे थे। बिना किसी से कुछ कहे वह अपना थोड़ा सा सामान लेकर स्टेशन की ओर हृदय में एक भयंकर आग छिपाये चल पड़े।

स्टेशन पर आकर बैठ गये और सोचने लगे—कहाँ जाऊँ? घर से निकल चुका हूँ। लौटकर घर जा नहीं सकता। हृदय पीछे ढकेल रहा है परन्तु मन कहता है आगे चल, जहाँ कोलाहल न हो शान्ति हो, वहाँ कुछ दिन रह कर वापस आ। कभी इच्छा होती कि ज्योत्स्ना को लिखकर भेज दूँ कि मैं कहीं जा रहा हूँ।

यदि मेरे ऊपर कुछ भी स्नेह होगा तो पगली की तरह दौड़ती चली आयेगी परन्तु नहीं—वह कभी न आयेगी। जब वह गयी तब क्या आयेगी? अच्छा है, वहीं रहे जहाँ वह सुखी हो। उसी में मुझे भी आनन्द का अनुभव करना चाहिये। किसीके आनन्द-प्रवाह में क्यों रुकावट बनूँ? एकाएक तीव्र सीटीकी आवाज से चौंक पड़े। वह मालगाड़ी थी। फिर वही विचारधारा बही—

"और लोग जो मुझे जानते हैं मेरे एकाएक चले जाने से अवश्य चिन्तित होंगे। जनता में एक कौतूहल होगा, चिन्ता फैलेगी, परन्तु मैं इनके साथ हमेशा रहने तो आया नहीं हूँ। एक न एक दिन जाता ही। अलका भी मुझे न पाकर बड़ी व्याकुल होगी। इधर उधर मुझे ढूँढ़ेगी। सम्भव नहीं कि वह ज्योत्स्ना के यहाँ पहुंच जाय और सारी बातें कह दें। यदि उसे जाकर पहले मना कर दूँ और कह दूँ कि ज्योत्स्ना को मेरे जाने की बात न मालूम हो, परन्तु वह स्वयं साथ हो गयी तो! एक और नयी बीमारी लग जायेगी। जिस चिन्ता से मैं घबड़ा कर भाग रहा हूं, उसी में गिर फँस जाऊँगा?"

इन्हीं उद्वेगों में कई गाड़ियाँ आई और निकल गयीं परन्तु वकील साहब को इसका कुछ भी ज्ञान नहीं हुआ। अन्त में जब विचारों का अन्धकार हटा तो गाड़ी की याद आई। पता लगाने पर मालूम हुआ कि एक गाड़ी अल्मोड़ा जा रही है। तुरन्त बिना सोचे समझे टिकट लेकर उसमें जा बैठे। थोड़ी देर बाद जब गाड़ी खुली तो मालूम पड़ा, उस स्टेशन के साथ २ उनकी कोई अमूल्य वस्तु उनसे बिछुड़ती जा रही है। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई पीछे से चिल्ला रहा है—

"रुको, जरा मेरी ओर तो देखो, मुझे छोड़कर कहाँ जा रहे हो?"

उन्होंने घबड़ा कर खिड़की के बाहर झाँका तो धूम्र के निबिड़ अन्धकार में स्टेशन का प्रकाश बुदबुदा रहा था और धकधक करती हुई रेलगाड़ी का शब्द कानों में भर रहा था।

ठीक दूसरे ही दिन चार बजे, अलका वकील साहब के बंगले के कई चक्कर काटे परन्तु कोई दिखलाई न पड़ा। उसनें समझ लिया कि कथनानुसार अवश्य कहीं चले गये। वह किसी चिन्ता में काँप उठी। उसने शीशे की खिड़कियों से अन्दर झाँका तो सब सामान अस्तब्यस्त पड़े थे। वह अवाक-सी खड़ी हो गयी। नाना प्रकार के विचार उसे उद्वेलित कर रहे थे। इतने में उनका एक नौकर आता दिखलाई पड़ा। उसको देखते ही अलका ने तेजी के साथ उसके पास पहुँच कर तपाक से पूछा—

"वकील साहब कहाँ गये?"

"पता नहीं।"

"क्या कुछ कह कर नहीं गये?"

"कुछ भी किसी से नहीं कहा, कल रात को ही सामान लेकर चले गये।"

"यह भी नहीं कहा कि कब तक आवेंगे?"

"जी नहीं। जाते समय उनका चेहरा देखते नहीं बनता था देवी जी।"

अलका सोच में पड़ गयी। वह उन्हें चाहती थी। वह उनके गुणों और सरलता पर मुग्ध थी। वह अपने हृदय में वही समाचार पत्र लिए थी जिसमें उनका लेख प्रकाशित हुआ था। उसने एक बार उनके लेख को उदास मन से देखा और समेटने लगी कि एक सिपाही हाथ में एक नोटिस लिए आ पहुँचा और अलका को देखकर पूछा—

"क्या बाबू कृष्णमुरारी वकील का यही बंगला है?"

"हाँ ! क्या काम है ?"

"उनके नाम नोटिस है।"

"उनके नाम नोटिस ? कैसी नोटिस ?" उत्सुकता से उसने पूछा—

"लाहौर के जज बाबू उमेशचन्द्र ने उनपर मानहानि का दावा किया है।"

"मानहानि का। उन्होंने किसकी मानहानि की है ?"

"बाबू उमेशचन्द्र और उनकी लड़की ज्योत्स्ना का।"

"अरे !" उसके मुख से एक हल्की चीख निकलते २ रह गयी।

सिपाही भी अलका की विचित्र मुद्रा देखने लगा और उसने साश्चर्य पूछा—

"आप घबड़ा क्यों रही हैं ? वकील साहब कहाँ हैं ?"

"वह नहीं हैं ?"

"कब तक आयेंगे ?"

"मुझे मालूम नहीं, कहीं बाहर गये हुए हैं।"

"अच्छी बात है।" कहता हुआ सिपाही चला गया।

अब अलका बड़े असमञ्जस में पड़ गयी। वह सोचने लगी कि आखिर उमेशचन्द्र ने अपने दामाद ही पर मानहानि का मुकदमा चला दिया ! आखिर इसका कारण ? पर उसमें ज्योत्स्ना का भी तो नाम है। फिर यह क्या पहेली है ? उमेशचन्द्र कभी यहाँ नहीं आये और न वकील साहब ही उनके यहाँ विवाह के बाद से गये। यह अपमान का सवाल उठा कहाँ से ? वकील साहब इतने नासमझ नहीं कि अपने श्वसुर का अपमान करेंगे। ज्योत्स्ना को वह बहुत चाहते थे, उसी के न रहने से तो वे यहाँ से चले गये और एकान्त में जाकर अपने भूले हुए हृदय को शान्ति देना चाहते हैं। भला ज्योत्स्ना ने उनका क्या बिगाड़ा

था कि वह उसका अपमान करते। फिर मानहानि का मुकदमा सम्बन्धियों पर कोई नहीं चलाता, वहाँ तो ऐसी बातें बहुधा हुआ ही करती हैं और किसी के अप्रसन्न होने पर फिर मेल मिलाप हो ही जाता है। कदाचित किसी दूसरे ने आपस में विरोध फैलाने के लिए ऐसा कुचक्र रचा हो......परन्तु नहीं, दूसरे को इनके सम्बन्ध में फूट पैदा करने से क्या लाभ ? वे तो किसी की बुराई भूलकर भी नहीं करते। क्या बात है ? समझ में नहीं आता।

अलका विस्मित हुई इस रहस्य से। उनके सामने कृष्णमुरारी की सौम्य मूर्ति नाचने लगी। वह तन्मय होकर, आत्मविभोर होकर स्मृति-पट पर उनका चित्र बनाने लगी। उसका हृदय कृष्णमुरारी से मिलने के लिए ललकने लगा परन्तु उनका पता कहाँ था ! उनकी दशा भयंकर आँधी में पड़े हुए उस नाविक जैसी हो रही थी जो किनारा खोजता है परन्तु किनारा उसे खोजने नहीं जाता। वह चाहती थी कि उनसे मिलकर उन्हें इस षड़यन्त्र से सचेत कर दे और कह दे कि आपकी कोमलता और उदारता आपको अपना शिकार बनाती है। सामाजिक जीवन में जिस भाँति सभी वस्तुओं की आवश्यकता है उसी प्रकार क्रोध और क्रूरता की भी, परन्तु वह भी समय समय पर। आपके सम्बन्धी आपका विकास नहीं देखना चाहते, वे आपकी गम्भीरता को चिन्ता और उद्वेगों की आँधी में उड़ा देना चाहते हैं। वे आपका पतन चाहते हैं। मैं उनकी कुछ नहीं हूँ, फिर भी उनके ऊपर कोई आँच न आने दूँगी। उनपर आने वाली आँच को मैं बादल बनकर शीतलता प्रदान करूँगी। यदि वे मुझसे घृणा करते हैं, मुझसे दूर रहना चाहते हैं, तो रहें परन्तु मैं उनका अहित न होने दूँगी—भगवान.........क्या करूँ, उन्हें कैसे

खोजूँ। लाहौर चली जाऊँ और ज्योत्स्ना से सब बातें कह कर वकील साहब पर आने वाली विपत्ति से उसे सूचित कर दूँ, परन्तु उन्हीं लोगों ने तो वकील साहब पर मुकदमा चलाया है। वह यह सम्वाद सुनेंगे तो उनको कितना दुःख होगा! कदाचित मृत्यु की पीड़ा से भी अधिक। कहीं वह सर्वदा के लिए चले जायगें तो मेरी क्या दशा होगी? उनको तो सभी जगह आनन्द मिलेगा। वे दार्शनिक हैं, विद्वान हैं। उनको संसार से क्या नाता?

× × × ×

१०

भयंकर आँधी अपनी उत्ताल तरंगों से आयी और एक उथल पुथल मचाती चली गयी। पवन का वेग थमा, आन्दोलित वातावरण शान्त हुआ। सुप्त चेतना जागृत हुई फिर प्रकृति अपनी मादकता को कण कण बिखेरती हुई झूमने लगी। सोये हुए स्वप्न हरे हो गये, कलियाँ चटक उठीं। संसार का रंगमंच पुनः सज गया और अभिनेताओं का अभिनय प्रारम्भ हुआ।

सुन्दरी ज्योत्स्ना पाटल-पराग की भाँति वायु को चूमने लगी। उसकी मुस्कान फूट पड़ी, गोरे २ अङ्गों में पुलकित होकर वह गर्व के हिंडोले पर हुमस हुमस कर झूलने लगी। अतीत की स्मृतियाँ ओस की बून्दें बन कर यौवन की चट्टान पर गिरते ही बिखर गयीं, उनमें न शब्द हुआ और न कम्पन। ज्योत्स्ना को अपना अतीत एक स्वप्न मालूम हुआ। वह अब पहले से भी अधिक स्वतन्त्र हो गयी। उसके चारों ओर आनन्द श्रोत प्रवा-

हित होता रहता। उसके मिलने वालों की संख्या में पहले से अधिक वृद्धि हो गयी। वह अब निर्द्वन्द भाव से पार्टी, सिनेमा, और डिनर में भाग लेने लगी। मित्र बढ़े, साथ २ आशायें भी, व्यवहार बढ़ा और उसके साथ २ सम्बन्ध भी। वह पुनः पहले की भाँति जीवन के रंगमंच पर नृत्य करने लगी। उसमें एक गुदगुदी थी, जो उसे स्थिर नहीं होने देती'। यौवन से भरी हुई निर्झरिणी के समान चंचल होकर वह प्रेम करने लगी, सौन्दर्य संसार से। पहले से अधिक अभिमान होते हुए भी, उसमें एक निर्दोष भावुकता और दया है और उससे उत्पन्न सहनशीलता भी। ज्योत्स्ना अब अपने पिता के साथ सभी जगह जाने लगी और प्रसन्नता से सभी कार्यों में भाग लेने लगी। पिता ने उसको और स्वतन्त्र कर दिया परन्तु वह अपनी सीमा से बाहर न जाने का भरसक प्रयत्न करती.........क्यों ?......वह स्वयं नहीं समझ पाती थी। कदाचित यह किसी का प्रभाव था।

सन्ध्या का समय है। ज्योत्स्ना अपने भवन के सामने वाले टेनिस कोर्ट पर टेनिस खेल रही है। उसके साथी बैठे २ उसकी प्रशंसा कर रहे हैं। सभी उसके खेल पर मुग्ध हैं। ज्योत्स्ना का विपक्षी—उसका पुराना साथी विपिन बिजली की भाँति दौड़ रहा है। उसके हाथ का रैकेट हवा में सन सन कर रहा है और ज्योत्स्ना भी विपिन के चालों पर उसे खूब अच्छा जवाब दे रही हैं। दोनों में स्फूर्ति और चुस्ती है।

इसी बीच में उसके पिता की मोटर आयी और एक नये सज्जन के साथ टेनिस कोर्ट में उन्होंने पदार्पण किया। ये नये सज्जन नगर के मजिस्ट्रेट होकर आये थे, नाम मिस्टर एल० दत्त है। पश्चिमी सभ्यता के पुजारी हैं। व्यवहारकुशल होने के कारण बाबू उमेशचन्द्र उनकी ओर अधिक आकृष्ट हुए। फलतः

उनको अपने बंगले पर लिवा आये। मिस्टर दत्त ज्योत्स्ना के खेल और उसके अनुपम रूपराशि को देखकर मुग्ध हो गये। उन्होंने उधर से बिना आँख हटाये, उमेश बाबू को झकझोरते हुए पूछा—

"यह लड़की कौन है?"

"मेरी पुत्री ज्योत्स्ना, जिसका मैंने आप से कई बार जिक्र किया था। इसने टेनिस में कई ट्राफी और कप जीते हैं।"

"ओह! वस्तुतः बहुत अच्छा खेलती है।"

"लो सँभालो।" ज्योत्स्ना ने हर्षोत्फुल्ल होकर विपिन को ललकारा।

विपिन भी खूब सावधान था और सँभाल २ कर बॉल मार रहा था। बॉल, रैकेट का चोट खाकर 'सन्न' कर उठता था। सभी आँखें फाड़ फाड़कर देख रहे थे कि ज्योत्स्ना का एक करारा हाथ लगा और सभी चिल्ला उठे—

"गुड रिटर्न" क्षण भर में बॉल विपिन के रैकेट को कँपाता हुआ पर्दे से आ लगा। विपिन ने हताश होकर एक रूखी हँसी से ज्योत्स्ना को अभिवादन किया। तालियाँ बजने लगीं। सभी की जबानों पर ज्योत्स्ना की प्रशंसा थी। मिस्टर दत्त ने कहा—

"खूब, क्या कहना है, अच्छा रिटर्न था।"

"इतने में ज्योत्स्ना विजय के गर्व से फूलती रैकेट झुलाती हुई पिता के सामने आयी। पिता ने मि० दत्त की ओर संकेत करते हुए कहा—

"आप मि० दत्त हैं। थोड़े दिन हुए मजिस्ट्रेट होकर यहाँ आये हैं। बहुत मिलनसार हैं आप।"

ज्योत्स्ना ने एक हलकी दृष्टि उनपर फेंकी और तनकर खड़ी हो गयी। अब तक अन्धेरा हो चुका था। दर्शक जा चुके थे।

केवल उमेश बाबू और मिस्टर दत्त टेबिल पर बैठे चाय पी रहे थे। ज्योत्स्ना भी कपड़ा बदल कर वहाँ आ पहुंची। मिस्टर दत्त ने निरीक्षक-दृष्टि से एक बार उसे देखा और पुनः चाय पीने लगे। पिता की आज्ञा पाकर वह भी बैठ गयी। मिस्टर दत्त से बिना बोले नहीं रहा गया। उन्होंने प्रशंसात्मक भाव से ज्योत्स्ना से कहा—

"आप तो टेनिस बहुत ही अच्छा खेलती हैं।"

"जी हाँ, तारीफ करने योग्य तो नहीं, पर थोड़ा बहुत खेल लेती हूँ।"

उमेश बाबू बीच ही में बोल उठे—आज तो तुम्हारा खेल खूब जमा था!"

"जी हाँ, आज विपिन आ गया था और उसने कहा कि मैं आज तुम्हें हरा दूँगा। मै भी तैयार हो गयी मगर उनका हाथ हलका पड़ रहा था।"

"वे तो आपके सामने नये खिलाड़ी से मालूम पड़ते थे।" मि० दत्त ने किञ्चित् मुस्कराहट के साथ कहा।

"पता नहीं आज उन्हें क्या हो गया था, नहीं तो कालेज में उसके खेल के सामने अच्छे २ खिलाड़ियों की अक्ल गुम हो जाती थी।"

मिस्टर दत्त खिलखिला पड़े—"यहाँ के लोग टेनिस में इतने पटु नहीं, जितने इङ्गलैण्ड वाले हैं। यह एक ऐसा आर्ट है जो सबको नहीं आता।"

"आपकी आँखों पर अभी वहाँ का पानी है, इसीलिये यहाँ के लोग आपकी दृष्टि में हेय जँचते हैं।"

मि० दत्त को एक धक्का सा लगा और झेंप गये। उमेश बाबू कुछ काम के लिये भीतर चले गये थे। ज्योत्स्ना अपरिचित

व्यक्ति के साथ अकेले बैठना पसन्द नहीं करती थी, परन्तु एक अतिथि रूप में आये हुए व्यक्ति के साथ वहाँसे उठकर चले जाना अशिष्टता होगी, यह सोचकर बैठी रही। मि० दत्त ने ज्योत्स्ना को अकेला पाकर कहा—"क्या मैं आपको अपने बंगले पर टी-पार्टी में शरीक होने को आमन्त्रित कर सकता हूँ ?"

"मैं तो कहीं जाती नहीं।" उपेक्षा के भाव से उसने कहा—

मि०दत्त क्षण मात्र के लिये मौन हो गये और इसी क्षण मात्र में यह सोच भी लिया कि यह मुझसे भी चालाक है। उन्होंने दूसरा तीर छोड़ा—

"आप और भी कोई खेल जानती हैं ?"

"नहीं।"

"इंगलैण्ड में तो कई प्रकार के खेल होते हैं और वहाँ के लोग खेल के बड़े ही शौकीन होते हैं।"

"मैंने भी सुना है, परन्तु देखा नहीं है।"

इसी बीच में उमेश बाबू आ गये। मि० दत्त उठकर खड़े हो गये और हाथ मिलाते हुए कहा—"अब मैं जा रहा हूँ।"

"फिर आइयेगा" हँसकर हाथ मिलाते हुए उन्होंने कहा।"

"थैंक यू" कहते हुए मि० दत्त चल दिये।

दूसरे दिन ठीक पाँच बजे मि० दत्त की कार उमेश बाबू के बंगले के सामने आकर रुकी। वे बिना रोक टोक के भीतर चले आये। ज्योत्स्ना पियानो पर बैठी गा रही थी। उसके गाने की स्वर लहरी कानों में सुधा-रस का संचार कर रही थी। मि० दत्त कुछ देर तक खड़े होकर गाना सुनते रहे। अकस्मात् मि० दत्त को देखते ही वह व्यस्त सी उठ खड़ी हुई। पहले तो उसे मि० दत्त की असभ्यता पर बड़ा क्रोध आया परन्तु हठात् उसको पीते हुए उसने कहा—

"बैठिये !"

"आपको मैंने बड़ी तकलीफ दी।"

"और आप लोग किसे नहीं तकलीफ देते ?"

ज्योत्स्ना के मुँहतोड़ उत्तर से मि० दत्त सकपका-से गये। अपनी झेंप मिटाने के लिए उन्होंने कहा—

"आप गाती भी बहुत अच्छा हैं। मैं चौखट पर खड़ा आपका मधुर स्वर सुन रहा था।"

"क्षमा करेंगे मि० दत्त, मैं ऐसे ऐडीकेट के बहुत खिलाफ हूँ। मैं उस आदमी को अधिक पसन्द करती हूँ जो अपने विचार साफ साफ प्रकट करता है और व्यवहारों में स्वतन्त्र है। मनुष्य को अपने व्यक्तित्व का ध्यान सर्वदा रखना चाहिए।" कहते २ ज्योत्स्ना की मुखाकृति लाल हो गयी थी।

"मैं तो माडर्न एटीकेट का बहुत पक्षपाती हूँ और इसीलिए हर एक आदमी के साथ मैं उसी तरह व्यवहार भी करता हूँ। मैं तो यह जानता हूँ कि मनुष्य का जीवन थोड़ा है और उसे उसी जीवन में संसार का आनन्द लेना है।"

"आपके विचार आपके साथ हैं। मैं आपके विचारों का स्वागत करने के लिये तैयार नहीं। सबका समय होता है। समय को देखकर चलना मनुष्यत्व है........."

अभी ज्योत्स्ना की बात समाप्त भी न हो पायी थी कि बाबू उमेशचन्द्र आ पहुंचे। मि० दत्त ने उठकर उनका स्वागत किया। बाबू उमेशचन्द्र, मि० दत्त को देखते ही खिल-से उठे। ज्योत्स्ना चाय का प्याला दोनों व्यक्तियों की ओर सरका कर चली गयी।

"मेरी अनुपस्थिति में आपको कोई तकलीफ तो नहीं हुई, मि० दत्त।"

"नहीं नहीं, भला जहाँ मिस ज्योत्स्ना हैं वहाँ क्या तकलीफ

होगी ? इनका व्यवहार बड़ा अच्छा है ।" असली बात को छिपाते हुए उन्होंने कहा ।

मि० दत्त ने सोच लिया था कि उमेशचन्द्र मुझसे और मेरे व्यवहार से सन्तुष्ट हैं ही, ज्योत्स्ना से घनिष्ठता स्थापित करने में कितनी देर लगेगी परन्तु ज्योत्स्ना का स्वभाव उन्हें बड़ा रूखा प्रतीत हुआ । विचारों ने पलटा खाया और फिर उन्होंने निश्चय किया कि चिड़िया पकड़ते समय पहले बहुत इधर उधर करती ही है, परन्तु हाथ में आने पर धीरे धीरे परच जाती है । वे ज्योत्स्ना को भीतर ही भीतर चाहते थे क्योंकि वह उनके जीवन के अनुकूल थी । वह उसके बिखरे यौवन पर मुग्ध थे और अपनी आशा सफल बनाने में वे उमेश बाबू को ही एक सहारे की चट्टान समझते थे ।

"जरूर ! जरूर मिस्टर दत्त ! मेरे दो ही तो सन्तान हैं । एक उमेश और दूसरी ज्योत्स्ना । इनको मैंने बड़े प्यार से पाला है । मेरी सारी इच्छायें पूर्ण हो चुकी हैं, केवल एक इच्छा शेष है, देखूँ भगवान उसे कब पूरा करते हैं ।"

"वह कौन सी इच्छा है ?"

"ज्योत्स्ना के विवाह की । और ऐसे व्यक्ति के साथ जिससे उसका हृदय पट सके और दोनों सुखमय जीवन बिता सकें ।"

"तो क्या उनके उपयुक्त कोई वर नहीं मिला ?"

"अभी तक तो नही, इस तरह तो कई आये गये लेकिन जो बातें ज्योत्स्ना में हैं, उसके अनुकूल मुझे कोई भी दिखलाई न पड़ा ।"

"तो आप कैसा वर चाहते हैं ?"

"अच्छा पढ़ा लिखा हो । ज्योत्स्ना बी० ए० हो चुकी है । वर आधुनिक सभ्यता का पक्षपाती और विचारों का स्वतन्त्र हो ।"

"ऐसे वर तो आपको बहुत मिलेंगे ?"

"मिलेंगे तो जरूर मगर......। वह कुछ न बोल कर मि० दत्त की ओर देखने लगे। मि० दत्त घुटा हुआ चालाक था। उमेश बाबू की दृष्टि में सब कुछ पढ़ लिया और किंचित लज्जा प्रदर्शित करते हुए उत्सुक दृष्टि से सिर झुकाकर नम्र स्वर में बोला—"मैं तो कोई योग्य नहीं हूँ परन्तु आपकी बात सर आँखों पर।"

इतने में ज्योत्स्ना आ गयी और उनके बात का सिलसिला वहीं रुक गया। अब मि० दत्त ने ज्योत्स्ना को एक प्रेमभरी दृष्टि देखा और ज्योत्स्ना ने भी एक आलोचनात्मक दृष्टि से। बिना कुछ बोले सामने बैठकर अखबार पढ़ने लगी। अखबार पर एकाएक उसकी दृष्टि पड़ते ही नेत्र तन गये और वह घबड़ा सी उठी। पहले तो उसे विश्वास न हुआ परन्तु उसने जो कुछ पढ़ा उसका सारांश यह था—

"इधर कई दिनों से लाहौर के प्रसिद्ध वकील, दार्शनिक और लेखक बाबू कृष्णमुरारी के लापता हो जाने से जनता बड़ी चिन्तित है। आपके एकाएक अज्ञातवास से विद्वानों की बड़ी क्षति हुई है, आशा है आप अपनी वाणी की अमृत-वर्षा किसी न किसी रूप में करते रहेंगे।"

ज्योत्स्ना वह अखबार लिए उठी और अपने मुख का भाव छिपाती हुई अपने कमरे में आयी और उसे बार बार पढ़ने लगी। पढ़ लेने के पश्चात् उसका हृदय कचोटने लगा। वह कुछ देर के लिए विचारों में उलझ गयी—

कहाँ गये होंगे वे ? किसी से कुछ कहकर भी नहीं गये। क्या वास्तव में मेरी बातों की चोट ने उन्हें चले जाने के लिये बिवश किया ? परन्तु वे भी तो मेरा अपमान किया करते थे।

फिर इसमें मेरा ही क्यों दोष ? पर इस तरह घबड़ा कर चले जाना तो उचित नहीं। सुखी जीवन बिताने वाला व्यक्ति कैसे कष्टों का सामना कर सकता है ? बाहर क्या करते होंगे ? क्या खाते होंगे ? कष्ट में कौन सहायता देता होगा ? क्या मैं उनकी कोई नहीं ? फिर मुझे तो कम से कम सूचना देनी चाहिये थी ?

ज्योत्स्ना का हृदय रो उठा। वह गर्विणी ज्योत्स्ना हिम की भाँति द्रवित होने लगी और उसका हृदय यह कह कर धिक्कारने लगा कि तुम्हारे ही कारण उन्हें कहीं चले जाना पड़ा है। वह अपने को बहुत सम्हालने का प्रयत्न करने लगी, परन्तु उनकी मूर्ति ज्योत्स्ना के सामने आ गयी और उस स्मृति की क्षीण छाया को देखकर ज्योत्स्ना सचमुच रो पड़ी। अखबार में बड़े बड़े अक्षरों में छपे हुए उनके नाम पर, वह अपनी अविरल अश्रुधारा से बड़ी देर तक श्रद्धाञ्जलि देती रही।

× × × ×

११

दूसरे दिन से वह उदास रहने लगी। उसकी सारी उत्तुङ्ग अभिलाषायें हृदय-कोटर में एक एक कर सिमटने लगीं। उसे कभी उनसे घृणा होती कभी सहानुभूति। वह कभी अलका का चित्र उतारती और सोच जाती कि शायद उसी के साथ कहीं चले गये हों, परन्तु दूसरे क्षण मन ही मन प्रतिवाद करती, नहीं कर सकते। उनमें त्याग है, विराग है। सम्भव है बाहर से उनका रुख कड़ा रहा हो और भीतर ही भीतर वे मेरा आदर करते रहे हों। मेरे आने पर वह अपने निराश जीवन की अन्तिम आशा लेकर अनन्त की ओर चल पड़े हों।

वह इसी प्रकार के विचारों में बही जा रही थी कि प्रभा आ पहुँची। उसके केश बिखरे थे, वस्त्र अस्तव्यस्त थे, उसके मुख पर म्लानता की क्षीण रेखा थी। ज्योत्स्ना ने उसको देखते ही पूछा—तुम्हें क्या हुआ है, प्रभा?"

"क्या बताऊँ, अपने भाग्य पर रो रही हूं।"

"कुछ बताओ तो सही। संसार में तो सभी अपने भाग्य पर किसी न किसी रूप में रोते हैं। कोई हँसता है तो उसका हृदय रोता है और कोई रोता है तो उसका हृदय हँसता है। हँसी और रोने का ही नाम तो जीवन है।"

"पर मेरे भाग्य में तो केवल रोना ही रोना है।"

"बात क्या है प्रभा—कुछ बताओ तो—शायद मैं तुम्हारे काम आ सकूँ।"

प्रभा चुप रही।

"क्या रामदास ने कुछ कहा है? बोलो! मुझसे सारी बातें खोलकर कहो।" ज्योत्स्ना ने उसका हाथ पकड़ लिया और एकाएक बोली—

"अरे यह क्या, तुम्हारी चूड़ियाँ क्यों फूटी हैं और यह हाथ में खून के दाग कैसे?" वह सिसकती हुई बोली—उन्होंने शराब के नशे में मुझे बुरी तरह मारा है। मेरे समझाने का उन्होंने उलटा अर्थ लगाया।"

"तुम्हारा भी जीवन दुखमय ही है, प्रभा।"

"इसीलिये तो इस जीवन से छुटकारा चाहती हूँ।"

"यह भी एक पाप है।"

"परन्तु यातनाओं से छुटकारा पाने के लिए मुझे और कोई मार्ग दिखलाई नहीं पड़ता।"

"निराश जीवन को भी आत्महत्या का अधिकार नहीं है।

जीवन का सबसे बड़ा पाप यही है, जिसका प्रायश्चित कोई नहीं कर सकता।"

"अच्छा उसे जाने दो ज्योत्स्ना। अब यह बताओ मैं क्या करूँ? इस तरह मार खाते २ तो मर कर भी न मरूँगी।"

"मैं तो यही कहूँगी कि तुम घर में कूपमंडूक बनकर मत रहो। अन्धकार की सीमा के बाहर निकलो, वहाँ जीवन का खुला क्षेत्र है, जिसमें तुम्हें सफलता मिलेगी।

"परन्तु हमारी स्थिति ऐसी नहीं है कि हम समाज की ऊँची दीवार लाँघ सकें।"

"स्त्रियों की यही सबसे बड़ी दुर्बलता है, वे भय, लज्जा और शोक के वशीभूत हो उन्नति के क्षेत्र से दूर—बहुत दूर पीछे रह जाती हैं। और इसी से उनका जीवन दुःखमय हो जाता है। यहाँ तक कि कठिन से कठिन यातनाओं के सहने पर भी उनमें जागृति नहीं आती। तुम तो कुछ पढ़ी लिखी भी हो, समझदार हो। कहीं नौकरी कर लो और स्वतन्त्र प्रतिभा से काम लो, देखो तुम्हारे पति-देवता कितने सीधे हो जाते हैं। जब तुम अपने पैरों पर खड़ी हो जाओगी तो तुम्हारी ओर कोई आँख नहीं उठा सकेगा।"

"परन्तु लोग व्यंग बोलेंगे—उँगली उठायेंगे तो।"

"उनकी उपेक्षा करनी होगी। किसी शुभ कार्य के आरम्भ में ऐसी २ अनेक घटनायें आँखों के सामने आती हैं। परन्तु उनका टिकाव अल्प है। धीरे २ वही सरल हो जाता है।

"तुम्हारे सहयोग से मुझे आशा है, मैं सफल हो जाऊँगी।"

"ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा। मैं तो निमित्त-मात्र हूँ।"

"ज्योत्स्ना की बातें प्रभा को जँची। उसने भी सोचा पढ़ी लिखी हूँ ही। क्यों न उसका उपयोग करूँ? और उसे जैसे एक

सहारा मिल गया। नमस्ते करके उसने ज्योत्स्ना से विदा ली।"

और ज्योत्स्ना पुनः अपनी चित्र-पटी कल्पना-तूलिका से अंकित करने लगी—

"नारी जीवन कितना महान होते हुए भी तुच्छ है। इसके एक ओर मादकता की मस्ती, सकुचाती लज्जा और महान त्याग है तो दूसरी ओर ग्लानि, विराग और जीवन से असन्तोष है। उसकी सर्वग्रासी उपेक्षा, निरादर, अवहेलना उसके आनन्द का गला दबोच बैठती है। उसी में उसका कोमल हृदय पिसकर चकनाचूर हो जाता है। और उसकी महानता उन महापुरुषों से पूछो जो इस जाति के स्तम्भ हैं। बाल्मीक, व्यास, कालिदास, तुलसीदास, सूर, यहाँ तक ही नहीं, राम, कृष्ण, भगवान बुद्ध इत्यादि लोक नायक और बड़े बड़े राष्ट्र के नेता, विश्वविख्यात शिल्पी, अद्भुत चिकित्सक, वैज्ञानिक और गायक, कवि और चित्रकार सभी उस नारी जाति का प्रसाद पाकर महान हो गये और होते जा रहे हैं। कितना ऊँचा गौरव है, इन नारियों का, पुरुषों से महान, संसार की सृष्टि की विशालता से भी महान। नारी—अविरल विश्व की धात्री नारी कितनी गौरवमयी है—माता बनकर, पत्नी और भगिनी बनकर संसार को जीवित रखती है और स्वयं त्याग और तपस्या की ज्वाज्वल्यमान मूर्ति बनी रहती है।

परन्तु आज क्या मैं भी उसी जाति की एक रत्न हूँ, नहीं मुझमें उस पवित्र आत्माओं की छाया तक भी नहीं है। मैं...... एकाएक उसकी विचारधारा रुकी और उमेश बाबू ने मि० दत्त के साथ प्रकोष्ठ में प्रवेश किया। वह सिहर कर रह गयी। उमेश बाबू ने हँसते हुए कहा—

मि० दत्त तुम्हारे लिए एक उपहार लाये हैं। देखो कितना

सुन्दर है। और डब्बा खोलकर उसके सामने टेबुल पर रख दिया। भीतर चमकता हुआ एक सोने का हार था। ज्योत्स्ना ने उसे उपेक्षा की दृष्टि से देखते हुए कहा—"इसको लाने की तो कोई आवश्यकता न थी और न मैं इसे लेना पसन्द ही करती हूँ।"

"यह तो एक साधारण भेंट है।" मुँह बनाकर मि० दत्त ने कहा—

"जो कुछ भी हो परन्तु मैं इसे क्यों लूँ, मुझे लेने का अधिकार.........।

"यहाँ अधिकार की बात तो नहीं, यह तो अपना २ प्रेम है।"

इतने में उमेश बाबू नौकर के बुलाने पर बाहर चले गये। ज्योत्स्ना अब निस्संकोच उत्तर देने लगी—

"परन्तु आपका मेरे साथ प्रेम कैसा? आप मेरे पिता के मित्र हैं न कि मेरे, मुझसे आप से कोई सम्बन्ध नहीं। आप हमारे यहाँ आते हैं, मैं आपका सम्मान करना अपना एक कर्तव्य समझती हूँ।"

"आपका कहना ठीक है, मगर फिर भी मैं इसे बड़े प्रेम और उत्साह से लाया हूँ।"

"इसलिए आपको धन्यवाद है और इसी के साथ यह लौटाते हुए प्रार्थना भी है कि आप अब ऐसे कष्ट न उठाया करें। मैं ऐसे विचारों से घृणा करती हूँ।"

"तो आपका प्रेम कैसे विचारों से होता है?"

"जो हृदय और बाहर से एक हो।"

"आपको इसका पता कैसे कि मनुष्य वही कह रहा है जो उसके हृदय में है।"

"आप से अधिक समझती हूँ मैं इस विषय में।"

"क्या मैं भी थोड़ा बहुत जानने की इच्छा कर सकता हूँ?"

इतने में उमेश बाबू आये और बोले—

"क्यों ज्योत्स्ना मि० दत्त का उपहार पसन्द आया ? आप ने बड़े परिश्रम से इसे बनवाया है। इंग्लैंड के एक कारीगर ने बनाया है।"

"मैं ऐसा उपहार नहीं चाहती पिताजी, सोनें की चमक से हृदय का सौदा नहीं होता। यद्यपि मैंने इंग्लैंड की हवा नहीं खायी है परन्तु फिर भी मैं विद्यार्थी-जीवन में रह कर उस सभ्यता का रूप समझ सकी हूँ।"

"परन्तु जानती हो कि मि० दत्त तुम्हें कितना अच्छा समझते हैं और मुझसे बहुधा तुम्हारी प्रशंसा किया करते हैं।"

"आज कल इस युग में प्रशंसा ही की आड़ में जीवन का कुचक्र रचा जाता है। जिसमें आडम्बर का ढाँचा खड़ा कर लोभ की प्यास बुझाई जाती है।"

"तुम्हें आधुनिक सभ्यता से चिढ़ क्यों होने लगी ?" पिता ने पूछा—

"चिढ़ मुझे ही नहीं, उन सबको है जो इसके शिकार हो चुके हैं।" आपको एक बार चिढ़ पैदा हुई थी और फिर होगी। व्यर्थ की बातों से स्थायी शान्ति नहीं होती। इस तरह तो रोते हुए बालक को मिठाई देकर सभी चुप करा सकते हैं।"

"तो क्या तुमको मि० दत्त से कुछ भी सहानुभूति नहीं। वह आई, सी, यस हैं और नगर के मजिस्ट्रेट हैं।

"डिग्री और डिप्लोमा लेकर कोई शासन भले ही कर सकता है परन्तु हृदय पर अधिकार नहीं कर सकता। बड़े २ अधिकारी इस व्यवस्था के क्षेत्र में पूर्ण रूप से असफल रहते हैं। यह उन्हें इतना लोलुप और स्वार्थी बना देता है कि वे केवल अपनी क्षणिक इच्छा को शान्त करने के लिए दूसरे का जीवन भ्रष्ट करते हैं।"

ज्योत्स्ना का उत्तर सुनकर उमेश बाबू अवाक से हो रहे। वह यह न समझ सके कि इसमें इतना परिवर्तन कैसे हो गया और यह मि० दत्त से क्यों घृणा करती है। उन्होंने समझा कि इस समय यह किसी चिन्ता से दुखी है, इसलिए अधिक बोलना अच्छा नहीं है। उन्होंने मि० दत्त की ओर घूमकर कहा—

"इस समय इसकी तबियत कुछ उदास-सी मालूम पड़ती है, कल इसी समय आइयेगा तो बातें होंगी?"

मि० दत्त कट रह गये। उनका इतना बड़ा अपमान कभी नहीं हुआ था परन्तु वह तो ज्योत्स्ना के सौन्दर्य पर मुग्ध थे और भावी आशा की गोधूली में अपना स्पष्ट चित्र देख रहे थे। ज्योत्स्ना की कटुक्तियाँ यौवन की प्रथम लज्जा की भाँति उन्हें और लुभा रही थी। वे सोचने लगते—प्राथमिक प्रेम करने में झुँझलाहट होती है परन्तु बाद में वही झुँझलाहट उदारता का दूसरा रूप है। इन्हीं मधुर स्वप्नों में भूले मि० दत्त अपने घर आये।

× × × ×

१२

कृष्णमुरारी हृदय से हारकर अल्मोड़ा पहुँचे। जब वह गाड़ी से उतरे, उस समय नीरव सन्ध्या अपने अन्धकार को अगाढ़ करती जा रही थी। नीलाम्बर में तारिकायें भी उन्हें निहार रही थीं और वे भी झिलमिलाकर। पर्वतों की उत्तुंग शैल मालायें उस काली रजनी की रक्षा में मानों तन कर खड़ी थीं। पक्षियों का कलरव निस्तब्धता से भी शान्त था। वृक्ष मालायें पर्वतीय सोपानों पर चढ़ती हुई रजनी की मूक अर्चना कर रही थीं।"

वकील साहब यहाँ आकर सोचने लगे, अब कहाँ जाऊँ ? क्या करूँ ? यहाँ तो कोई अपना भी नहीं है। इसी विचार में वह घण्टों इधर उधर टहलते रहे। अन्त में यह सोचकर कि आ गया हूँ तो कुछ दिन यहीं सही। एक होटल में आकर टिक गये। रात को भोजन कर सो रहे परन्तु नींद ने ऐसा नाता तोड़ा जैसे कभी पहिचान ही नहीं। किसी तरह प्रातःकाल हुआ और वे उस पार्वतीय प्रदेश की शोभा निरखने लगे।

चाय पी लेने के पश्चात् वे घूमने के लिए चल पड़े। इधर उधर की शोभा देखते देखते वे बढ़े जा रहे थे। लौटने का खयाल तक नहीं रह गया था। रास्ते पर पड़ते पैरों के साथ २ विचार-धारा भी अग्रसर रहती। कैसा सुहावना स्थान है? यहाँ न तो नगरों की चहल पहल और न अधिक झंझट। यहाँ के लोग कितने सीधे सादे और सरल हैं। वास्तव में मनुष्यों को शान्ति ऐसे ही स्थानों में मिलती है। वह चलते चलते एक पहाड़ी के नीचे पहुँचे, वहाँ गरीब पहाड़ियों की बस्ती थी। उनके फूस के मकान खड़े थे। उनके बच्चे फटे चिथड़ों में लिपटे कलोल कर रहे थे। नर नारी सभी उदास मन से अपने काम में लगे थे। दोपहर हो गया था। भगवान मार्तण्ड की प्रखर किरणें सीधी पड़ रही थीं। धूप से बचने के लिए पास ही एक वृक्ष के नीचे आ खड़े हो गये। एक अपरिचित को देखकर, वहाँ खेलता हुआ बच्चा डर के मारे अपनी माता के पास चला गया। उन्होंने समझा बच्चा डर रहा है। उन्होंने उसकी माँ के पास पहुँचकर पूछा—

"इस बस्ती में कौन २ रहते हैं।"

"बस ! मेरे जैसे दरिद्रों का निवास इस झोपड़ियों में है।" उसके कहने के भाव में दरिद्रता नाच उठी।

वह उस स्त्री की करुण स्थिति पर विचार करने लगे एक ओर

पूँजीपतियों की विशाल अट्टालिकायें अपने वैभव के गर्व में झूमती सी दीख रही हैं। और दूसरी ओर उन्हीं के पार्श्व में पड़ी हुई झोपड़ियाँ अपनी दीनावस्था में मुर्झाई पड़ी हैं। उनमें रहनेवाले दरिद्रनारायण ठंढी साँसें लेकर बिना भोजन किये सो रहते हैं। उनके बच्चों को दूध तो क्या, पानी भी मिलना कठिन हो जाता है। पता नहीं कितने सुन्दर बालक अपनी प्रतिभा बिखराने के पहले ही इस लोक से कूच कर जाते हैं। पता नहीं भगवान ने सृष्टि क्यों की, यदि की तो यह भेदभाव कैसा! वे सोचते सोचते एक बार आपादमस्तक सिहर उठे। उन्होंने जेब से एक रुपया निकाल कर उस स्त्री की ओर बढ़ाते हुए कहा—"लो! बच्चे की मिठाई के लिये।"

माँ ने रुपये को एक क्षण के लिये तृषित नेत्रों से देखा और फिर कुछ सकुचाते हुए हाथ फैला दिया—

धीरे धीरे कृष्णमुरारी का उस परिवार से विशेष प्रेम हो गया। वे प्रतिदिन उसके घर जाते। उनका कुशल-मंगल पूछते। उस लड़के को पढ़ाते और लौट आते। थोड़े दिनों के पश्चात् वे इतना प्रभावित हुए कि गाँव के बच्चों को जाकर घण्टों पढ़ाया करते और अच्छी अच्छी उपदेशपूर्ण बातें बताने में अपना समय व्यतीत करने लगे। उनके स्वच्छ विचारों से प्रभावित होकर सभी लोग उनकी बातें मानने लगे और उनका आदर करने लगे।

परन्तु जब कृष्णमुरारी अकेले बैठते तो उनका हृदय चिन्ताओं का नीड़ बन जाता। ज्योत्स्ना के प्रति उनकी सहानुभूति बढ़ती चली जा रही थी। साथ ही अलका के विषय में सोचते और एक उलझन में पड़ जाते। वह विचार करते—ये स्त्रियाँ भी रहस्यमय हैं। ज्योत्स्ना मेरी स्त्री होकर भी मुझसे घृणा करती है

और अलका प्रेम। मेरे यहाँ आने की बात ज्योत्स्ना को मालूम हो जाने पर भी, वह यहाँ आने के लिये उतनी उतावली न होगी, जितनी अलका। जिस शरीर के ढाँचे से अलका को प्रेम है उसी से ज्योत्स्ना का विराग। आखिर ज्योत्स्ना भी तो स्त्री ही है–फिर वह मुझमें कौन सी कमी के कारण मुझसे विरक्त हो गयी। क्या अब वह मुझे बिल्कुल भूल जायगी—जीवन-नौका क्या अकेली खे लेगी? नहीं-नहीं, उसे अवश्य सहारे की जरूरत पड़ेगी और तब मुझे याद करेगी। परन्तु मैं तो यहाँ रहूँगा—क्यों न एक पत्र लिख दूँ?—

और पत्र लिखने बैठ गये। दो चार पक्तियों के पश्चात् उनकी विचारधारा एकदम विपरीत हो गयी। उन्होंने उसे टुकड़े २ कर फेंक दिया और लेटकर कुछ विचार करने लगे। चिन्ता की मात्रा अधिक होने के कारण तथा पहाड़ी जलवायु के प्रभाव से कृष्ण-मुरारी को एकाएक ज्वर आने लगा। पहले तो उन्होंने उसकी कोई समुचित व्यवस्था न की, परिणाम यह हुआ कि ज्वर ने अपना उग्र रूप धारण किया और वे रुग्ण शैया पर गिर गये। भूख जाती रही, शरीर की निर्बलता से वह अधिक उठ बैठ भी न सकते थे। दिन रात अपने कमरे में पड़े इधर से उधर करवटें बदलते और चिन्ताओं में चेतना को और भी भुलाते रहते। धीरे धीरे अवस्था चिन्ताजनक होने लगी। अब उन्हें किसी की सेवा की आवश्यकता हुई, परन्तु वहाँ उनका कौन बैठा था जो उनकी सुश्रूषा करता। अशक्त इतने हो गये कि उठकर पानी भी नहीं पी सकते थे। शरीर की पीड़ा बढ़ने लगी। दवा लाने वाला भी कोई नहीं था। अब वह केवल अपनी शैय्या पर पड़े २ कराहने लगे।

इधर कई दिनों से उनकी वेदना बढ़ने लगी और वे रात को

पता नहीं क्या २ बका करते थे। उनकी कभी इच्छा होती कि ज्योत्स्ना या अलका को लिख भेजूँ, परन्तु यह सोचकर कि अच्छे समय में तो लिखा नहीं और अब इस समय क्या लिखूँगा। यही सोचकर सन्तोष कर लेते और जीवन की अब अन्तिम घड़ियाँ गिनने लगे। स्वप्न में विचित्र प्रकार की बातें उनके सामने आतीं। इसी प्रकार वह पड़े २ सोचा करते—

"मैंने अपना जीवन इतना नीरस क्यों बनाया? मैंने किसी से हृदय खोलकर प्रेम नहीं किया। संसार में उसका मूल्य कितना है, वह आज इस मृत्युशैया पर समझ रहा हूँ। प्रेम संसार की संपदा नहीं देखता, दुख के सागर से नहीं घबड़ाता। जिसने एक बार जी भर के पी लिया वह जीवन भर मस्ती में रहा। उसके सामने स्वर्ग की लालसा नहीं, सुधा की चिन्ता नहीं। प्रेम तो सबके हृदय में होता है, किसी के हृदय में उत्साह और उमंग लिए और किसी के हृदय में निराशा और तड़पन लिए। कोई इसको पाकर अपने को धन्य समझता है तो कोई इसको अपने स्वार्थ का एक साधन मान बैठता है। प्रेम अमृत और विष का बीज बोता है, जिसमें शान्ति तथा अशान्ति का फल पैदा होता है। संसार में सभी सौन्दर्यशाली हैं, सभ्य से सभ्य, गँवार से गँवार स्त्री में भी एक सौन्दर्य रहता है। भगवान ने सबको सुन्दर बनाया है। जो जिसके मन में अच्छा लग गया, वह उसके लिए इन्द्र की अप्सरा हो गयी, उस समय वह प्रेमिका के गुण, अवगुण, स्वरूप और कुरूप को नहीं देखता, केवल यही चाहता है कि वह मेरे नेत्रों में पुतली की भाँति नाचती रहे।

परमात्मा ने सबको सुन्दरता दी है, तारिकाओं से लेकर पृथ्वी के अणु परमाणु तक में। एक सौन्दर्य पारखी पृथ्वी के एक गड्ढे में भी सुन्दरता देखता है और सौन्दर्य-भिखारी, स्त्री के रूप

में। कैसी लीला है भगवान ! विश्व रहस्यों का गढ़ है। इसको जीतना बड़ा दुष्कर कार्य है।

मुझे विश्वास है कि मैं मरूँगा नहीं, असन्तोषी मनुष्य का मारना भी एक अशुभ है, मैं जीवित रह कर भी क्या करूँगा ? कोई मेरे पास नहीं आयेगा। लोगों को मुझसे घृणा होगी। मैं संसार का सौन्दर्य देखूँगा और छटपटा कर चुप रह जाऊँगा। उस सौन्दर्य का रसपान करने का अधिकार मुझे नहीं है। मेरे जीवन की ज्योत्स्ना रहती तो कदाचित मैं सुखपूर्वक जीता, परन्तु मरने पर भी मुझे तृप्ति नहीं होगी। लोग कहते हैं कि जिसकी पिपासा शान्त नहीं होती, उसे फिर जीव धारण करना पड़ता है। तब मैं फिर पैदा हूँगा और.........” आगे वह न सोच सके। सर घूमने लगा।

थोड़ी देर बाद वह एक भयंकर स्वप्न देखने लगे। वह और ज्योत्स्ना एक ही नाव पर बैठे चाँदनी से भरी हुई नदी में जीवन की तृषा शान्त कर रहे हैं। ज्योत्स्ना कह रही है कि आप के बिना मैं नहीं रह सकती। इतने में वायु का वेग बढ़ने लगा। हमलोग एक दूसरे से धक्का खाने लगे और रोम रोम पुलकित हो गया, हर एक अंगों में सिहरन पैदा हो गयी। ज्योत्स्ना धीरे धीरे गुनगुना रही थी और मैं उसके सौन्दर्य से नेत्रों की प्यास बुझा रहा हूँ। सरिता हमें लहरों से थपकियाँ देने लगी, वायु वस्त्रों को उड़ाने लगा, चन्द्रमा हमारे आनन्द पर रीझ रहा था। पवन आन्दोलित हुआ, नाव मध्य में थी। ज्योत्स्ना ने पूछा—

“नाव कहाँ जा रही है ?”

“अनन्त की ओर, जहाँ किसी का साम्राज्य नहीं है, केवल शान्ति ही शान्ति है, वहीं चलकर हमलोग एक कुटी बनायेंगे और उसी में प्रेम की दुनियाँ बसायेंगे।

"वह खिलखिला कर हँस पड़ी और मैं भी।"

इतने में देखते ही देखते आकाश धूमिल हो गया, लहरें फुँकारने लगी, नाव उछलने लगी और हम दोनों आपस में चिपटने का प्रयास करने लगे परन्तु धक्का लगा, नाव टेढ़ी हुई और हम लोगों ने देखा फुँकारती हुई कितनी ही लहरें क्रोधित नागिन की भाँति बढ़ी आ रही हैं। ज्योत्स्ना पीली पड़ गयी और भय से चीख उठी और मैं चिल्ला उठा—"बचाओ।"

"क्या है? क्यों चिल्ला रहे हैं?" कहते हुए डाक्टर ने कृष्णमुरारी को हिलाया। उनकी स्मृति लौटी, उन्होंने देखा, वही अल्मोड़ा, वही होटल का कमरा। वह उठकर बैठ गये। डाक्टर ने कहा—

"आप क्या स्वप्न देख रहे थे?"

"जी हाँ, परन्तु मैं क्या कह रहा था?"

"आप 'बचाओ-बचाओ' कह रहे थे।"

कृष्णमुरारी के मुख पर एक फीकी हँसी दौड़ गयी। डाक्टर ने दवा दी और कहा—अधिक चिन्ता करने से रोग के बढ़ने का डर है इसलिए आप कोई विचार हृदय में न रक्खें।"

डाक्टर के चले जाने के बाद कृष्णमुरारी लेट गये और फिर सो रहे।

इधर अलका ने देखा कि वकील साहब के गये महीनों हो गये और उनका कोई पता नहीं तो वह बड़ी चिन्तित हुई। पहले उसने समाचार पत्रों में उनके लापता होने का समाचार छपवाया, कचहरी के पदाधिकारियों से पूछा और उनके साथ के रहने वाले जितने भी लोग थे, सबके यहाँ गयी और सभी से उनके विषय में पता लगाया। जब कहीं से भी उनका पता न लगा तो निराश हो गयी। मानहानि के मुकद्दमे वाले विषय ने उसे और चक्कर

में डाल रक्खा था। वह सोचने लगी कि कदाचित वह गिरफ्तार कर जेल न भेज दिये गये हों क्योंकि वह ठीक समय पर अदालत में हाज़िर न हुए होंगे।

इसी प्रकार सोचते सोचते उसने निश्चय किया कि वास्तविक घटना का सूत्र बिना ज्योत्स्ना के यहाँ पहुँचे नहीं मिलेगा। मान-हानि की नोटिस भी उसी के पिता के यहाँ से आई है, अवश्य उसे इस बात का ज्ञान होगा। यद्यपि यह निश्चय है कि वह हमें देखकर घृणा करेगी और वकील साहब के अज्ञातवास के सम्बन्ध में मुझे ही दोषी ठहरायेगी परन्तु जो कुछ हो मैं वहाँ एक बार जाऊँगी और देखूँगी कि ज्योत्स्ना, वही ज्योत्स्ना है या उसमें कुछ परिवर्त्तन हुआ है।

एक उत्साह को छाती में दबाकर अलका अपने प्रेमी के लिए ठोकरें खाने के लिए प्रस्तुत हो गयी। वह वकील साहब से प्रेम करती थी केवल उनके गुणों से, उनकी सरल भावना से। वह उनका दर्शन चाहती थी और एक करुणा की भीख। इससे अधिक उसकी इच्छा और न थी।

× × × ×

१३

पूर्व की लाली के साथ मि० दत्त भी अपने यहाँ सुख-शैय्या को छोड़कर उठे। रातभर ज्योत्स्ना की एक धुँधली छाया ने उनके मुख पर एक विचित्र प्रतिभा का प्रभाव अंकित कर दिया था। वह किसी मधुर वासना में संलग्न कुछ देर तक अनेकों विचारों में पड़े रहे परन्तु तत्काल ही बाबू उमेशचंन्द्र का ध्यान कर हँस

पड़े, कहने लगे.........कैसा सीधा आदमी है, वह मुझको अपनी लड़की देना चाहता है परन्तु ज्योत्स्ना हमसे दूर भागना चाहती है, अब भागकर कहाँ जायेगी जब उसका पिता ही मेरे वश में है। सुरेश बाबू भी यहाँ हैं ही नहीं, अब हमारा रास्ता साफ है, आज ही मेरे भाग्य का सूर्य चमकेगा। केवल एक बार उस तिमिराच्छन्न गगन में और लचकती ज्योत्स्ना हमारी शोभा में, जल में जल की भाँति मिल जायेगी। मैं भी उसकी लहरों पर पागलों की भाँति झूमने लगूँगा। ज्योत्स्ना क्या है ? प्रकृति और परमात्मा की एक अनुपम कला जिसको रच रच कर बनाया गया है। उसका भरा और मदमाता यौवन और सरिता की बाढ़ की भाँति उसका उभार, कोकिल सी स्वर-लहरी, मृग-शावक सी उसकी चंचलता और चपलता से भरे नेत्र, प्रत्येक पदों में एक थिरकन लिए, वह पगली मयूरनी की भाँति नाचती रहती है। देखने से ऐसा प्रतीत होता है कि वह हृदय से प्यासी है और जल की शीतलता पाकर उसी में ऊभचूभ कर आनन्द लेना चाहती है, हुमस हुमस कर, हुलस हुलस कर। ज्योत्स्ना में सब कुछ है, जो स्त्रियों में होना चाहिए। वह गाती भी है हृदय में एक तड़पन लिए, वह हँसती भी है कलियों सी चटक चटक कर और बोलती भी है वाणी में हूक भर भरकर।

मि० दत्त को आज का प्रातःकाल बसन्त का प्रातःकाल होकर आया। आज ज्योत्स्ना का प्रथम प्रेम उनके चरणों में लोटेगा और संसार में सबसे भाग्यशाली पुरुष होंगे, उनके सरस जीवन की सबसे बड़ी वस्तु का अभाव दूर होगा और वे किसी सुन्दरी के हृदय-सिंहासन पर चक्रवर्ती सम्राट की भाँति बैठकर उसके हृदय पर शासन करेगें। भावावेश में मि० दत्त झूमने लगे। जीवन का मधुर संगीत बजने लगा, रोम रोम पुलकित हो गया और

उसी में मस्त होने लगे। उन्होंने उठकर स्नान किया और टहलते टहलते उद्यान की शोभा देखने लगे। वह कली के पास जाते और उसकी शोभा देखकर मुस्करा पड़ते। वे कलियाँ भी हिल उठतीं, चटक जातीं मानों उनके भाग्य पर आज उन्हें ईर्ष्या हो रही है। वह प्रातःकाल की शोभा में तल्लीन थे और हृदय भी ज्योत्स्ना के सौन्दर्य-उद्यान में धीरे धीरे टहल रहा था। उन्होंने एक कली को धीरे से तोड़ा, सूँघा और हँसकर मुग्ध हो गये परन्तु उसकी डाली काँपती ही रह गयी। दूसरी ओर बढ़े फिर उसी भाँति उसके ऊपर मुग्ध हो गये और उसे भी निर्मोही की भाँति अलग कर दिया। वह मुरझा गयी। अन्त में उनकी दृष्टि एक खिले गुलाब पर पड़ी जो अपने सौरभ से उद्यान को सुगन्धित कर रहा था। उसकी अधखिली पंखुड़ियाँ एक दूसरे से मिली केवल प्रेम में अटकी थीं, भौंरे इधर उधर गूँज रहे थे परन्तु पास में जाने का साहस न करते थे। मि० दत्त को वह गुलाब बड़ा ही सुन्दर प्रतीत हुआ और वे उसका भी आनन्द लेने के लिए बढ़े। कुछ देर तक उसके सौन्दर्य पर नेत्र नचाते रहे। अन्त में उसे तोड़ने के लिए हाथ बढ़ा दिये, परन्तु फूल के पहले ही उनके हाथ में एक काँटा धँस गया और वे झिझक कर पीछे हट गये और इतने में एक भौंरा उसपर बैठ गया और उसका रस पान करने लगा।

मि० दत्त लौट पड़े और भोजन करके अपने कार्य पर गये परन्तु वहाँ आज उनका मन भी न लगता था। किसी भाँति धीरे धीरे समय बीतता गया और उत्सुकता भी बढ़ती गयी। संध्या होने के पहले ही एक विचित्र आनन्द में भरे अपनी चमकती कार पर जा बैठे और ज्योत्स्ना के घर की ओर चल पड़े।

यहाँ उमेश बाबू कोच पर लेटे अखबार पढ़ रहे थे और

ज्योत्स्ना खड़ी होकर चाय बना रही थी। उमेश बाबू का ध्यान एकाएक ज्योत्स्ना की ओर गया और बोले—

"देखो ज्योत्स्ना! आज मि० दत्त आने वाले हैं, उनके साथ प्रेम का बर्ताव करना, उनके ऐसा सभ्य आदमी जल्दी नहीं मिलेगा।"

ज्योत्स्ना ने पिता की ओर देखा और चाय प्याली में उड़ेलती हुई बोली—"तो मैं उनके साथ कब बुरा व्यवहार करती हूँ।"

"नहीं बेटी! तुम जानती हो कि मैं तुम्हारे भाग्य की सबसे सुदृढ़ और सुसंगठित दीवाल बना रहा हूँ, जो एक या दो धक्के से धराशायी न हो सके।"

"यह क्या कह रहे हैं, पिताजी। मेरे भाग्य का अन्तिम निर्णय हो चुका है।"

"वह कैसे?"

"आप इतनी जल्दी भूल जायँगे यह मुझे नहीं मालूम था पिताजी। आपको यह नहीं भूलना चाहिये कि मैं एक बार अपने ऊपर दाम्पत्य जीवन का बोझ उठा चुकी हूँ।"

"हाँ, उसी बोझ को हलका करने ही के लिए तो मैं इतना प्रयत्न कर रहा हूँ।"

"जीवन का प्रश्न एक ही बार हल होता है, उसे बारबार हल करने में उसकी महत्ता जाती रहती है और फिर वह तो क्रय विक्रय की वस्तु हो जाती है।"

"नहीं, नहीं, यह तुम्हारी भूल है, तुम्हें अभी ऐसा नहीं सोचना चाहिए।"

"मैं अब क्या सोचूँगी, जो कुछ सोचना था सोच चुकी और अब उसी का प्रायश्चित करना है।"

"तुम पगली हो" कहकर उमेश बाबू ने चाय पीना आरम्भ किया और वह अपने उद्वेगों को रोकने के लिए कमरे के बाहर हो रही ।

थोड़ी ही देर बाद मि० दत्त की कार बंगले में आकर रुकी और वह अपनी पतली छड़ी लपकाते हुए भीतर चले आये । उनको देखते ही उमेश बाबू ने उठकर उनका स्वागत किया और हाथ मिलाकर बोले—

"आइये मि० दत्त, बैठिये ।"

बैठते हुए मि० दत्त बोले—

"मैं समय के कुछ पहले आ गया, क्षमा कीजियेगा ।"

"इसमें क्षमा की कौन सी बात है, यह भी तो आप ही का घर है, जब इच्छा हो आइये, रहिए। कोई आपको कुछ कहने का साहस नहीं करेगा ।"

"अभी तक तो यह हमारा घर नहीं है ।"

"न हो तो इससे क्या ? हाँ आज नहीं है तो कल हो जायेगा ।" मि० दत्त ने हँसते हुए कहा—

"मिस ज्योत्स्ना कहाँ है ?"

"अभी आती है किसी काम से गयी है।

इतने में एक अच्छी साड़ी पहने, सजी सजायी इठलाती हुई उस कमरे में उतर आई। उसको देखते ही मि० दत्त की आँखें चकाचौंध सी हो गयीं। उन्होंने ज्योत्स्ना का ऐसा विचित्र शृङ्गार न देखा था। उन्होंने पहले खड़े होकर उसका अभिवादन करना चाहा परन्तु कुछ सोचकर बैठे ही बोले—

"कहिए मिस ज्योत्स्ना आप अच्छी तरह हैं ?"

"यस सर" कहती हुई वह तन कर सामने कुर्सी पर बैठ गयी।

"आजकल यह बड़ी चंचल हो गयी है मि० दत्त" उमेश बाबू ने हँसते हुए कहा—

"यह अवस्था ही ऐसी है।" मि० दत्त ने हिचकिचाते हुए कहा—

ज्योत्स्ना के मुख पर लज्जा की लाली दौड़ गयी और इधर उधर देखने लगी। उमेश बाबू ने दोनों को एक बार सतृष्ण नेत्रों से देखकर कहा—

"कहिए मि० दत्त आपके विचार विवाह-पद्धति में कैसे हैं?

"मेरे विचार इस विषय में बड़े ही स्वतन्त्र हैं। मैंने जहाँ तक दूसरे देशों की परिस्थिति देखी है, उसको देखकर यह निचोड़ निकाला है, स्वतन्त्रता ही मनुष्य के सब प्रकार की उन्नति में साधक है। क्योंकि स्वतन्त्रता न होने से वैवाहिक जीवन अनुकूल नहीं होता। उसी का परिणाम यह होता है कि कितनी स्त्रियों को जीवन भर रोना ही रोना रह जाता है, कितनों को दूसरे धर्मों की शरण लेनी पड़ती है और कितनों को आत्म-हत्या जैसी नृशंस लीला करनी पड़ती है या तो फिर लज्जा को लात मार कर बाजारों में रूप का सौदा करना पड़ता है।"

"मैं आपके सद्विचारों के लिए बधाई देता हूँ।"

"थैंक्स, मुझे यह देखने का प्रायः अवसर आता है कि मनुष्य अपनी स्त्रियों के साथ पशु से भी बढ़कर व्यवहार करते हैं और वे चुपचाप उसे सहन करती चली जाती हैं।"

"यह तो बड़ी बुरी बात है। मैं तो यह समझता हूँ कि प्रत्येक स्त्री को शिक्षित होना चाहिए जिससे वह स्वयं अपना कर्त्तव्य निर्धारित कर सके। यदि पुरुष उन पर अत्याचार करें तो वे उसका प्रतिकार कर सकें। मुझे इसका बड़ा अच्छा अनुभव है कि.........."

वह चुप हो गये ज्योत्स्ना भी पीली पड़ गयी और मि० दत्त उनकी ओर देखने लगे कि यह बोलते २ चुप क्यों हो गये। इतने में उमेश बाबू उठे और जाने लगे परन्तु उन्हें कोई रोक न सका। मि० दत्त ने समझा कि वह कुछ भूल गये हैं, कदाचित उसको लेने गये हैं।

अब रह गयी अकेली ज्योत्स्ना, श्रावण-सन्ध्या सी घनी, विद्युत को छाती के दबाये मेघ सी, जीवन के संघर्ष से संतापित मान से फूली हुई, सूखी पृथ्वी को सींचित करने के लिए। वह बैठी थी उदास मुख से परन्तु उसके अधरों को एक अरुणिमा चूम रही थी, कपोलों पर मोहकता अपना रूप बिखेर रही थी और नेत्रों में छलकता यौवन अपनी सीमा की दीवाल उठा रहा था। मि० दत्त ने एक बार आकांक्षाओं से भरे रूप को देखा, जी भर देखा और देखते रहे, उसकी भी आँख उठी और नेत्रों ने आपस में आलिंगन किया और फिर नीचे हो गये, दिन में संकुचित कुमुदिनी की भाँति। ज्योत्स्ना प्रभाहीन हो गयी और मि० दत्त के हृदय में एक गुदगुदी होने लगी, वह स्वप्निल लहरों में झूमते हुए बोले—

"मिस ज्योत्स्ना, मैंने उस दिन के बाद आपका गाना नहीं सुना, क्या आज के आनन्द में आप उस मधुर लहरी से, हृदय को क्षण भर के लिए रस-विभोर कर सकती हैं?

पूर्ण दृष्टि से उनकी ओर देखती हुई ज्योत्स्ना बोली—

"ऐसे गाने गाने का केवल मुझे ही अधिकार है, जब मैं अपनी अन्तर्वेदना से व्याकुल होती हूँ तभी वैसा गाती हूँ, किसी के कहने सुनने से मैं हृदय का रत्न नहीं निकाल सकती। उस ज्वाला को, उस छोटे से प्रकोष्ठ में बन्द करने में जो आनन्द है वह खुली वायु के फैलाने में नहीं। वह हृदय का राग है, तड़प

की पुकार है, इसे वही समझ और अनुभव कर सकता है, जो इसकी ज्वाला में जला हो और अपने को इसके समर्थ बनाया हो।"

"तो क्या मैं इस गान से मतवाला नहीं हो सकता?"

"नहीं, कदापि नहीं, उसका सुनने वाला किसी अज्ञात स्थान में बैठा मेरे उस अमर गीत को सुन रहा होगा, जहाँ मृत्यु नहीं है, केवल सुख ही सुख है।"

उसके नेत्र डबडबा आये। मि० दत्त उसके कथन का भावार्थ न समझ सके। उन्होंने देखा कि मेघ-माला नेत्रों की पुतलियों से संघर्ष कर रही हैं, किन्तु वह विमोहित सी, मधुर और मोहक पुजारिन सी, समाधिस्थ सी बैठी थी। मि० दत्त ने बड़े प्रेम से कहा—

"ज्योत्स्ना, तुम्हें मैं चाहता हूँ।"

"मैं एक घातक हूँ, मैं उस ध्रुव-सत्य प्रेम से कोसों दूर हूँ जिसमें जीवन का कल्याण भरा है, हृदय की सत्य सत्ता अटल है और जहाँ करुणा का वरदान मिलता है।"

मि० दत्त ने अपना हाथ बढ़ाया परन्तु उसने घृणा से, वितृष्णा से अपना हाथ खींच लिया और म्लान सी हो गयी किसी अतीत की विस्मृति में, और मि० दत्त वेदनातुर-से उस परी-सी रुपसी को, उसकी करुणा भरी मादकता को पीने लगे—कुछ देर तक निस्तब्धता रही फिर ज्योत्स्ना मन्द हास्य से बोली—

मि० दत्त आप जीवन के मधुर-स्वप्न की कल्पना मात्र से झूमने लगते हैं परन्तु इसका स्वाद बड़ा ही कडुआ है।"

"मैं इसे एक खेल समझता हूँ।"

"हाँ, टेनिस के खेल की भाँति।"

दोनों खिलखिला कर हँस पड़े, नीरवता के बादल कट चरो

और इतने में एक नवयुवक फौजी ड्रेस में धड़धड़ाता हुआ कमरे में घुस आया। उसको देखते ही मि० दत्त के मुख पर क्रोध की आभा झलक उठी। वह उसकी निर्भीकता और असभ्यता पर कुछ कहना ही चाहते थे कि वह हँसता हुआ बोला—

"मिस ज्योत्स्ना, नमस्ते !"

ज्योत्स्ना उसके शब्दों से शरद की मल्लिका सी फूल गयी और हँसती हुई बोली—

"नमस्ते, आओ बैठो। इतने दिन कहाँ थे ?"

"क्या करूँ इधर उधर टेनिस के बॉल की तरह मारा मारा फिरता रहा। बड़े प्रयत्न से जब छुट्टी मिली तो तुम्हारे पास सीधे चला आया।

"अच्छा बताओ, क्या हाल चाल है ?" ज्योत्स्ना ने इठलाते हुए पूछा—

"पहले मुझे चाय पिलाओ, तब हाल चाल पूछना। मैं बहुत थका हूँ।"

ज्योत्स्ना सुनील पर एक कटाक्ष फेंकती हुई चाय लाने चली गयी। सुनील इस नये सज्जन को देखकर बड़े चक्कर में पड़ गया। वह सोचने लगा कि वहाँ मैंने एक पत्र ज्योत्स्ना को लिखा परन्तु उसने कोई उत्तर न दिया। वहाँ से इसके आये हुए भी कई महीने हो रहे हैं, इसका कुछ पता नहीं मिला। यह इस समय अकेले में इस सज्जन से बैठकर हँस २ कर बातें कर रही है। देखने में यो तो बड़े अपटूडेट मालूम पड़ते हैं और तभी तो ज्योत्स्ना के सामने टिक सके हैं। कदाचित ज्योत्स्ना का कोई नया प्रेमी हो, क्योंकि वह आधुनिक वातावरण का भी कान काटती है। ऐसे लोगों को प्रत्येक दिन नये २ मनुष्य दिल बहलाने के लिए चाहिए। आधुनिक सभ्यता का यही तो सबसे बड़ा उपहार है।

यह अभी अपने पति के घर पर भी नहीं गयी। उसी दिन ज्योत्स्ना ने कहा था कि अब मैं यहाँ नहीं मिलूँगी, इसका क्या कारण है? तब तो मेरा पत्र भी इसे न मिला होगा और यदि वकील साहब ने उस पत्र को पाया होगा तो वह ज्योत्स्ना के विषय में क्या सोचते होंगे?

यह सोचते सोचते वह उठ खड़ा हुआ और दीवाल पर टँगा हुआ ज्योत्स्ना का चित्र उतार कर इच्छा भरी आँखों से उसे देखने लगा।

मि० दत्त इस आगन्तुक का स्वच्छन्द व्यवहार देख कर बड़े असमंजस में पड़ गये। वे सोचने लगे—यह कौन है जो ज्योत्स्ना के साथ इतना स्वतन्त्र व्यवहार रखता है और ज्योत्स्ना भी अभी कुछ समय पूर्व प्रेम का स्वांग खड़ा कर रही थी। इसको देखते ही खिल उठी और उसके एक इशारे पर चाय लेने दौड़ गयी। अवश्य ही दोनों में कुछ प्रेम है नहीं तो आपस में इस प्रकार का व्यवहार नहीं हो सकता। परन्तु ज्योत्स्ना बड़ी गर्विणी है। उसे मृत्यु को हथेली पर लिए रहने वाले इस व्यक्ति के साथ उसका कैसे प्रेम हुआ। क्या इसका पता बाबू उमेशचन्द्र को न होगा? अवश्य होगा। वह इसे भलीभाँति जानते होंगे। तो इन्होंने हमारे साथ ज्योत्स्ना का सम्बन्ध निश्चय करने का क्यों विचार किया? ज्योत्स्ना भी मेरी ओर कुछ आकर्षित सी विदित होती है। तब यह कहाँ से आया? सम्भव हो सकता है कि यह उनका कोई सम्बन्धी हो, परन्तु दोनों की आपस की बातें बड़ी सन्देहात्मक हैं। मैं क्या करूँ? क्या ज्योत्स्ना ने अभी तक किसी से प्रेम नहीं किया है, तभी तो वह झिझक रही है परन्तु मैं क्या करूँ, मुझे तो कोई रास्ता ही नहीं दिखाई देता। ज्योत्स्ना मेरे नस नस में व्याप्त है, रक्त के एक एक कणों में दौड़ रही है। यह रूपसी

विचित्र है, पहेली की भाँति। इसी से तो बड़े २ लोग स्त्रियों के रहस्य को समझ नहीं पाते—

इतने में ज्योत्स्ना चाय लेकर आ पहुँची और बोली—

"यह क्या कर रहे हो! सुनील।"

"तुम्हारी तस्वीर देख रहा हूँ, तुम इसमें कितनी सुन्दर हो। आज की सुन्दरता तो इसके सामने फीकी लगती है। क्यों तुम्हें क्या हो रहा है?"

"तुम्हारी आँखों पर युद्ध का धुआँ छा गया है, इसीलिए तुम ऐसी बातें करते हो।

"अच्छा मेरी तस्वीर कहाँ रक्खी है?"

"अपने ड्राइंग रूम में टेबिल पर, खूब चमकीले फ्रेम में मढ़ कर।" सुनील अल्हड़ता की हँसी हँसते हुए चाय पीने बैठ गया। ज्योत्स्ना ने एक प्याला मि० दत्त के सामने भी बढ़ाया। पहले तो उन्होंने अस्वीकार करना चाहा—परन्तु ज्योत्स्ना का यह आग्रह था, टाल न सकते थे। उन्होंने भी चाय पीना आरम्भ किया। ज्योत्स्ना अभी चुपचाप बैठी थी कि सुनील बोला—

"तुम चाय क्यों नहीं पीती हो?

"पहले अतिथि का स्वागत करना चाहिए तब अपना।" सुनील ने हँसते हुए कहा—"अच्छा अब तुम मुझे अतिथि समझने लगी?"

"नहीं सुनील, तुम अप्रसन्न न हो, मैं तुम्हें अभी भी उसी रूप में देखती हूँ। परन्तु मेरे व्यवहारों में कुछ अन्तर अवश्य आ गया है, क्या करूँ भारतीय आदर्शवाद को ठुकरा कर अधिक दिन मर्यादापूर्वक नहीं रह सकती।

"इसका क्या तात्पर्य है?"

"यही कि अब वह नशा धीरे धीरे समय के कुचक्र से

उतरता आ रहा है और उसी के फलस्वरूप यह परिवर्तन तुम देख रहे हो।"

"तो क्या तुम अपने को एक गृहस्थ स्त्री के रूप में अब देख रही हो जिसे कुल की मर्यादा प्राप्त होती है।

"अभी नहीं सुनील। मैं उस स्थान पर जिस दिन पहुँच जाऊँगी उस दिन अपने को धन्य समझूँगी।" उसके शब्दों में निराशा थी।

"अच्छी बात है ज्योत्स्ना। मैं तुम्हारे उस सफलता की हृदय से कामना करता हूँ" सुनील के मुख पर एक म्लानता थी।

इतने में उमेशचन्द्र कमरे में आये। उन्हें देखते ही सुनील ने झुक कर अभिवादन किया। सुनील को उस फौजी वेश में देख कर उमेशचन्द्र हँस पड़े और बोले—

"अच्छा, अब तो तुम पूरे फौजी हो गये। तुम्हें यह ड्रेस तो बड़ा सूट करता है।

सुनील हँस कर रह गया।

"इतने दिन तक कहाँ रहे, ज्योत्स्ना घबराती थी?"

"क्या करूँ, लाचार था नहीं तो आपके दर्शन अवश्य करता रहता। ज्योत्स्ना देवी तो मुझे एकदम भूल सी गयी थीं।"

तुम्हें सभी इस पोशाक में देखकर भूल जायेंगे।

इस पर सभी एकाएक हँस पड़े। थोड़ी ही देर बाद सुनील ने कहा—

"ज्योत्स्ना! मैं सिनेमा जा रहा हूँ। क्या तुम भी चलोगी?

"भला तुम्हारा आग्रह कौन टाल सकता है। हँसती हुई ज्योत्स्ना चलने के लिए उठ खड़ी हुई। उमेश बाबू ने भी इसमें आनाकानी न की। सुनील, ज्योत्स्ना को साथ लिए चला गया और मि० दत्त पराजित विद्रोही की भाँति उन्हें देख रहे थे।

उनके चले जाने पर उमेश बाबू ने एक ठंढी आह ली और मि० दत्त से बोले—

"कहिए, ज्योत्स्ना आप से कुछ कहती थी।"

"नहीं तो, वह तो उसी आदमी से बातें करने में लगी थी।"

"वह उसका क्लासफेलो है और बहुत दिनों के बाद आया है। आजकल वह फौज में कैप्टेन है।

"जी हाँ ! और देखने में भी अच्छा जवान मालूम पड़ता है।

"वह स्वभाव से भी बड़ा अल्हड़ और चंचल है। ज्योत्स्ना से उसकी खूब पटती थी।"

"यह तो व्यवहार ही से मालूम होता है।"

उमेश बाबू ने देखा कि मि० दत्त कुछ निराश हो रहे हैं क्योंकि जिस ज्योत्स्ना के लिए उन्होंने मि० दत्त को एक अवसर दिया था उसमें ज्योत्स्ना उनसे दूर रहना चाहती है। यह जान कर उन्हें बड़ा दुख हुआ कि जिस पुत्री के लिए मैं अपनी मर्यादा को लुटा रहा हूँ उससे वह दूर भाग कर पता नहीं किस अन्तर्ज्वाला में कूदने जा रही है। इसका जीवन परिवर्तित हो रहा है, क्षण क्षण और पल पल में। मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ और किस प्रकार सन्तप्त हृदय को शान्ति दूँ। इन्हीं विचारों में पड़े वह कुछ सोच ही रहे थे कि मि० दत्त ने पूछा—

"आप ज्योत्स्ना को अपने अधिकार में नहीं रख सकते ?"

"यही एक दुर्बलता है, मैं उसके ऊपर न शासन कर सकता हूँ और न किसी को उसपर शासन करने दूँगा।"

"तब तो वह किसी के अधिकार में नहीं रहेगी।"

"नहीं ऐसा नहीं हो सकता। यद्यपि वह अपने विचारों से स्वतन्त्र है फिर भी वह मनुष्य के हृदय को पहचानती है।"

"मि० दत्त चुप हो रहे और उठकर जाना हीं चाहते थे कि उमेश बाबू ने कहा—आप निराश न हों मि० दत्त, आपके लिए मैं तैयार हूँ।

उनके मुख पर एक हँसी आ गयी और वे चलते हुए बोले—

"कल आपको और ज्योत्स्ना को अपने यहाँ निमन्त्रित करता हूँ।"

"सहर्ष स्वीकार है।" मि० दत्त की उदासी दूर करने के लिए उमेश बाबू ने निमन्त्रण को स्वीकार कर लिया और चुपचाप अपने बगीचे में टहलने लगे। मि० दत्त के चले जाने पर उमेश बाबू ने सोचा—ज्योत्स्ना मि० दत्त से दूर रहना चाहती है। मैं तो चाहता हूँ कि दोनों का सम्बन्ध स्थायी हो जाय। मि० दत्त मेरी आकांक्षाओं का एक आलम्ब बन रहे हैं परन्तु ज्योत्स्ना मेरी एकमात्र ज्योत्स्ना क्या चाहती है? किस सुधा से अपनी हृदय पिपासा शान्त करना चाहती है, किस चन्द्र की ज्योत्स्ना बनना चाहती है। मैं उसे सुखी देखना चाहता हूँ परन्तु इधर जब से वह कृष्णमुरारी के यहाँ से आयी तब से उसके जीवन में एक परिवर्तन देख रहा हूँ। उस दुष्ट के पास नोटिस भी दी परन्तु उसका कोई उत्तर नहीं आया। अब की उसके नाम वारण्ट निकालूँगा और उसको जेल की मोटी चहार दीवारी में बन्द कर उसका गर्व तोड़ूँगा। उसने मेरी एकमात्र आशा पर बज्र गिराया है... ...ज्योत्स्ना तुम्हारे लिए क्या करूँ? उनकी विचार धारा रुक गयी और नेत्रों में आँसू आ गये।

इधर सुनील, ज्योत्स्ना को लिए नगर के प्रशस्त पथ पर मदमत्त हाथी के समान झूमता जा रहा था। उसके रूप को देखकर पथ पर जाते हुए लोग उसकी ओर लोलुप नेत्रों से देखते थे। ज्योत्स्ना भी उसके साथ जाने में एक गर्व का अनु-

भव कर रही थी। बंगले से कुछ दूर निकल जाने पर सुनील ने पूछा—

"ये नये साहब कौन थे ?

"उनका नाम मि० एन० दत्त है। ये अभी ही मजिस्ट्रेट होकर आये हैं। पिताजी से इनका कुछ अधिक सम्पर्क है।"

"तभी तो पूरे जेन्टिल-मैन मालूम पड़ते थे। मगर हमारी ओर बड़े गौर से देख रहे थे ?"

"इसी तरह देखते रहे होंगे, तुम्हें सभी गौर से देखा करता है।" सुनील हँसते हुए बोला—

"अच्छा यह बताओ कि तुम लाहौर से चली क्यों आयी ? मैंने तुम्हारे पास वहीं के पते से एक पत्र भी भेजा था, क्या वह तुमको मिला ?"

"नहीं तो।"

"क्यों ?"

"मैं तो यहाँ चली आयी।"

"तो क्या तुम वकील साहब से असन्तुष्ट हो ?"

"नहीं वेही असन्तुष्ट हैं।"

"ऐसा विवाह ही क्यों किया जिससे तुम या वह असन्तुष्ट रहें।"

"यह मेरे अधिकार की बात नहीं थी। यह सब तो पिताजी ने किया।"

"तब तुम अपना दूसरा विवाह कर लो।"

"किस आसार पर.........।"

"पाश्चात्य ढंग पर, जैसा योरप में बहुधा हुआ करता है।"

"परन्तु पश्चिम का समाज हमसे पूर्णतया भिन्न है। वहाँ का विवाह वासनामय है, जो क्षणिक आवेश के सिद्धि के लिए होते

हैं। उसका परिणाम भी "तलाक" के रूपमें भयंकर हो जाता है।"

"ठीक है परन्तु भारत में भी मनोनुकूल स्त्री या पुरुष न मिलने के कारण जिनका जीवन भ्रष्ट हो रहा है उनके लिए क्या दवा है ?"

"इस प्रतिकार के लिए सब से अच्छा रूप यही है कि स्त्रियाँ इतनी सीमा तक शिक्षित की जाँय, जहाँ से वे अपने भविष्य का रूप ठीक ठीक निर्धारित कर सकें। लड़कों और लड़कियों दोनों को एक दूसरे के चरित्र बतलायें जाँय और इसपर अगर दोनों की सम्मति हो तो विवाह हो अन्यथा इसकी आवश्यकता नहीं।"

"परन्तु यह तो बड़ा ही दुस्तर कार्य है।"

"इसका फल भविष्य के लिए अच्छा है। प्राचीन समय में ऐसा होता था जब स्त्री पुरुष दोनों स्वतन्त्र और शिक्षित होते थे, परन्तु जब से स्त्री-शिक्षा बन्द हुई तभी से अनमेल विवाह का रूप खड़ा हुआ। पश्चिम का 'तलाक' यहाँ पाप से भी बढ़कर समझा जाता है।"

"तुम तो पूरी सुधारक बनती जा रही हो, ज्योत्स्ना! जब इतनी बातें तुम्हारे मस्तिष्क में घूम रही थीं तब तो तुम्हें अपना विवाह स्वभाव के अनुकूल करना था।"

"तब यह मालूम हुआ है जब मेरे वैवाहिक सुख ने मुझे कसकर ठोकर लगायी। अब इस भाग्य में विवाह का सुख नहीं बदा है।" उसका गला भर आया।

"तो क्या तुम इसी भाँति अपना जीवन बिता दोगी ? लोग तुम्हारे नाम पर कलंक लगायेंगे, हिन्दू समाज में पैदा होकर उसके अभिशाप की मुक्ति का एक ही रूप विवाह है।"

"इसके लिए मैं अपना कर्त्तव्य छोड़ दूँ, अपनी अन्तरात्मा से उठती ज्वाला को शान्त कर दूं ? यह कैसे हो सकता है ?

एक दिन ऐसा समय आयेगा जब सभी सामाजिक रूढ़ियाँ स्वयं ही टूट जायेंगी और स्त्रियाँ भी अपने सम्मान और मर्यादा के लिए प्राणों का सौदा करेंगी।"

"क्या तुम वकील साहब के यहाँ रहना अब पसन्द न करोगी? जिस समाज की धाँधली को तुम बुरा भला कह रही हो उसी को गले लगाने जा रही हो। तिसपर पिता की आज्ञा का उल्लंघन... ......। कितना बुरा विचार है।

"तो तुम क्या चाहते हो, सुनील?"

"मैं तुम्हें सुहागिन होकर विरागिन नहीं देखना चाहता, तुम ने जिस धन को पाया है उसकी रक्षा करना तुम्हारे हाथ में है। यदि तुमको उस जीवन से घृणा है तो फिर दूसरे पथ पर चलना ही एक पाप है, एक लोभ है।"

"मैं तो उस पथ से अवश्य एक बार विचलित हो गयी हूँ और उसके प्रतिकार स्वरूप कंटकाकीर्ण पथों पर अटक २ कर चल रही हूँ। मेरे सारे ही स्वप्नों पर कालिमा की सघन छाया है। मैं इस समय स्वयं अपना निर्दिष्ट पथ विचारने में भूली हूँ, क्या करूँ? कहाँ जाऊँ? तिस पर भी पिता का अनुरोध......।" आवेग भरे कंठ से उसने कहा।

"दुखित न होओ ज्योत्स्ना, तुम्हारे लिए अब भी अवसर है, तुम संसार की छलमाया से परिचित हो, यदि अब पुनः भूलकर तुमने अपने को गर्व के शिखर पर चढ़ाया, यौवन के उछलते ज्वार में बहना आरम्भ किया तो पतन अवश्य है। स्त्री का पद महान है, वह पूज्य है केवल अपने चरित्र और लज्जा के कारण। एक को छोड़कर दूसरे की क्षणिक लालसा पर अपने गौरव का बलिदान कर देना ही आत्मा का घोर पतन है।"

ज्योत्स्ना समझ गयी कि सुनील भी मेरे इस विचार से बड़ा

दुखी है और उसे यह भी विदित हो रहा है कि मेरा सम्बन्ध मि० दत्त से होने वाला है परन्तु मैं क्या करूँ ? अपमान और प्रताड़ना की गठरी लाद कर कहाँ २ फिरूँ, पिता के आज्ञा की अवहेलना एक ओर है और उसके ठीक विपरीत जीवन का नग्न चित्र। मि० दत्त हमारी रूप ज्वाला का शलभ बनाना चाहते हैं। यदि उन्हें मेरा पूरा परिचय मिला तब मैं तो कहीं की न रहूँगी।

उसके सामने जीवन का चित्र, चित्रपट की भाँति घूमने लगा, उसके मुख पर कातरता का आतंक छा गया। सुनील अब चुप था और किसी विचार में मग्न था।

इसी बीच में एक टाँगा उनके सामने से निकल गया। उस पर एक युवती बैठी थी। युवती की दृष्टि जब इन लोगों पर पड़ी तो वह चौंक पड़ी और घूम घूम कर देखने लगी। जब उसे पूरा विश्वास हो गया कि यह ज्योत्स्ना ही है तब ताँगे से उतर कर उनके पीछे पीछे चलने लगी। उसने देखा कि ज्योत्स्ना के साथ एक बड़ा ही सुन्दर फौजी युवक जा रहा है। उसने उसे कई बार देखा परन्तु पहचान न सकी। ज्योत्स्ना को एक अपरिचित युवक के साथ देखकर उसका माथा ठनका। वह विचारने लगी—यही तो वकील साहब की पत्नी हैं, यह यहाँ पर आराम से घूम रही हैं और उनका पता ही नहीं है। यह फौजी आदमी कौन है, जिसके साथ यह निसंकोच भाव से घूम रही हैं। क्या इन्हें पता नहीं है कि इनके पति महीनों से लापता है ? अवश्य पता होगा। उनपर मानहानि का मुकदमा तो इन्हीं देवीजी के पिता ने चलाया है। मुझे पहले तो विश्वास न होता था परन्तु उनकी रूप रेखा और स्वतन्त्र मनोवृत्ति का ध्यान कर इनकी सभी बातें स्पष्ट विदित हो जाती हैं। यह एक आधुनिक

शिक्षित महिला है और इसी से डाल डाल और पात पात घूम रही हैं। उस दिन के परिचय से ही हमने निष्कर्ष निकाला था कि इनका प्रेम वकील साहब के प्रति नहीं के बराबर है। कहाँ उनका सन्तोषपूर्ण जीवन और कहाँ आधुनिक सभ्यता की धधकती ज्वाला को छिपाये आज कल की नारी। तभी तो यह दूसरे पुरुष के साथ विचर रही हैं। ओह, पति-प्रेम को ठुकरा कर धन के मद में उस स्वर्ग-पद की अवहेलना, जीवन के क्षणिक सुखों के लिए, करना ही स्त्री जाति के लिए पतन की घोर पराकाष्ठा है। जगत की करुणा का बलिदान कर अपने सुख की पूर्ति ही नीचता है। पति के ऊपर मानहानि का अपराध लगाना ही ज्योत्स्ना के कलुषित हृदय का सबसे बड़ा प्रमाण है। सम्भव है कि उसका प्रेम इसी नवयुवक से हो और उनसे अपना सम्बन्ध विच्छेद करने के लिए उसने षड्यन्त्र की रचना की हो परन्तु वकील साहब तो ज्योत्स्ना को बहुत चाहते थे और उसके अलग हो जाने पर उन्हें कहीं जाना पड़ा। कुछ समझ में नहीं आता कि इसमें क्या रहस्य है? मैं एक बार ज्योत्स्ना से अवश्य मिलूँगी और सभी बातें साफ २ पूछूँगी।

वह इन्हीं भावों में उलझती उसके पीछे चली जा रही थी। जब वे लोग सिनेमा में चले गये तो वह हताश सी होकर वापस चली आयी। यह अलका थी।

× × × ×

१४

मानव जीवन में सुख की कल्पना एक छलमय स्वप्न है, जिसके आकर्षण के वशीभूत होकर मनुष्य कठिन से कठिन कार्य करने के लिए प्रस्तुत रहता है। संसार का प्रत्येक प्राणी इसी चक्र में पड़ा रहता है परन्तु उसे सुख प्राप्त नहीं होता। यह मृग मरीचिका है, कल्पनाओं की मधुर व्यञ्जना है, इच्छाओं का सागर है जिसमें उत्साह, उन्माद आदि हैं पर संतोष नहीं......। इस विश्व रंगमंच पर अभिनय करने वाले प्राणियों को सुख कहाँ? उन्हें तो जीवन के संघर्षों से टक्कर लेना है, काँटों से भरे हुए मार्ग पर चलना है। कर्मशील जगत में सुख की छाया तक नहीं है। जो जितना ही सुख की इच्छाओं से अपने को सन्तुष्ट करना चाहता है वह उतने ही भयंकर संघर्षों का सामना करता है और उससे उत्पन्न असन्तोष की ज्वाला में जलता रहता है।

बाबू उमेशचन्द्र को केवल एक ही चिन्ता थी कि वह ज्योत्स्ना को सुख के पलनों से झूलते हुए देखें। वह उसके सुख की औषधियाँ प्रस्तुत करते परन्तु उन्हें उसके रोग का पता नहीं था। वह ज्योत्स्ना के रोग का निरूपण न कर सकते थे और न उसके हृदय के भावों को समझ सकते थे, केवल अनुमान से उसके सुख की कल्पना कर लिया करते थे। उन्हें यही विश्वास था कि ज्योत्स्ना अपने प्रथम वैवाहिक जीवन से दुखी है, और भूल कर भी उस जीवन में पदार्पण नहीं करना चाहती। धीरे धीरे इनका विचार और दृढ़ होता गया—अनुमान की अन्तिम अवस्था विश्वास के रूप में बदल जाती है।

जब उनकी धारणा दृढ़ हो गयी तब उन्होंने ज्योत्स्ना के लिए एक नया मार्ग निकाला। वह मि० दत्त से ज्योत्स्ना का दूसरा विवाह करने पर प्रस्तुत हो गये। उनका अनुमान था कि ज्योत्स्ना, उनके बिलकुल अनुकूल होगी, क्योंकि उनके आचार विचारों पर पश्चिमी मुहर है। उमेश बाबू तो कभी इंग्लैंड नहीं गये थे परन्तु वहाँ से लौटे हुए व्यक्ति को वह देवता से कम न समझते थे। मि० दत्त ने भी उमेश बाबू पर वह प्रभाव डाला था कि वह उनकी हर एक बातों में एक नवीनता देखते और उनकी प्रशंसा करने से न चूकते थे।

दूसरे दिन ठीक चार बजे उमेश बाबू ने ज्योत्स्ना को बुलाकर कहा—

आज मि० दत्त के यहाँ हम लोगों की दावत है। उन्होंने तुम्हें भी बुलाया है।

"मेरा क्या वहाँ जाना ठीक होगा ?"

"क्यों ? क्या तुम मेरे साथ कहीं नहीं गई हो ?"

"परन्तु मैं जाना ठीक नहीं समझती।"

"तुम्हें तो लोक व्यवहार में अत्यन्त कुशल होना चाहिए, सबसे मिलना जुलना चाहिए, न कि उससे उदास होना चाहिए। मनुष्य जीवन में लोक व्यवहार भी एक शिक्षा है जिसमें सभी पारंगत नहीं होते।"

"यह तो ठीक है, परन्तु मैं.........।"

"देखता हूँ कि तुम मेरी बात भी अब नहीं मानती। मैं तुम्हारे लिए इतना व्याकुल रहता हूँ और तुम्हारा ध्यान पता नहीं कहाँ घूमा करता है। मि० दत्त इतने योग्य और शिक्षित आदमी हैं कि एक बार जिससे उनका सामना हो जाता है, वह उनके

व्यवहारों से प्रसन्न होकर उनकी ओर आकृष्ट हो जाता है। पश्चिमी शिक्षा का उनपर भरपूर प्रभाव पड़ा है।"

"हाँ, खूब अच्छी तरह पड़ा है, यह तो मैं भी जानती हूँ।" स्वर में व्यंग था।

ज्योत्स्ना पिता का अनुरोध न टाल सकी। इच्छा न रहते हुए भी उसने कहा—"अच्छी बात है मैं आपके साथ चली चलूँगी।"

उमेश बाबू प्रसन्नता से उछल पड़े और हँसकर बोले—

"जवानों को बुड्ढों की बातें बड़ी बुरी लगती हैं।"

ज्योत्स्ना के मुख पर एक लज्जा दौड़ गयी। थोड़ी ही देर में वह सजधज कर अपने पिता के साथ मि० दत्त के बंगले की ओर चल पड़ी। मि० दत्त बड़ी देर तक इनकी अगवानी में अपने फाटक पर खड़े थे परन्तु इनलोगों का दर्शन न होता था। उनकी उत्सुकता बढ़ती जाती थी और उसके साथ साथ व्याकुलता भी। वह कभी अन्दर जाते, कभी नौकरों को झिड़कते और कभी हरी २ घास पर टहलने लगते। उनके मन में विचार उठते—

क्या उमेश बाबू भी नहीं आयेंगे? मैंने उनसे ज्योत्स्ना के साथ आने के लिए विशेष आग्रह किया है। सम्भव है कि ज्योत्स्ना उसी सुनील के साथ कहीं चली गयी हो और उमेश बाबू भी अकेले समझ कर न आयें परन्तु ऐसा नहीं हो सकता। चाहे ज्योत्स्ना न आये उमेश बाबू अवश्य आयेंगे। उनके ऊपर हमारा प्रभाव है, मैंने उनके ऊपर वह जादू की लकड़ी घुमायी है जिससे वह हमारी बातों का उल्लंघन नहीं कर सकते। ज्योत्स्ना यदि आज न आयी तो मैं समझ लूँगा कि वह मुझसे घृणा करती है और उमेश बाबू भी व्यर्थ मुझे एक भूलभुलैया में डाले हुए हैं। उस गर्विणी ज्योत्स्ना का गर्व मैं चूर चूर कर दूँगा।

और दिखला दूँगा कि जिस काम में हाथ लगाता हूँ वह अवश्य पूरा कर लेता हूँ। उसे अपने रूप और यौवन का गर्व है। वह फौजी छोकरा—सुनील, ज्योत्स्ना पर आतंक जमाये और उसे जब चाहे तभी लेकर घूमने चल दे और मैं.........। आज ही इसका पता लगेगा। मैं किसी से डरता नहीं और न मृत्यु की परवाह करता हूँ। मैं ज्योत्स्ना को अपनी स्त्री बनाऊँगा, वह मेरे लिए एक वरदान होकर आयी है। उसने मेरे हृदय में आकर्षण पैदा किया है। उसने मुझमें एक प्रेरणा पैदा की है।

वह इसी विचार में थे कि सामने से उमेश बाबू, ज्योत्स्ना सहित आते दिखाई पड़े। मि० दत्त का हृदय मारे आनन्द के नाचने लगा। उन्होंने एक बार अपने चमकते हुए वस्त्रों को देखा और फिर बड़े गर्व से टहलने लगे। वे आज अपने को बड़े भाग्यशाली समझ रहे थे क्योंकि ज्योत्स्ना, चट्टान से भी कड़ी और मोम से भी कोमल, अपने हृदय में स्थिर होकर आ रही थी। उसमें यौवन की मस्ती थी तराजू के पलरों की भाँति झूमते हुए भी स्थिर। गति में चंचलता, परन्तु पग में शिथिलता थी। वह आ रही थी एक व्यक्ति के यहाँ जो उसका भ्रमर था। परन्तु वह चम्पा थी। वह उसके रूप पर दीवाना था, यह उसके दीवानेपन को, एक पागलपन समझती थी, वह इसकी पूजा करता था और यह उसकी अवहेलना, वह उसके दर्शन के लिए व्याकुल होता था तो यह अन्यमनस्क, एक में प्रतीक्षा तो दूसरे में उपेक्षा थी.........।

वह अपने पिता के साथ आयी। मि० दत्त ने दोनों का बड़े सम्मान सहित अभिवादन किया और हाथ मिलाने पर बोले—

"मैं आप लोगों की बड़ी देर से प्रतीक्षा कर रहा था।"

"क्षमा करें, हम लोगों को आने में देर हुई" उमेश बाबू ने कहा।

"मुझे आज बड़ी खुशी है कि ज्योत्स्ना ने मेरा घर पवित्र किया है।"

"इसपर कोई कुछ बोल न सका। उमेश बाबू हँसकर रह गये और ज्योत्स्ना जलभुन कर। थोड़ी ही देर में उनलोगों के सामने प्लेटों के ढेर लग गये।

"आप लोग आरम्भ कीजिये।" मि० दत्त ने कहा—

"आप भी आइये, भला आपके साथ के बिना कभी हमलोगों का सम्मान पूरा होगा।"

मि० दत्त भी सकुचाते हुए बैठ गये। ज्योत्स्ना अब भी चुपचाप बैठी थी। वह अपना हाथ ही न बढ़ाती थी। मि० दत्त ने कहा—"

"आप क्यों शान्त हैं, आप भी कुछ आरम्भ कीजिये।"

वह इधर उधर देखने लगी परन्तु जब उमेश बाबू ने पुनः दुहराया तो वह धीरे धीरे चाय पीने लगी परन्तु हतोत्साही की भाँति, पराजित की भाँति.........।

"क्यों मिस ज्योत्स्ना, आप कुछ अप्रसन्न-सी हैं? क्योंकि आप मुझसे नहीं बोलतीं।"

"यदि मौन रहना किसी के प्रति अप्रसन्नता का सूचक है तो परमात्मा की इस वस्तु का सम्मान नहीं। सभी को शान्त रहना चाहिए।"

"मैं तो चाहता हूँ कि सभी लोग स्वतन्त्र, स्वच्छन्द और प्रसन्न रहें। इस दो चार दिन के संसार में मुँह फुला कर रहना भी क्या कोई अच्छी बात है?"

"उच्छृङ्खलता ही आत्मा की क्षुद्रता का सूचक है, गम्भीरता

में गौरव की गरिमा है। संसार के क्षणिक जीवन का भी कुछ महत्त्व है, केवल बाहरी तड़क भड़क, उछल कूद से ही जीवन का अस्तित्व समाप्त नहीं हो जाता।"

"आजकल फिलासफी व्यर्थ सिद्ध हो रही है। जीवन में केवल आनन्द है, इसलिए प्रत्येक प्राणी को इसका आनन्द लेना चाहिए।"

"सहानुभूति और प्रेम की आड़ में लोग इसी आनन्द का पाखंड रचते हैं और भोलीभाली दुनियाँ को धोखा देते हैं। मनुष्य अपने छल, बल, कौशल सभी से अपनी स्वार्थ-सिद्धि चाहता है।"

"क्या स्त्रियों में यह मात्रा नहीं?"

"क्यों नहीं! पर उसका कारण भी पुरुष जाति है।"

उमेश बाबू इसपर हँस पड़े और बोले—

"क्यों ज्योत्स्ना यह सब झगड़ा कहाँ से सीख आई।"

वह लज्जित हो गयी और मि० दत्त भी हँसते हुए चाय पीने लगे।

इतने में नौकर ने तीन तश्तरियाँ लाकर टेबुल पर रख दीं। उमेश बाबू ने उसे संदिग्ध नेत्रों से देखकर पूछा—

"इसमें क्या है मि० दत्त?"

"देवी का प्रसाद है।"

"मैं समझ न सका।"

"यह मांस है।"

ज्योत्स्ना वहीं रुक गयी और खाना बन्द कर दिया। उसके मुख पर घृणा का भाव छा गया। वह चुपचाप बैठ गयी। मि० दत्त ने कहा—

"क्या आप मांस नहीं खातीं? यह तो प्रसाद है।"

"मैं इससे घृणा करती हूं।"

"क्यों! यह तो खाने की वस्तु है, सभी खाते हैं।"

"परन्तु मैं इसे छूना भी पाप समझती हूँ। ओह! पता नहीं किस कोमल जीव की हत्या कर यह पाखंडी संसार उसे देवी का प्रसाद कहता है, और अपने पेट की साधना तृप्त करता है। निर्बलों को सबल सर्वदा अपना भोजन समझते हैं।"

"यह कैसे.........।"

"जंगल में दहाड़ते शेर को कोई नहीं खायेगा, मदोन्मत्त गज का प्रसाद नहीं बनेगा। बस कोमल जीवों पर प्रहार कर उसी का प्रसाद बनाया जा सकता है। जीव होकर जीव के मांस भक्षण करने की कल्पना ही क्रूरता है और घृणात्मक वृत्तियों का प्रतीक है।"

"तब तो आप आज की सभ्यता में पल नहीं सकतीं।"

"मैं ऐसी सभ्यता को लात मारती हूँ, जिसमें न्याय का विधान न हो, निर्बल सबलों का आहार बनें, और उनके पीछे देवी देवताओं के गौरव का पाखंड रचा जाय। मांस खाना पशु-वृत्ति है। मनुष्य का जीवन उस जीवन से श्रेष्ठ है केवल इसीलिए कि उसमें बुद्धि का विकास है और इसमें कुछ भी नहीं। वह अपने लोक परलोक, अच्छा बुरा, सुख दुख सभी का परिणाम सोच सकता है परन्तु पशु नहीं। उसके सामने क्षणिक जीवन में संसार का विशाल कर्मक्षेत्र पड़ा है और उसके सामने किसी भाँति उदर-पोषण।

"यदि ऐसा ही सभी सोच लें तो संसार का काम ही रुक जाय।"

"इसीलिए तो संसार में भले आदमी खोजने से ही मिलते हैं। बाहरी रंग रूप में तो नाग छिपा रहता है, जिसके काट लेने

से लहर तक नहीं आती। इस देश में भोजन की प्रचुर व्यवस्था है, उसपर भी मांस खाना जान बूझकर शान्त प्रकृति को क्रूर और निर्बल बनाना है।

ज्योत्स्ना के सामने उस निर्बल पशु का चित्र खिंच गया। हरी २ घास पर शैशव की चपलता में उछलता हुए कोमल बच्चे के सुन्दर स्वप्नों पर काल का वज्रपात। देवी के मन्दिर में बँधा हुआ अब भी वह सतृष्ण नेत्रों से देवी के भक्तों की ओर देख रहा है। प्रातःकाल कल्याण की बेला में अकल्याण की साधना हो रही थी। ईर्ष्या, भयंकर नृशंसता। हृदय काँप उठा उस मूक और भोले भाले प्राणी की ओर देखकर। पशुता, मानव पशुता प्रदीप्त हो उठी, दावाग्नि की भाँति, रक्त पिपासा का प्रसाद लेकर। खड्ग उठा, चमकता हुआ लोहा कोमल मांस पर प्रलयङ्कर आक्रमण करने के लिए। हवा की छाती को चीरता हुआ, खड्ग उस पशु के गर्दन पर आ गिरा और उसका शरीर द्विखंडित हो भूमि पर लोटने लगा, रक्त धारा छलक उठी और नर पशुओं के लिए यह प्रसाद तैयार हो गया—उसके नेत्र विस्फारित हो गये विस्मय से, विषाद से। उसके चारों ओर केवल रक्त की लालिमा चमक उठी और उसके नेत्रों में छटपटाता हुआ रक्तरञ्जित मुंड......। वह काँप उठी, उसे मालूम हुआ उसके चारों ओर ऐसे ही नर-पिशाच घूम रहे हैं।

वह सिहर उठी और घबड़ा कर उठने लगी। मि० दत्त ने कहा—

"बैठिये,, अभी जल्दी क्या है ?

"नहीं मेरी तबियत ठीक नहीं है, मैं तो केवल आपके आग्रह से चली आयी थी।"

उन्होंने कातरता से उमेश बाबू से पूछा—

"मिस ज्योत्स्ना कुछ दुखित हो गयी हैं।"

"नहीं नहीं, उसकी तबियत आज ठीक नहीं है ?

मि० दत्त भी उनका साथ देने के लिए अपनी कार पर आ बैठे और स्वयं चलाने लगे। उन्होंने कहा—

आज आप लोगों को मैं सन्तुष्ट न कर सका, इसका मुझे दुख है।

"वाह, आप भी कैसी बातें करते हैं। भला आपसे हमलोग असन्तुष्ट क्यों होंगे। आप तो जितना हमलोगों का ध्यान रखते हैं उतना और कोई क्या रखेगा।"

मि० दत्त ने कृतज्ञता के भार से अपना मस्तक नीचा कर लिया। थोड़ी देर में कार उमेश बाबू के बंगले पर रुकी और सभी लोग उतर पड़े। ज्योत्स्ना ने यहाँ सन्तोष की एक साँस ली। क्योंकि उसे मि० दत्त के बंगले में ऐसा लग रहा था, मानों कोई उसका गला घोंट रहा है। वह धीरे धीरे आयी और अपना जी बहलाने के लिए पियानों बजाने लगी। मि० दत्त भी उसके पास आकर बैठ गये। उमेश बाबू अपने एक मित्र के यहाँ चले गये। ज्योत्स्ना को मि० दत्त का बैठना बड़ा ही बुरा लग रहा था। अब उसको उनसे आन्तरिक घृणा हो रही थी और वह यह भी नहीं चाहती थी कि मि० दत्त उसके साथ निसंकोच बर्ताव किया करें। परिचय से अवज्ञा होती है, इसका ध्यान कर वह चुपचाप रह गयी। उसको गाने की इच्छा थी। उसका हृदय किसी अज्ञात रुदन के लिए तड़प रहा था। उसका गला भर आया, नेत्रों में आँसू आ गये। उसे ऐसा विदित हुआ कि उसके सामने कोई व्याघ्र अहेर पर दृष्टि लगाये बैठा है। वह तिलमिलाने लगी और सोचने लगी कि कौन सा उपाय करूँ कि ये यहाँ से हटें। परन्तु वह तो बैठे स्वर्ग की अप्सरा की तान सुन रहे थे। इतने में उन्होंने कहा—

"गाइये, खुलकर गाइये, मैं भी सुन सकूँ।"

"मेरे गाने में ही रोना है, उसको सुनकर आप क्या करेंगे।"

"गाने में तो कोई रोता नहीं, गाना आनन्द की वस्तु है।"

"नहीं, वह हृदय की वस्तु है, रुदनपूर्ण गाने में जो सफलता है वह आनन्द में नहीं, वियोग की प्रतीक्षा में जो आनन्द है वह मिलने में नहीं। मेरा हृदय रो रहा है परन्तु वह मुख से गाने के रूप में निकलेगा, जिसमें एक तड़प होगी, सिहरन होगी, कसक और वेदना होगी। उसी आनन्द में मैं पागल होकर झूमूँगी।"

मि० दत्त उसकी बातों से मतवाले के समान हो गये और इच्छा भरे नेत्रों से उसे देखने लगे। ज्योत्स्ना, वियोग की ज्वाला में जली ज्योत्स्ना अब अपने को न सम्भाल सकी और संगीत की स्वर-लहरी में कोकिल की भाँति कूक उठी, मतवाली होकर दिवानी होकर। उसका कंठ वायु में कम्पन उत्पन्न करने लगा और वह स्वयं किसी तरंग में आत्मविभोर हो बहने लगी। हृदय की सच्ची अनुभूति होने के कारण उसका स्वर वेदना के करुण गान गाने लगा। मि० दत्त को आज एक नयी वस्तु मिली, उन्हें संसार का एक अनुभव हुआ। स्त्री-हृदय जगत की सबसे बड़ी वस्तु है। उनके नेत्रों में ज्योत्स्ना का जितना सम्मान था, वह और भी बढ़ चला, वायु की अनुकूल गति पाते ही पतंग की भाँति। संगीत की मूर्छना वियोग की गति से दौड़ने लगी और उसमें एक सजीवता पैदा हो गयी। दोनों एक दूसरे को भूल गये। ज्योत्स्ना हृदय खोलकर गाने लगी और मि० दत्त हृदय खोलकर उसे सुनने लगे। आपस की ईर्ष्या, द्वेष का पता न था। संगीत एक सच्ची माया है जो सभी को लुभा लेती है।

ज्योत्स्ना का कोकिल कंठ दूर तक शान्ति की निस्तब्धता में गूँजने लगा और स्वर-लहरी वायु के वेगों को थपथपाने लगी।

उसी समय सुनील आया। दूर ही से ज्योत्स्ना का स्वर सुन पड़ा एक हृदय की पीड़ा लिए, वियोग की तड़प लिए। वह भी मचल पड़ा उसकी तान भरपूर सुनने के लिए और लम्बे २ डग बढ़ाने आरम्भ कर दिये। परन्तु जब उसकी दृष्टि कमरे के शीशे पर पड़ी तो वह अवाक हो गया। उसने झाँक कर देखा कि मि० दत्त आराम से लेटे हुए ज्योत्स्ना को लोलुप दृष्टि से देख रहे हैं और वह भी दीवानी होकर किसी को पुकार रही है। एक बार उसका माथा ठनका, क्रोध आया कि चल कर अभी उसको कुछ सुना दे। पति के प्रेम को ठुकरा कर एक नये व्यक्ति को अपना प्रलाप सुना रही है, वियोग की झूठी कल्पना से मनगढ़न्त कहानी रच रही है। आखिर स्त्री ही तो ठहरी और आज की सभ्यता का चादर ओढ़े क्यों न ऐसा करे। ओह मैं ज्योत्स्ना को क्या समझता था, मुझे भ्रम हुआ, धोखा हुआ। मुझे उसके चरित्र पर विश्वास था, उसकी वाणी में श्रद्धा थी और उसके विचारों से सहानुभूति थी। अब उसके व्यवहारों से घृणा है। उससे प्रेम नहीं करता, केवल उससे एक स्नेह है क्योंकि हम सहपाठी रह चुके हैं परन्तु देखता हूँ कि वह मुझसे अपने को छिपाती है। उस दिन दार्शनिकों की भाँति बातें कर रही थी। अन्त में मेरा निश्चय सच निकला। वह मि० दत्त के हाथों में आ गयी, एक पके हुए फल की भाँति। मेरे सामने उसे घृणा करती थी, उसके व्यवहारों से असन्तुष्ट थी परन्तु आज उसे क्या हो गया? उसका सारा गर्व कहाँ गया? नारीको कौन समझ सकता है। जिसपर विश्वास हो और जब वहाँ धोखा हो तो विश्वास किसपर किया जाय। इस संसार में विश्वास का कोई मूल्य नहीं। स्त्री जाति के हाथों पड़कर विश्वास का भी महत्त्व जाता रहा। तू केवल कहने के लिए अबला है परन्तु तेरे कार्य दानवी से भी

भयंकर है। कोमल अंगों में हलाहल विष, सुन्दर मुस्कान में सर्पिणी की फुंकार तथा मादकता भरे नयनों में लोलुपता की प्यास है। रहस्यमयी नारी तू क्या नहीं कर सकती ?

सुनील स्वतन्त्र और स्वच्छन्द विचारों वाला सुनील आज हृदय के झोंको से घबड़ा रहा था, उसको गाने का स्वर काटने सा लगा। उसके नेत्रों के सामने अँधेरा छा गया। वह भूला सा थोड़ी देर तक इधर उधर देखता रहा। घृणा से उसके पैर पीछे लौट चले, एक बार उसने झुक कर और देखा—उसी तान में मस्त संसार के दो विचित्र प्राणी। वह लौट चला उन्मत्तों की भाँति डगमगाते हुए, निराशा भरे नेत्रों से सभी वस्तुओं पर दृष्टि डालते हुए। उसकी चेतना स्तब्ध थी, उसके विचार कुंठित थे। ऐसा विदित होने लगा कि संगीत का स्वर उसके हृदय में कुछ चुभोने लगा और वह उससे बचने के लिए भाग रहा था।

संगीत के अवरोह के साथ २ ज्योत्स्ना का मद उतरता गया। रो लेने के पश्चात जिस प्रकार हृदय हलका हो जाता है, एक गम्भीरता आ जाती है उसी प्रकार ज्योत्स्ना कुछ शान्त हुई। आँधी के पश्चात् जिस प्रकार वातावरण शान्त हो जाता है उसी प्रकार उस आन्दोलित नारी का हृदय निस्तब्ध हुआ। स्पन्दहीन, चेतना रहित ज्योत्स्ना थोड़ी देर तक मौन रही। मि० दत्त अब भी उसी प्रकार बैठे ज्योत्स्ना का रूपरस पान कर रहे थे। उसने सूखे नेत्रों से उनकी ओर देखा और अनमना कर चुप हो गयी। मि० दत्त पर विलासिता का मद चढ़ने लगा। उन्होंने धीरे से कहा—

"ज्योत्स्ना आप इतना अच्छा गाती हैं, यह आज मुझे मालूम हुआ। मैं आप के रूप पर मोहित हुआ था परन्तु आज आपके गाने पर पागल हो गया। क्या आप मुझे अपने हृदय के

किसी कोने में स्थान देने का प्रयत्न करूँगी। मैं आपके पीछे सब कुछ करने को तैयार हूँ।

हृदय को ठेस लगी, उसकी प्रेरणा ने उसे धिक्कारा—तू फिर उसके सामने बैठी है जो तेरे यौवन का शिकार है, जो तेरे सौन्दर्य का क्षणिक पुजारी है। आत्म विस्मृति पलटी और ज्योत्स्ना गर्विणी ज्योत्स्ना दीर्घ निश्वासें भरने लगी। उसने मि० दत्त से कहा—

"आप क्या कर रहे हैं? आपने मुझे क्या समझ रक्खा है? एक अबला, असहाय, निरीह प्राणी। यह आपका भ्रम है, यह विलास का स्वप्न है। आप मेरे घर में हैं इसलिए आपका अपराध क्षम्य है नहीं तो परिणाम बुरा होता। मैं अपना संचित कोष, हृदय-मञ्जूषा से निकाल कर बाजार में नहीं बिखेरना चाहती।"

"मैं आप के रूप पर मुग्ध हूँ—मैं आप से प्रेम करता हूँ।"

"प्रेम मेरे पास नहीं है, संसार की इतनी बड़ी वस्तु मुझे क्यों व्यर्थ में देना चाहते हैं। अपनी रत्नराशि उन लोगों के सामने क्यों लुटाना चाहते हैं, जिनसे उनकी आँखें चकाचौंध हो जाती हैं।

"मेरे प्रेम से आप व्यंग करती हैं। किसी के प्रेम को ठुकराना एक अपराध है।"

"उसी अपराध का मैं प्रायश्चित कर रही हूँ। अपने हृदय की शान्ति के लिए संसार के चक्र में पड़ी घूम रही हूँ। मुझे कहीं शान्ति नहीं है।"

"मैं आपको शान्ति दूँगा।"

"मैं इस ज्वाला-मुख को शान्ति में नहीं छिपा सकती। आप

अपनी दुर्बलता को छिपाइये और प्रबलता के हाथों का खिलौना न बनिये। मैं प्रेम का सौदा किसी से नहीं करती।"

मि० दत्त चुप रह गये। उन्हें ऐसा मालूम हुआ कि किसी ने उनको ऊँचे पहाड़ पर से नीचे की ओर ढकेल दिया हो। वह चोट खाये हुए व्यक्ति की भाँति चुपचाप बाहर निकले और अपनी कार पर जा बैठे।

ज्योत्स्ना बड़ी उदास थी। जिस बात का केवल उसे भ्रम था, आज वह सत्य हो गया था। मि० दत्त केवल उसके रूप के व्यापारी थे और इसीलिए वह इतने सन्निकट होते जा रहे थे। उसको अपने जीवन से घृणा हो गयी और एक स्मृति, भूली हुई स्मृति उसके सामने आ गयी। यदि वह अपने पति के घर होती तो मेरे रूप के ग्राहक इसप्रकार क्यों मँड़राते। मेरे कारण पतिदेव को घर छोड़ना पड़ा, पता नहीं वे कहाँ, किस कोने में अपना सरल जीवन बिताते होंगे और मैं सुख की नींद ले रही हूँ। ओह भगवान, तूने मुझे कौनसा अभिशाप दिया है, मुझे कहीं भी सुख नहीं, मेरे सुख की कल्पना कर पिताजी रात-दिन घुले जा रहे हैं और मैं अपने ही में दग्ध हो रही हूँ। सभी लोग अपनी ही चिन्ता में निमग्न हैं, सभी को किसी न किसी संघर्षों का सामना करना पड़ रहा है। केवल सुख की झूठी कल्पना के लिए दुख पर आवरण उढ़ाकर उसको सुख का पूँजीपति बनाना ही संसार का कृत्रिम न्याय है। जब हृदय आनन्दित रहता है तब दुख भी सुखमय प्रतीत होता है अन्यथा नहीं—

वह व्याकुल होकर बाहर निकल आयी और इधर उधर घूमने लगी। रात्रि हो चली थी। उसने नौकर से पूछा—

"क्या पिताजी अभी नहीं आये ?"

"अभी तो नहीं मगर सुनील बाबू आये थे।"

"कब ?"

"करीब एक घन्टा हुआ। वह मुझे भीतर आते हुए दिखलाई पड़े थे।"

"परन्तु वह कहाँ रहे, मुझसे तो मिले तक नहीं ?"

वह आये थे अवश्य परन्तु आप से क्यों नहीं मिले यह मैं नहीं जानता ? ज्योत्स्ना का माथा ठनक उठा। उसका मुख पीला पड़ गया। वह विचारने लगी—सुनील आया होगा अवश्य परन्तु मुझे मि० दत्त के सामने निर्लज्जों की भाँति गाते हुए उसे मेरे चरित्र पर सन्देह हुआ होगा और वह मारे क्रोध और घृणा के हमसे बिना मिले ही चला गया होगा। उसके मनमें मेरे प्रति कैसे २ विचार उठे होंगे। मैं उसके सामने अपने को सर्वदा बचाती रही, अच्छे विचारों के तर्क में अपने हृदय की सच्ची बातें व्यक्त करती रही। अब वह उन सबको एक पाखंड समझेगा और सोचेगा कि ज्योत्स्ना ने मुझे धोखा दिया है। उसे मेरे पति तक का सभी हाल विदित है। वह कल्पना करेगा कि उनको छोड़कर अब वह मि० दत्त से प्रेम करती है। उसके नेत्रों से मैं गिर जाऊँगी। इसका तात्पर्य यह होगा कि मेरे सारे सहपाठी मेरे चरित्र पर आलोचना करेंगे। व्यंग बाणों की वर्षा करेंगे और लांछन लगायेंगे। सुनील मुझसे स्नेह रखता था, सच्चे हृदय से वह मेरी उन्नति की कामना करता था परन्तु अब.........

वह माथा थामकर बेंच पर बैठ गयी। उसके नेत्रों के सामने पृथ्वी घूमती हुई दिखलाई दी। उसने उस समय अपने को सबसे नीच समझा। मनुष्य सब कुछ सह सकता है परन्तु अपने सहयोगियों के समक्ष पराजित होना अपना घोर अपमान समझता है। ज्योत्स्ना बड़ी देर तक इसी भाँति रही और अन्त में धीरे से उसके मुख से निकला—शायद अब वह आयेगा भी नहीं।

निराशा की दीर्घ निश्वास ने उसके हृदय को द्रवित कर डाला। नेत्रों से अश्रु—उसकी अतीत समाधि की अर्चना करने लगे।

रजनी के अन्धकार में कोई उसको रोते हुए नहीं देख सका।

× × × ×

१५

सुनील जब ज्योत्स्ना के यहाँ से चला तो उसकी कार भी उसी की मस्तिष्क की भाँति उलझती हुई चल रही थी। वह उन्मत्तों सा अपनी कार चला रहा था। उसे यह पता ही नहीं चलता था कि वह ठीक रास्ते पर है अथवा नहीं। जगमगाते पथ पर उसकी कार हवा से बातें कर रही थी और वह भी हवा में उड़ रहा था। लोग दूर ही से उसकी गति देखकर इधर उधर हट जाते थे कि एकाएक चौराहे पर उसकी कार शीघ्रता से घूमी और उसके पहियों के सामने एक युवती आ गयी। पथिक एकाएक चिल्ला उठे। सुनील उस चिल्लाहट को सुनते ही सचेत हो गया और अपनी कार को रोकने का भरसक उसने प्रयत्न किया परन्तु गति तेज़ थी। क्षणभर में स्त्री को कार का धक्का लगा और वह सड़क पर गिर पड़ी। सुनील ने अपनी कार बड़ी शीघ्रता से घुमा दी और उसे रोक कर उतर पड़ा। दुर्घटना हो गयी। सभी लोग दौड़कर उसके पास आ गये। चौराहे का पुलीस सीटी बजाता हुआ वहाँ आया, देखा कि एक अच्छे कुल की युवती मुँह के बल सड़क पर पड़ी है। नर नारियों की अपार भीड़ उसके चारों

ओर इकट्ठी हो गयी। इतने में सुनील अपने कार से उतरा और भीड़ को चीरता हुआ युवती के पास पहुँचा। लोगों की जिह्वा बन्द हो गयी, कटुक्तियों पर पाला पड़ गया। उस फ़ौजी कमान को देखते ही लोग इधर उधर होने लगे। पुलिसमैन भी अवाक हो गया। सुनील ने देखा कि युवती बेहोश है और उसके मुख से रक्त बह रहा है। उसने बची हुई भीड़ से पूछा—

"इसके साथ कौन है ?"

सभी सन्नाटा खींच गये। सुनील ने पुलिस वालों से भीड़ हटाने को कहा—उसने स्वयं युवती को उठाकर अपनी कार में लिटा दिया और बैठकर शीघ्र अपनी कार अस्पताल की ओर मोड़ दी। अस्पताल पहुँच कर उसने डाक्टरों से दुर्घटना का वर्णन किया और शीघ्र से शीघ्र युवती की चेतना वापस करने को कहा—डाक्टरों ने दवा दी और बतलाया कि इन्हें केवल धक्का लग गया है। दुर्बलता के कारण चेतना आने में अभी देर है, खतरे की कोई बात नहीं है। सुनील ने यह सोचा कि इसे छोड़ दें परन्तु पता नहीं उसे कब होश आवे और वह क्या कहें। यही समझ कर उसे कार में लिटा कर अपने बँगले पर ले आया। वहाँ एक अच्छे पलंग पर उसे लिटाकर उसकी चेतना की प्रतीक्षा करने लगा। उसने देखा कि युवती किसी सम्भ्रान्त कुल की है। क्योंकि उसके हाथ में अंगूठी थी और गले में सोने का हार पड़ा था। मुख पर सरलता थी और ओठों पर एक लालिमा। सुनील को इस दुर्घटना से बड़ा दुख हुआ कि उसने एक युवती को चोट पहुँचायी।

थोड़ी ही देर बाद उस युवती ने करवट बदली। सुनील के चेहरे पर उत्साह की एक झलक आ गयी और वह आँख फाड़ २ कर उसे देखने लगा। उसने चेतना आते देखकर युवती को गरम

गरम दूध पिला दिया। कुछ देर में युवती ने आँखें खोल दीं और आश्चर्य से इधर उधर देखने लगी। अपने को एक सजे-सजाये कमरे में देखकर वह घबड़ा कर उठने लगी। सुनील इतने में उसके सामने आ गया और बोला—

आप उठने का प्रयत्न न करें, अभी आप में बड़ी दुर्बलता है। अपने सामने एक लम्बे चौड़े फौजी को देखकर वह पीली पड़ गयी और भयभीत मुद्रा से उसकी ओर दृष्टिपात किया। सुनील ने समझ लिया कि यह हमसे भयभीत हो रही है। इसलिए उसने बड़े ही मधुर शब्दों में कहा—

देवी आप मुझसे भयभीत न हों। इसे अपना ही घर समझें। उसको कुछ साहस हुआ। उसने लेटे ही लेटे पूछा—

"मैं यहाँ कैसे आयी? मैं तो सड़क पर जा रही थी।"

"जी हाँ, परन्तु दुख है कि आप मेरी कार से टकरा गयीं जिसके फलस्वरूप आप मूर्छित होकर गिर पड़ीं। मैं आपको उठा कर अस्पताल ले गया और वहाँ दवा करा के यहाँ लाया हूँ।"

"तब तो आप ने मेरे प्राणों की रक्षा की है, उसके लिए मैं आपकी कृतज्ञ हूँ।"

"लज्जित न कीजिये, अपराधी को क्षमा करना ही उसके लिए सबसे बड़ा दण्ड है।"

युवती लज्जित हो गयी।

"क्या आप दुर्घटना के समय अकेली थीं" सुनील ने पूछा।

"जी हाँ, मैं अकेली ही थी।"

युवती ने एक बार संदिग्ध नेत्रों से सुनील की ओर देखा और फिर कुछ सोचने लगी। सुनील समझ गया कि युवती कुछ सोच रही है।

सुनील कुछ पूछना ही चाहता था कि युवती बोल उठी—

"आपका शुभ नाम क्या है?"

"सुनील कुमार।" "और आपका?"

"अलका।" उसने मस्तक नत कर के उत्तर दिया।

वह सोचने लगी कि इस युवक को मैंने उस दिन ज्योत्स्ना के साथ देखा था परन्तु विश्वास न होता था। यदि यह वास्तव में वही युवक है तब तो बड़ा बुरा हुआ। यह अवश्य उसका कोई होगा। वह पूछने को आतुर थी कि सुनील ने कहा—

"आप कुछ कहना चाहती हैं?"

"जी नहीं।"

"कहिये, संकोच न कीजिये।"

वह चुप हो गयी। फिर कुछ सोच कर बोली—

"ऐसा मालूम होता है कि मैंने आपको किसी दिन और देखा था।"

"कहाँ।"

"शायद सिनेमा के पास और.........।"

"और क्या?"

"कुछ भी नहीं।"

"कहिए, हाँ मैं गया था।"

"आप के साथ श्रीमती ज्योत्स्ना थीं।"

"जी हाँ, क्या आप उन्हें जानती हैं?"

"बहुत अधिक नहीं, केवल परिचय मात्र है। मैं उनसे एक बार लाहौर में मिलने गयी थी।"

"तो क्या आप वहीं रहती हैं?"

"जी हाँ, कुछ काम से यहाँ आयी हूँ" उसने जीभ दबा कर कहा—

"मुझे बड़ी खुशी है कि आप एक तरह परिचिता सी हैं।"

"जी हाँ, इसकी मुझे भी खुशी है। ज्योत्स्ना देवी कहाँ हैं ?"

"वह अपने घर रहती हैं। मैं भी कभी २ उनके घर चला जाता हूँ।"

"मैं उनसे मिलकर कुछ पूछना चाहती हूँ।"

"क्या कोई गुप्त बात है ?"

"नहीं उनसे केवल यही पूछना है कि वकील साहब कहाँ गये हैं ? क्योंकि उनको लापता हुए कई महीने हो गये, उनका कोई समाचार नहीं मिला।"

"वकील साहब घर पर नहीं हैं ?" उसके स्वर में आश्चर्य था।

"नहीं वह तो पता नहीं कहाँ चले गये, किसी से कुछ कहा भी नहीं।"

"और ज्योत्स्ना यहाँ तो चैन की वंशी बजा रही है। ठीक है ऐसी स्त्रियों को पति की विशेष चिन्ता नहीं रहती.........।"

अलका के कान खड़े हो गये। उसने सुनील की बातों का यही तात्पर्य निकाला कि ज्योत्स्ना वकील साहब को नहीं चहती और इसीलिए वह यहाँ चली आयी है। उसको इस समाचार से बड़ी ठेस लगी। वह कल्पना में झूलने लगी—यदि इसके स्थान पर कोई दूसरी स्त्री होती तो वह बावली हो गयी होती और उनको खोज निकालती। वह तो ज्योत्स्ना के लिए प्राण देते थे और यह उनको गिनती तक नहीं। इतने बड़े मनुष्य को पाकर भी यदि वह अपने को भाग्यशालिनी नहीं समझती है तो यह उसकी सबसे बड़ी भूल है। वह अधिक न सोचकर इसी निष्कर्ष

पर पहुँची कि ज्योत्स्ना को अपने पति से प्रेम नहीं है। इसीलिए वह बोली—

"क्या मैं ज्योत्स्ना देवी से मिल सकती हूँ?"

"यदि उनको अवकाश रहेगा तो वह अवश्य आप से मिलेंगी।"

"तो क्या उनको यहाँ विशेष काम रहता है।"

"उनके मिलने वाले इतने अधिक हैं कि उस बेचारी को बात करने की फ़ुरसत ही नहीं मिलती।"

"तब तो उनके यहाँ जाना ही व्यर्थ है।"

"नहीं नहीं, आप एक बार जाइये और देखिये कि ऊँट कौन सा करवट बदल रहा है।"

सुनील के व्यंग का अर्थ अलका के विचारों से मिलने लगे। इसी भाँति के वार्तालाप के पश्चात् अलका अपने घर लौटी। अधिक दुर्बलता के कारण वह ज्योत्स्ना के यहाँ दूसरे दिन भी न जा सकी। वह ज्योत्स्ना का रहस्य जितना सरल समझती थी वह उतना ही गूढ़ होता जा रहा था।

सूर्य भगवान की अरुण किरणें उच्च शिखरों, वृक्षों की चोटियों को चूम रही थीं। उनकी प्रखरता में शिथिलता आ गयी थी। सन्ध्या का प्रथम रूप क्षितिज से दृष्टिगोचर हो रहा था—ठीक इसी समय ज्योत्स्ना बाहर निकल पड़ी और लता सी लचकती हुई चल पड़ी। उसकी इच्छा हुई कि वह सुनील से मिले परन्तु यह सोचकर कि वह मुझे धिक्कारेगा, मैं अपनी पवित्रता का कितना ही प्रमाण दूँगी वह उसपर भूलकर भी विश्वास न करेगा, मेरी ओर श्रद्धाभरी दृष्टि तक न उठायेगा। इसी सोच से वह वहाँ न जाकर दूसरी ओर चल पड़ी। कहाँ जायेगी? उसका लक्ष्य क्या है? पता न था, वह अग्रसर थी अपने जीवन

पथ पर भूली हुई और विभ्रान्त सी। कौन उसे देख रहा था? कोई क्या उससे कह रहा था? इसका ज्ञान उसे न था। वह चेतना-हीन थी कि एकाएक उसके कानों में एक करुण-स्वर पड़ा, वह बढ़ गयी आगे सरिता की भाँति अपने ही धुन में मस्त। परन्तु रुकी पुनः वही शब्द सुनकर और घूम पड़ी। देखा फटे चिथड़ों में एक नारी, जंर्जर और कृषित अंगों से यौवन को पीकर खड़ी है और उसकी गोद में उसका सोने सा लाल, नंगा, हड्डियों का ढाँचा ओढ़कर पड़ा है। मस्तक पर रूखे केश, नेत्रों में जीवन की प्यास, क्षुधा बनकर झाँक रही है।

"ज्योत्स्ना, रूप के इस परिणाम पर सिहर उठी और उसको देखकर बोली—

"क्या चाहती हो?"

"इस बच्चे के लिए थोड़ा सा दूध।"

इतने में कोमल शिशु ज्योत्स्ना की ओर भयभीत नेत्रों से झाँकने लगा। ज्योत्स्ना उस बालक की दशा से मोम की भाँति पिघल गयी और पूछने लगी—

"तुम्हारे कोई नहीं है?"

स्त्री नीरवता की साँस पीकर चुप रह गयी और उदास नेत्रों से ज्योत्स्ना का मुख देखने लगी। ज्योत्स्ना उसकी मुद्रा से मलीन हो गयी और उसकी ओर एक रुपया बढ़ाते हुए बोली—

"तुम इस प्रकार क्यों अपना जीवन व्यतीत करती हो?"

उसने काँपते हुए हाथों से रुपया लेते हुए कहा—

"यह भी भाग्य का दोष है कि सब कुछ रहते हुए भी मेरे पास कुछ नहीं है।"

"इसका क्या तात्पर्य?"

"कुछ नहीं, यह पूर्व जन्म का पाप है।"

"इस भावना में एक अन्धविश्वास है। जो कुछ होता है सब इसी जन्म का फल होता है।"

"होता होगा परन्तु मैंने तो कभी भी कोई अपराध नहीं किया तिसपर भी इस अवस्था में पड़ी हूँ।"

"तुम्हारे घर के लोग हैं ?"

"सभी तो नहीं परन्तु पतिदेव तो हैं ही ?"

"उनका नाम क्या है ? वह क्या करते और कहाँ रहते हैं ?"

स्त्री चुप होकर कुछ सोचने लगी। ज्योत्स्ना ने देखा कि उसके नेत्र सजल हो गये हैं, वह भी द्रवित हो गयी। उसने पुनः सभी बात के जानने का आग्रह किया। तो स्त्री ने कहा कि मैं उस बात को यहाँ नहीं कहूँगी। ज्योत्स्ना ने कहा—

"तब मेरे साथ चलो।"

"नहीं मैं अपने घर चलूँगी परन्तु आप वहाँ कैसे चलेंगी ?"

"क्यों, घर बड़ा ही खराब है और आपको हम गरीबों से घृणा होगी। ज्योत्स्ना का हृदय उस स्त्री का दुख सुनने के लिए आतुर हो रहा था। दुख में सभी बराबर हो जाते हैं। उसमें गौरव और तुच्छता का कोई स्थान नहीं। ज्योत्स्ना स्वयं दुखी थी इसीलिए वह उस स्त्री के दुख का अनुभव कर रही थी। सहानुभूति मानव की स्वाभाविक मनोवृत्ति है। ज्योत्स्ना उसके लाख मना करने पर भी उसके पीछे २ घर की ओर चल पड़ी।

उस स्त्री के घर पर पहुँच कर ज्योत्स्ना ने देखा कि दरिद्रता भी वहाँ बैठी रो रही है। मृत्यु के साथ जीवन के संग्राम का दृश्य उपस्थित था, मथित और व्याकुल कमरा उसी की मल्लशाला हो रही थी। एक ओर टूटा घड़ा पड़ा था और दूसरी ओर टूटी चारपायी। कमरे में इधर उधर दरिद्रता की हँसी फटे चिथड़ों में छिपने का प्रयास कर रही थी और एक दीपक स्पन्दन-

हीन हृदय से नारी के बुझे प्रकाश से होड़ बद रहा था। चारों ओर वस्तुयें बिखरी थीं, मानों जीवन और मृत्यु युद्ध करते २ हार गये। अन्त में मृत्यु विजयिनी हुई और जीवन की सभी उपकरणों को रौंदती विकल हो गयी। कमरे के कोने में अपने में ही सीमित एक सन्दूक पड़ा था और उसके ऊपर शिशु के टूटे फूटे खिलौने। चारों ओर एक विभिषिका थी, डरावनी सी। वहाँ किसी को भी न हँसने का अधिकार था और न रोने का। यही नहीं, वहाँ की वस्तुओं को भली भाँति देखने का साहस किसी में न था।

ज्योत्स्ना सिहर उठी। इतने में स्त्री अपना फटा चादर बिछाती हुई बोली—

"बैठिये; परन्तु ऐसी दरिद्रों की दुनियाँ शायद आप ने कभी नहीं देखी होगी। यही कमरा हमारे लिए स्वर्ग है, हमारे जीवन का रंगमहल और प्रकाश है। इसी की दीवालों से अपनी बात कहती हूँ और रो देती हूँ और ये भी सिहर कर रह जाते हैं।"

ज्योत्स्ना घबड़ा उठी और बोली—

"तुम जल्दी से अपनी बात बताओ, मुझे अभी दूर जाना है।"

"मैंने आज तक किसी को भी अपना रहस्य नहीं बताया। लोग दूसरे के दुख पर हँसते हैं यही सोचकर चुप हो अपना जीवन बिता रही थी। परन्तु आपका विशेष आग्रह देखकर मुझे भी एक अन्तर्प्रेरणा हुई कि आज मैं आपसे सब बातें कह दूँ।

मैं एक अच्छे कुल की कन्या हूँ, मेरे माता पिता ने मुझे बड़े प्रेम से पाला पोसा, मुझे शिक्षित भी बनाया। जब मैं विवाह योग्य हुई तो माता पिता को बड़ी चिन्ता होने लगी। मैं अपने पिता की इकलौती बेटी थी इसलिए वे मेरा ऐसी जगह विवाह

करना चाहते थे, जिससे मैं जीवन भर सुखी रह सकूँ। कई जगह से बातें ठीक हुई परन्तु अन्त में मेरा विवाह एक अच्छे लड़के से निश्चित हुआ। बारात आयी और विवाह सुसम्पन्न हुआ और मैं अपना सुहाग लेकर पति के घर गयी। सास न थी केवल ससुर थे, परन्तु दुख है कि वह कुछ ही दिन बाद चल बसे। मैं अब घर में अकेली रह गयी। थोड़े ही समय बीते थे कि मेरे पति को इग्लैंड जाना पड़ा। मैं बड़ी दुखित हुई परन्तु पति की उन्नति में बाधक नहीं होना चाहती थी। उन्होंने भी मुझे पूर्ण आश्वासन् दिया और मुझे अकेली छोड़ कर चल दिये। इसी बीच में मुझे यही पुत्र पैदा हुआ। पहले तो उनके पत्र बड़े प्रेममय आते थे परन्तु धीरे धीरे पत्र की धारा साधारण सी हो गयी। मैं इसका तात्पर्य न समझ सकी। मैंने अनुमान लगाया कि पढ़ने में अधिक संलग्न होने के कारण उन्हें समय न मिलता होगा। धीरे धीरे मेरे पास जितना धन था, भी खर्च हो गया और मेरे दुर्भाग्य से माता पिता भी मुझ अभागिनी को अकेली छोड़ कर चल बसे। मैंने स्वयं पिता से कई हजार रुपये लेकर पति की पढ़ाई में लगा दिये थे। कुछ दिन के बाद एकाएक उनका पत्र आना ही बन्द हो गया। मैं घबड़ा गयी, मुझसे किसी का परिचय भी न था। एक पुत्र को लेकर मैं कहाँ जाती? क्या करती? मेरी समझ में कुछ नहीं आया। हिन्दू-समाज में अबला सबसे निरीह प्राणी है। उसका कोई मूल्य नहीं, उसके जीवन की कोई साधना नहीं। दिन पर दिन बीतते चले गये परन्तु उनका कोई पत्र न आया। मेरी दशा पागलों की सी हो गयी। मैंने उनके मित्रों से पूछा परन्तु वे भी बेचारे सान्त्वना ही देते थे। कुछ कर नहीं सकते थे और मैं अपनी लोक लज्जा को बचाये घर में रोया करती थी। जब करीब एक साल के हो गये तो मुझे ऐसा विश्वास होने लगा कि अब वे यहाँ न

आवेंगे। मैं निराश होगयी, करती ही क्या ? मेरे पास रक्खा ही क्या था ? विवश होकर बाहर निकली परन्तु मुझे ऐसा विदित हुआ कि सभी लोग मुझपर लोलुप नेत्रोंसे देख रहे हैं। मेरे सामने पेट का सवाल था। एक असहाय स्त्री के लिए जीविकोपार्जन कितनी बड़ी समस्या है इसे संसार जानते हुए भी दया की भिक्षा नहीं देता। एक पेट के लिए नारी को अपनी लज्जा अपनी मर्यादा, अपना गौरव और अपना सौन्दर्य सभी कुछ पुरुषों के चरणों में अर्पित कर देना पड़ता है। मुट्ठी भर अन्न के लिए अच्छी २ कुल-कन्यायें बाज़ारों में अपने रूप का सौदा करती हैं और कुछ चांदी के चमचमाते टुकड़ों पर अपना सतीत्व बेचती हैं। पुरुष वर्ग उन्हें अपनी विलासिता का साधन समझता है और इसीलिए वह स्त्री के सम्मान को सर्वदा तिरस्कार की दृष्टि से देखता है। यदि नारी पेट के लिये सार्वजनिक क्षेत्र में आती है तो पाती क्या है ? कलंक, प्रताड़ना, अपमान और निरादर। उसके भाग्य में और क्या लिखा है ? स्वार्थी पुरुषसमाज उसके सौन्दर्य और सतीत्व के बदले मुट्ठीभर अन्न देता है, उसे जनता के मध्य में खड़ा कर अपनी स्वार्थ सिद्धि करता और अन्त में स्त्री की अवस्था ढल जाने पर दासी से भी नीच समझने लगता है। यह है आज का पुरुष-समाज और उसके हाथों की कठ-पुतली नारी।

मैं अपनी जीविका के लिए कई स्थानों पर गयी परन्तु लोग मेरी दयनीय अवस्था पर अधिक ध्यान न देकर मेरे यौवन और सौन्दर्य पर ही अपनी दृष्टि निक्षेप करने लगे। मैं बड़े सोच में पड़ी कि भगवान ने यह रूप भी देकर मेरे लिए एक कंटक तैयार कर दिया है। मैंने सोचा कि मुझे मरना पड़ेगा। पर पुत्र के लिए मैं विवश थी। यदि मेरे सामने यह स्मृति न होती

तो मैं या तो डूब मरती या सर्वदा के लिए कहीं चली जाती, जहाँ पुरुष की छाया न पड़े। भर पेट भोजन न मिलने के कारण मेरा स्वास्थ्य गिरने लगा और मेरा एकमात्र शिशु भी माता के साथ जठरानल में जलने लगा। मैंने देखा कि जब मैं बाहर निकलती तो लोग मेरे पीछे लग जाते और कुछ तो व्यङ्गोक्तियों से मेरे ऊपर अश्लील शब्दों के बाण छोड़ते परन्तु मैं चली जाती केवल पथ निहारती हुई काँपती सी, मदान्ध तथा लोलुप नेत्रों के बीच से। सचमुच स्त्री अबला है, वह पुरुष के सामने कुछ भी नहीं है। उसकी सत्ता उसके लिए स्वयं घातक है। वह स्वतन्त्र और स्वच्छन्द होकर भी पुरुषों के ही हाथों का शिकार है। वह उनके क्रूर चंगुल से कभी भी नहीं निकल सकती।

मैंने यही निश्चय किया कि अब चल कर किसी के यहाँ सेवाकार्य करूँगी और पेट भर लूँगी परन्तु इसी बीच में निराशा रूपी अंधकार में आशा दीप चमक उठा। मेरे पास एक पत्र आया कि पतिदेव वहाँ से आई० सी० यस० पास होकर आ रहे हैं। मेरा आनन्द, सीमा का अतिक्रमण कर गया, मैंने अपने को संसार में पुनः सबसे भाग्यशालिनी समझा और हृदय में कितनी ही अधूरी आकांक्षाओं को लेकर उनके आनेका शुभ अवसर देखने लगी। मेरे स्वप्न फिर सत्य होने लगे, मेरी कल्पनायें सजीव सी होने लगीं। मैंने संसार के चक्र को समझा। सुख के बाद दुख और दुख के बाद सुख इसी प्रकार आया करता है। मैंने किसी तरह अपने पुत्र के लिए एक कमीज तैयार की और अपने लिए एक साफ धोती। पति के आने की खुशी से मेरी भूख जाती रही, मुझमें एक नया उमंग आ गया परन्तु......।

विधाता की लीला विचित्र है, मनुष्य क्या चाहता है और क्या हो जाता है। मेरी उमंगों पर फिर बज्र गिरा। मैंने निश्चि त

दिन का एक एक पल बड़ी कठिनाई से काटा, इतने लम्बे वियोग के पश्चात मिलन कितना सुखदायी होता है उसकी कल्पना मात्र से मेरा हृदय नाच रहा था। दिन भर मैं इधर से उधर घूमती रही और सोचती रही कि कल से मेरे पैर भूमि पर न पड़ेंगे। संध्या सुहावनी बनकर आयी और निकल गयी, रात्रि सर्वदा की काल-रात्रि आशा और चाह भरी आयी। मैंने तारे गिन गिनकर रात काटी, घूम २ कर एक एक पल बिताया परन्तु वह रात्रि भी निकल गयी, निराशा की अन्धकार की भांति। मुझे चिन्ता हुई कि वे क्यों नहीं आये ? मैंने फिर उषा की ओर निराशा भरी दृष्टि से देखा कि मेरी दाहिनी आँख फड़कने लगी। मैंने समझा दुख के दिन कुछ और भोगने हैं। मैं उदास हो गयी। मुझे चैन नहीं था। मुझे थोड़ी देर बाद मालूम हुआ कि पतिदेव आ गये परन्तु मेरे यहाँ न आकर किसी होटल में ठहरे हैं। इस सूचना से मैं हताश ही नहीं हुई बल्कि ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने मेरे ऊपर पत्थर पटक दिया है।

मैं सोचने लगी कि यदि उन्हें किंचितमात्र भी ध्यान होता तो मुझे इस प्रकार क्यों छोड़ देते। मैंने समझ लिया कि अब वह मेरे पति न रहे......।

स्त्री फूट फूटकर रोने लगी। ज्योत्स्ना ने उसको ढाढ़स बँधवाया और उससे आगे कहने का अनुरोध किया। वह अपने आँसू पोछ कर कहने लगी—मुझे निराशा हो गयी। मुझे विदित हुआ कि अब वह मुझे अपने घर में न रक्खेंगे, उन्हें अब तो कोई मेम चाहिए। इग्लैंड के वातावरण ने उनकी प्रज्ञा पर पर्दा डाल दिया है। मैं अपना फटा भाग्य लिए घर में बैठ कर रोने लगी।

आशा पर भी जीवन निर्भर है परन्तु आशा में विलम्ब

होना ही निराशा का प्रथम रूप है। मैंने उसी दिन समझ लिए जिस दिन उन्होंने पत्रोत्तर बन्द किया था, परन्तु मैंने उस साक्षात को सत्य देखा। मेरा जीवन अकेला होगया। नेत्रों के सामने निराशा का घना अन्धकार था और उसकी छाया में जगत की क्रूर लीला। मैंने उनके यहाँ जाने का निश्चय किया। एक बार तो ध्यान आया कि जब उन्होंने मुझे छोड़ ही दिया तो उनका दर्शन तक न करूँगी, परन्तु "पति परमात्मा के समान है" यही सोचकर अपने अधिकारों को तिलाञ्जलि देकर अभिमान को छोड़कर पति के लिए उनके होटल में पहुँची।

उस समय पतिदेव जलपान कर रहे थे। मुझे एकाएक देख कर उठ खड़े हुए। मैंने देखा कि उनका रूप रंग सभी कुछ बदल गया है, उनके नेत्रों में वह करुणा नहीं है जिसकी एक भीख पर मैं प्राणों की बाजी लगा देती थी। मैं उन्हें देखते ही फूट फूटकर रोने लगी और मेरा बच्चा वहीं बैठकर उस पिता की ओर भय-भीत नेत्रों से देखने लगा। वह इधर उधर टहलने लगे। मैंने रो लेने के बाद कहा—

"क्या आप मुझे बिलकुल भूल गये? क्या आपने मेरे जीवन का कोई मूल्य नहीं समझा? आपने इंग्लैंड जाते समय कैसे २ वादे किये थे वे क्या सभी आपको याद हैं? आपके पीछे मुझे कितना कष्ट हुआ है वह मैं ही जानती हूँ। आपने मेरे साथ इस प्रकार का क्यों बदला लिया? मैंने आपका क्या बिगाड़ा था कि मेरे इस जीवन के साथ आपने मेरे सरपर एक बोझ डाल दिया।"

मैं रोती रोती उनके पैर को पकड़ने के लिए बढ़ी परन्तु उन्होंने अपना पैर इस तरह खींच लिया मानों बिजली लगी हो और दूसरी ओर मुँह कर बोले—

"अब तुमसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं।"

"क्या आप मेरे पति नहीं हैं ?"

"नहीं" शब्दों में कठोरता थी।

हृदय टुकड़े टुकड़े हो गये, इस वाणी को सुनने के पहले यदि मैं भूख से मर जाती तो सन्तोष हुआ होता। मेरे पैरों में मालूम हुआ कि किसी ने कील ठोक दी है। मैं स्तम्भित रह गयी कि मैं क्या सुन रही हूँ ? नारी प्रेम के कारण सब कुछ सह सकती है परन्तु अपने प्रेम का निरादर नहीं सह सकती। चाहे वह उसका पति ही क्यों न हो ? वह उस अपमान का बदला लेने के लिए नागिन का रूप धारण कर सकती है, चण्डी और कालिका हो सकती है। मुझे क्रोध आया फिर भी भारतीय मर्यादा का ध्यान करके खून का घूँट पीकर रह गयी और बोली—

"तब मैं इस बच्चे को लेकर कहाँ जाऊँ ?"

"जहाँ तुम्हारी इच्छा हो।"

"क्या यह तुम्हारा बच्चा नहीं।"

"नहीं......ओह! भगवान क्या तेरी सत्ता संसार पर नहीं है ?"

नहीं......। एक दिन यही मेरे पैर पकड़ते थे, मेरे न रहने पर व्याकुल हो जाया करते थे। मेरी एक एक वाणी को बड़े प्रेम से सुनते थे और आज निष्ठुर पाषाण की भाँति अचल खड़े होकर अश्रु गिरने पर भी मौन हैं।

मैं अब अपमान नहीं सहन कर सकती थी। सीमा का उल्लंघन सर्वदा हानिकारक होता है। पति—नहीं, नहीं, इस मायावी जगत का एक पुरुष मेरा इतना निरादर करे और मैं उसकी आकांक्षाओं पर मरती रहूँ। मेरा स्वाभिमान जागृत हुआ, भीख माँग लूँगी, दूसरे की सेवा कर जीविकोपार्जन कर लूँगी परन्तु अब इस द्वार पर न आऊँगी। प्रतिकार की ज्वाला धधकी और मैं उनकी

ओर एक कड़ी दृष्टि डालती हुई लौट पड़ी लुटी हुई सी, दुख के भार से दबी हुई। तब से मैं न गई, न गई स्वप्न में भी, विस्मृति में भी और भीख माँग माँगकर किसी भाँति अपना जीवन बिता रही हूँ। क्या करूँ ? संसार में गरीबी एक अभिशाप है। अब किसी तरह जीवन के दिन रो रोकर काट रही हूँ।"

स्त्री चुप हो गयी। ज्योत्स्ना के सम्मुख नारी जीवन का यह दुखद इतिहास बड़े ही प्रभावशाली रूप में व्यक्त हुआ। उसे संसार से घृणा होने लगी। वह थोड़ी देर चिन्ता में मौन हो गयी और विचारों की तरंगे उठने लगीं—पुरुष अपने स्वार्थ के लिए नारी की पूजा करता है, उसके पैरों पर गिरता है परन्तु स्वार्थ सिद्धि के पश्चात् वह स्वयं स्वतन्त्र होकर अपने इच्छाओं की पूर्ति करता है और स्त्री को शासन के कठोर घेरे में बन्द कर उसकी फड़कती आशाओं का बलिदान करता है। वह स्त्री-हृदय को पत्थर की भाँति अचल और नीरस समझता है, उसे अपनी अभिलाषाओं का तभी तक साधन बनाता है, जब तक उसका स्त्री से व्यक्तिगत स्वार्थ रहता है।

ज्योत्स्ना ने म्लान मुख से पूछा—

"तुम्हारे पति का नाम क्या है ?"

"क्या बताऊँ ?"

"बताओ तो सही, मैं भी समझूँगी कि वह मनुष्य कितना पाखंडी है" स्त्री ने हिचकिचाते हुए कहा—मि० एन० दत्त...।

"क्या कहा मि० एन० दत्त" आश्चर्य की हल्की चीख उसके मुख से निकल गयी।

"जी हाँ, वही मेरे पतिदेव हैं।"

ज्योत्स्ना के हृदय पर मानों किसी ने जलता अंगारा रख दिया। वह चौंक पड़ी और उसके मुख से सहसा निकला—

"तो क्या तुम मि० दत्त की विवाहिता पत्नी हो?"

"अब भी क्या आप को अविश्वास है। ठीक है दीन का पक्ष सर्वदा निर्बल रहता है क्योंकि उसके पास केवल अपनी वाणी का सहारा है!"

ज्योत्स्ना को इन वाक्यों से बड़ी ठेंस लगी। उसका मस्तिष्क इस रहस्य का गम्भीर रूप लेकर घूमने लगा। उसने स्त्री को ढाढ़स दिया और शीघ्र से शीघ्र वहाँ से निकल कर रास्ता तय करती अपने बंगले पर आयी। रात्रि हो चुकी थी। वह निष्प्राण सी आकर कोच पर धम्मसे बैठ गयी। तकिये पर मस्तक रख कर लेट गयी। कुछ देर तक उसको ऐसा विदित हुआ मानों उसके शरीर में शक्ति का नाम तक नहीं है।

जब कुछ समय बीतने पर चेतना परिष्कृत हुई तो वह युवती की बातों पर विचार करने लगी और सोचने लगी कि मि० दत्त कितना बड़ा नीच और पातकी है। एक सुशीला स्त्री का परित्याग कर मेरे रूप और सौन्दर्य को लूटना चाहता है। मुझे आज तेरा पाखंड मालूम हुआ। नारकीय, पापी, तुझे नर्क में भी स्थान नहीं मिलेगा। तू एक का जीवन भ्रष्ट कर दूसरे के सुहाग को भी छीनना चाहता है। सभ्यता की आड़ में एक का गला दबोच कर दूसरे के चमकते हुए हार को भी छीनना चाहता है। लुटेरा मजिस्ट्रेट। आज से यदि तूने मेरे मुँह पर मेरी प्रशंसा की तो तेरे साथ बुरा से बुरा व्यवहार करूँगी, तुझे धक्के देकर निकाल दूँगी। मेरे बिना तू रह नहीं सकता? आततायी पाखंडी तू बातों के फेर में पिता को भुला कर मुझे अपनी विलासिता का साधन बनाना चाहता है। मैं तेरा ढोंग समझ गयी हूँ, तेरा सारा भण्डाफोड़ कर दूँगी। ओह, यह विडम्बना! तुमने आस्तीन में साँप छिपा रक्खा है। तेरा सारा गर्व चूर २ कर दूँगी। तेरी

आशाओं पर तुषार हो गिर जाऊँगी। तू एक सती साध्वी स्त्री के शाप से जल जल कर भस्मीभूत होगा। तूने जिस कपट का जाल बिछाया है उसी में स्वयं फँस कर अपने अस्तित्व को खो देगा। तेरे रूप का मिथ्या गर्व हिम की भांति पिघल कर धूल के कण में समा जायेगा। दुष्टात्मा......

वह क्रोध से, अपमान से दीर्घ श्वासें लेने लगी।

× × × ×

१६

कृष्णमुरारी अनेकों दुखों को सहकर अपना स्वास्थ्य सुधारने में सफल हुए। रोग शय्या पर आपने जीवन के बड़े ही कटु अनुभव किये थे, जिससे उनके जीवन में और भी गम्भीरता आ गयी और वे अपना जीवन समाज सेवा में बिताने लगे। जब वे रोगशैय्या से उठे तो एक पत्र ज्योत्स्ना के पास लिखने की इच्छा हुई परन्तु अपनी अवस्था और उसकी मनोवृत्ति दोनों की असमानता देखकर वह शान्त हो रहे।

मनुष्य को जब जीवन का कुछ कटु अनुभव होता है तभी उसको संसार की विचित्रता का अनुभव होता है। वह सागर के सामने गम्भीर और आकाश की भाँति निस्पन्द हो जाता है। कृष्णमुरारी का जीवन सरल तो था ही, अब उनमें त्याग ही श्रेष्ठ हो गया। उन्होंने वहाँ की पहाड़ी जातियों को एकता का पाठ पढ़ाया और उनकी दीनता को दूर करने का प्रयत्न करने लगे। उन्हें अपने व्यवसाय से घृणा हो गयी और जीवन में ऐसे

घृणित व्यवसाय भविष्य में न करने का पूर्णतया विचार भी कर लिया। जीवन की कठिन साधनाओं से ऊबकर जिस शान्ति को वह खोज रहे थे, वह उनको अवश्य प्राप्त हो रहा था, फिर भी एक कमी थी जो अधूरी ही रहना चाहती थी। उनके प्रयत्नों को प्रोत्साहन देनेवाला कोई न था। उनके सिद्धान्तों की प्रशंसा करने वाला उनके साथ न था। सभी कार्यों में एक सन्तोष था परन्तु हृदय......एक भावुक व्यक्ति का हृदय कितना कोमल होता है इसका अनुभव वही कर सकता है जिसका हृदय भावुकता के रंग में रंगा हो, जो साधारण से साधारण विषयों पर बड़ी दूरतक सोच जाता हो। कृष्णमुरारी को भावुक हृदय मिला था इसलिए वह उसके आनन्द के लिए एक कोमल कौतूहल चाहते थे......नारी। पुरुष को उन्नत बनाने वाली, उसको देवता, महान और विश्वविजयी बनाने वाली, हृदय की कोमल अनुभूति में रस पैदा करने वाली स्त्री, परन्तु वह उस अमूल्य पदार्थ से दूर थे आकाश से पृथ्वी की भाँति। इसीलिए उन्हें अपने जीवन की गति से सन्तोष न था। वह ज्योत्स्ना से दूर रहकर भी उसको दूर नहीं रखना चाहते थे। अब उनको अपनी दुर्बलतायें विदित हो चुकी थीं। परन्तु विवश थे।

जिस भाँति ज्योत्स्ना एक जाल में पड़ी भटक रही थी उसी भाँति कृष्णमुरारी भी एक माया में फँसे किनारा खोज रहे थे। धीरे धीरे उनके विचारों में मौकिकता का विकास हुआ और उनके उपनाम से उनके लेख समाचार पत्रों में निकलने लगे। साहित्य क्षेत्र में इस नवीन लेखक की धूम-सी मच गयी। यद्यपि लाख प्रयत्न करने पर भी उनकी विचार शैली, भावों को व्यक्त करने के उपकरण, परिवर्तित नहीं हो सके फिर भी उनमें एक अनूठापन आ गया। लोगों

को इस लेखक के विचारों से बड़ा सन्तोष हुआ। कृष्णमुरारी के विचार अब सामाजिक जीवन पर भी पड़ने लगे और उन्हें इस सेवा से बढ़कर दूसरा कोई कार्य रुचिकर न लगा। उन्होंने उस पहाड़ी जाति में नवीन जागृति का संचार किया और उनमें संगठन की एक स्फूर्ति पैदा की। उन्होंने उनके लिये कई योजनायें बनाईं और उनमें उनको सफलता भी मिली।

कृष्णमुरारी वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को देखकर आनन्द से भर जाते थे, उन्हें अब नगर का कोलाहलपूर्ण जीवन, संघर्षों के परिणाम से घृणा हो गयी। उन्हें यद्यपि प्रेम की अलौकिक व्यञ्जना ही रुचिकर हुआ करती थी परन्तु अब उसमें लौकिकता का सुन्दर रूप हो गया और उसके फलस्वरूप हृदय की कोमलता मधुरता का आश्रय ग्रहण कर उनके भावों पर अपनी मुहर अंकित करने लगी।

इस असीम संसार में मनुष्य का कर्म-क्षेत्र बड़ा ही विस्तृत है। सारे प्राणी इसके ऊपर अपने जीवन का नाटक करते हैं और उनमें उनको सफलता की आशा भी रहती है परन्तु कदाचित ही कुछ ऐसे भाग्यशाली होते होंगे जिनको सफलता अपनी वर-माला पहनाती होगी! संसार का विश्वव्यापी संग्राम हृदय में एक उथल पुथल मचा देता है, उसी की अन्तर्वेदना से मनुष्य अपने को महान से महान बनने का प्रयत्न करता है, परन्तु उसके विचार सीमित हो जाते हैं, आकांक्षायें शिथिल पड़ जाती हैं। मनुष्य पूर्ण नहीं है, उसको अपनी पूर्णता पर गर्व नहीं करना चाहिए। सभी के चरित्र में एक न एक कमी रहती ही है। यदि यह कमी न हो तो वह मनुष्य रोते हुए भी देवता हो सकता है।

मनुष्य से ही त्रुटि होती है। जब कभी कोई अपने अतीत पर एक दृष्टि डालता है तो उसे कितने दोष स्पष्ट दृष्टिगोचर होते

हैं और देखता है कि उसने अपने पिछले जीवनमें कितना गुरुतर अपराध या पाप किया है। उसके लिए उसे पश्चात्ताप और ग्लानि होती है और वह इन्हीं साधनाओं से उसका प्रायश्चित होता है। ये हृदय के दो ऐसे तत्व है जिनकी साधना न करने से पापों या अपराधों का स्मरण ही नहीं होता। यही नहीं वरन उस प्रक र की त्रुटियाँ जिन्हें पाप कह सकते हैं, निरन्तर करने में संलग्न हो जाता है। इसके साथ ही साथ मनुष्य जीवन को उच्चतर बनाने के दो साधन ऐसे हैं जिनके कारण मनुष्य संसार-क्षेत्र में सभी कठिनाइयों का सामना करता है। उसका साहस ही प्रशंसा और यश है, ये मानव के दो पुरस्कार हैं जिनके आधार पर वह अपने प्राणों को तुच्छ समझता है।

ठीक इसके विपरीत ही लालसा और लोभ मनुष्य को पाप की ओर अग्रसर करने वाले मार्ग हैं। इनका आराम इतना रुचिकर होता है कि वह कठिन से कठिन, और नीच से नीच अपराध करने को उद्यत हो जाता है—

पापी मनुष्य स्वयं सोचता है कि उसने ऐसा घोर अपराध कैसे कर दिया है। उसे अपने ऊपर घृणा होने लगती है और उसका विश्वास अपने ऊपर से उठ जाता है। वह संसार के सामने अपने को तुच्छ समझता है परन्तु विश्व में ऐसे दोष सभी में पाये जाते हैं।

विश्व की सभी सुन्दर वस्तुओं में एक आकर्षण रहता है और इसलिए मनुष्य भी उस आकर्षण की ओर अधिक बढ़ता है और उसको पाने की लालसा से पाप करता है अर्थात् मनुष्य का हृदय बड़े बेग से पाप करने लगता है और उस समय उसकी चेतना इतनी लुप्त हो जाती है कि वह पुण्य-पाप, ऊँच-नीच, उत्थान-पतन किसी का भी भेद नहीं समझता क्योंकि

आकर्षण ही पाप का रूप बन जाता है और आगे चल कर वही पाप फिर एक आकर्षण हो जाता है, परन्तु प्रेम-निष्पाप होता है, निस्वार्थ होता है। उसमें जब स्वार्थ अथवा वासना की छाया आ जाती है वह एक विचित्र आकर्षण के रूप में परिवर्तित हो जाता है,जिसके बिना मनुष्य पागल, हृदय व्याकुल हो उठता है। उसमें इतनी शक्ति आ जाती है कि मनुष्य चेतनाहीन होकर उसकी ओर बढ़ता है। पाप करते करते जब मनुष्य की बुद्धि इतनी विकृत हो जाती है कि वह अपने को इसके बुरे या अच्छे परिणाम को समझने में असमर्थ पाता है तभी वह पाप से प्रेम करने लगता है।

इसीलिए एक अपराधी का जीवन ऐसे फंदे में पड़ा रहता है जहां एक ओर भय का साम्राज्य है तो दूसरी ओर मृत्यु की सूचना, एक ओर रौरव का नर्क दृश्य है तो दूसरी ओर पतन की पराकाष्ठा। एक अपराधी का हृदय सर्वदा संशकित रहता है। वह शुभ कार्य सोच तक नहीं सकता, परोपकार की कल्पना तक नहीं कर सकता। सच्चे प्रेम को वह ढोंग समझता है परन्तु प्रेम पवित्र है, निर्मल है और स्वच्छ है। उसमें सुधा की धार है, जीवन की मस्ती है।

कृष्णमुरारी को अलका की भी स्मृति कभी कभी घबड़ा दिया करती थी, वह उसके निस्वार्थ प्रेम पर मुग्ध थे परन्तु उसके समक्ष अपनी दुर्बलता प्रगट नहीं करना चाहते थे।

अलका जब सुनील के यहाँ से आयी तब उसने स्वयं बातों की पुष्टि के लिए ज्योत्स्ना से मिलने का विचार किया। वह ठीक दूसरे दिन सन्ध्या के समय उसके यहां पहुँची। ज्योत्स्ना उस समय अपने कमरे में बैठी भावी जीवन की जटिल गुत्थियों को सुलझाने का प्रयत्न कर रही थी कि इतने में नौकर ने आकर

एक स्त्री के आने की सूचना दी। ज्योत्स्ना उठी और बाहर गयी। उसने देखा कि अलका खड़ी है। पहले तो उसे घृणा हुई परन्तु अपने मन का भाव छिपाते हुए बोली—

"आइये, आप भीतर क्यों नहीं चली आईं ?"

"घर में एकाएक जाना मैंने उचित नहीं समझा।" उसने ससंकोच कहा।

"यह भी तो आप ही का घर है।"

अलका हँसती हुई ज्योत्स्ना के कमरे में आकर कुर्सी पर बैठ गयी। ज्योत्स्ना भी कोच पर बैठती हुई बोली—

"कहिए और सब कुशल है ?"

"आप की कृपा है।"

"आप कैसे इधर आ पड़ीं"

"मैं यहाँ कुछ काम से आयी थी। इसी बीच में आपका ध्यान आया, सोचा कि मिलती चलूँ, बहुत दिन बीत गए। दूसरे मुझे मालूम था कि वकील साहब कहीं चले गये हैं, सम्भवतः उनसे यहीं भेंट हो जाय।"

ज्योत्स्ना जल सी उठी और बोली—

"यहाँ आना तो दूर रहा एक पत्र तक नहीं लिखा उन्होंने।"

"तो क्या आप को यह मालूम नहीं है कि उनका बहुत दिनों से पता नहीं है ?"

"नहीं तो ?" उसने बनावटी उत्सुकता से पूछा—

"तब वह कहाँ गये, कुछ पता ही नहीं चलता। आप कहीं उनका पता लगवाइये।"

"जब पता ही नहीं है तो व्यर्थ में खोज करने से लाभ।"

"तब तो आप बड़ी निष्ठुर मालूम पड़ती हैं, पति के लिए पत्नी न चिन्ता करेगी तो कौन करेगा। उनको तो आपके अति-

रिक्त और कोई है भी तो नहीं, जो उनकी खोज खबर ले।"

"पुरुषों की खोज खबर लेनेवाले बहुत होते हैं परन्तु स्त्रियों को कोई नहीं पूछता।"

अलका, उसका व्यंग समझ गयी और उदास होकर बोली—

"नहीं, स्त्रियों की भी पूछ होती है परन्तु उसी तरह जैसे किसी होटल की एक रात।"

ज्योत्स्ना ने तनी हुई आँखों से अलका को देखा और उसकी वाणी अन्यमनस्कता लिये हुए फूटी—

"स्त्रियों के भाग्य में लिखा ही क्या है! दुःख और अपमान। इससे बढ़कर उसके ऊपर समाज का अभिशाप रह रहकर टूट पड़ता है। वह अपने दुर्बल हृदय से उसको सहती रहती है, मूक पशु की भांति।"

"क्या किया जाय, यही हमारी दुर्बलता और गर्व का परिणाम है, नहीं तो स्त्रियाँ समाज की जननी हैं, वे रत्नों की खान हैं। वे किसी भी देश व राष्ट्र को उन्नत और अवनत कर सकती हैं। उनमें एक सन्त प्रेरणा है जिसको पुरुष जाति भी नहीं दबा सकती है। परन्तु जब वे अपने कर्तव्य और त्याग को छोड़कर जीवन की लालसा के मार्ग में बढ़ती हैं तभी उनकी महत्ता गिर जाती है।"

ज्योत्स्ना समझ गयी कि यह सब प्रहार मुझ पर है। उसको यह अनुभव होने लगा कि सभी उसको बुरा ही बनाने आते हैं और सभी उसको घृणा की दृष्टि से ही देखते हैं। वह नीची होती गयी, डूबती सी, दबी सी हरणी की भांति। अलका ने सकुचाकर प्रश्न किया—

"आप जब से आयीं तब से क्या उन्होंने कोई पत्र नहीं लिखा? मैंने उनसे पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया था कि ज्योत्स्ना

अब चली गई सर्वदा के लिए। वह बड़े उदास, दुखी थे और इसी कारण कहीं चले गये। मैंने उनकी बड़ी खोज की परन्तु पता नहीं चला। मेरे हृदय में कितनी ही शंकायें उठने लगीं और उन्हीं शंकाओं को मिटाने के लिए ही मुझे यहाँ आना पड़ा।

"आप उनका क्यों इतना ध्यान रखती हैं?" स्वर में ईर्ष्या थी।

"क्यों? क्या मेरा उनपर कोई अधिकार नहीं। परमात्मा की वस्तुओं पर सबका समान अधिकार होता है, सूर्य का प्रकाश सभी लेते हैं, चन्द्र की चाँदनी को देखकर सभी प्रफुल्लित हो जाते हैं, वायु स्वयं सबके साथ घूमता रहता है, जल सभी को जीवन दान देता है। पावस, शीत तथा ग्रीष्म सभी के लिए आते हैं, प्रकृति सभी जीवों पर समान ध्यान रखती है। तो क्या मनुष्य के गुणों से उनके प्रति आकर्षित होना स्वाभाविक नहीं है? महान व्यक्ति अपने समय का प्रतिनिधि होता है, अपने युग का निर्माता होता है। मैं उनके गुणों पर मुग्ध हूँ। आप यह न सोचें कि मैं आपका सुन्दर सौभाग्य छीनना चाहती हूँ। मैं तो आपके भाग्य की शुभकामना करती हूँ।"

ज्योत्स्ना को अपनी स्थिति पर गर्व भी हुआ और द्वेष भी। हृदय रोने लगा पति के लिए, जिसके गुणों के लिए लोग तरस रहे हैं अपने को लुटा रहे हैं। उसी अमूल्य ऐश्वर्य-राशि को छोड़ कर वह कितना अभिशापमय जीवन व्यतीत कर रही है। वह अपने को न सम्भाल सकी परन्तु अलका के सामने दृढ़ होकर बोली—

"अच्छी बात है, आप जिस प्रयत्न में लगी हैं उसमें आपको सफलता मिले, मेरी यही शुभकामना है।"

अलका चली गयी परन्तु ज्योत्स्ना को सन्तोष न हुआ और न शान्ति हुई। उसको यह पूरा विश्वास हो गया कि पतिदेव के कहीं

चले जाने में इसी का हाथ है। नहीं तो वह सीधे साधे विचार वाले व्यक्ति कहाँ जाते। मैं यह मान सकती हूँ कि उन्हें मेरे इस व्यवहार से बड़ी मार्मिक पीड़ा पहुची होगी और उन्होंने मेरे विषय में भिन्न २ प्रकार की कल्पनायें की होंगी परन्तु अब...... वह रोने लगी।

अलका वहाँ से चली तो रास्ते में सुनील मिल गया और उसने ज्योत्स्ना के विषय में सभी बातें पूछ डालीं। अलका भी निसंकोच भाव से सभी कहती गयी। सुनील ने सब बातों का निष्कर्ष निकाल कर पूछा—

"आप क्यों वकील साहब के पीछे इतनी व्याकुल हैं? वह बच्चे नहीं हैं जो खो जायेंगे। कहीं इच्छा हुई होगी, चल दिये होंगे, फिर आ जायेंगे।

"ठीक है परन्तु मैं हृदय के आगे लाचार हूँ।"

सुनील बड़े सोच में पड़ गया। एक पुरुष के लिए दो स्त्रियों का हृदय व्याकुल है। एक चाहती है तो दूसरी उससे घृणा करती है, एक के हृदय में शुद्ध प्रेम है तो दूसरे में केवल एक इच्छा। विचित्र समस्या है। वह यही सोचता हुआ बोला—

जब आप जानती हैं कि ज्योत्स्ना वकील साहब की धर्मपत्नी है, तब आप उसका अधिकार क्यों छीनने का प्रयत्न करती हैं?"

"मैं अधिकार नहीं छीनती, अधिकार को महत्ता देती हूँ। मैं उनके गुणों पर मुग्ध हूँ, उनके सौन्दर्य या उनके ऐश्वर्य पर नहीं।"

"यह तो आपका विचित्र उत्तर है। आप उनसे प्रेम करती हैं और उसको प्रगट भी नहीं करना चाहतीं। किसी की ओर शुद्ध हृदय से आकर्षित होना ही प्रेम है।"

अलका चुप हो गयी। उसने एक बार सुनील की ओर देखा

और सुनील ने भी उसकी ओर। नेत्रों ने अपनी मौन भाषा में कदाचित कुछ संकेत किया हो परन्तु दोनों के मुख पर एक कातरता थी। दोनों के हृदय में द्वन्द्व मचा हुआ था। वे मौन होकर सड़क पर चल रहे थे।

यह मिलन कौतूहलमय था।

ज्योत्स्ना अपने दुखी हृदय को सान्त्वना देने के लिए प्रभा के पास पहुँची। प्रभा पहले की प्रभा न थी, उसमें अब विशेष परिवर्त्तन हो चला था। अब वह धीरे धीरे शिक्षित स्त्रियों की भाँति परिवर्तित हो चली थी। उसने ज्योत्स्ना की सहायता से एक बालिका-विद्यालय में अध्यापन का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। अब वह पहले से प्रसन्न रहने लगी और उसके पति का अत्याचार भी उस पर कम होने लगा था। उसकी प्रतिभा जो परिस्थिति के धूल से दबी हुई थी एकाएक चमक उठी और वह उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगी।

जब ज्योत्स्ना प्रभा के घर पहुँची, उस समय वह बैठी पुस्तक पढ़ रही थी। ज्योत्स्ना को देखते ही वह उठ खड़ी हुई और आदर पूर्वक बोली—

"आइये, बैठिये।"

"मैं बैठने नहीं आई हूँ। तुम्हें साथ लेकर एक जगह चलूँगी।"

"कहाँ ?"

"तुम तैयार हो जाओ, रास्ते में बतलाऊँगी।"

प्रभा शीघ्र ही तैयार हुई और दोनों मि० दत्त की परित्यक्ता पत्नी के घर की ओर चलीं। ज्योत्स्ना रास्ते में युवती की कथा प्रभा से कहती जा रही थी और मि० दत्त के ऊपर उसे एक क्षोभ हो रहा था। दोनों अपनी भाव-धाराओं में इतनी तल्लीन थीं कि उन्हें अपने अस्तित्वका भी ध्यान न था। कुछ देर बाद प्रभा ने

सामने दूर तक देखा। सारा पथ स्त्री पुरुष से भरा था, लोग प्रसन्न मुख दिखलाई दे रहे थे कि एकाएक उसकी दृष्टि सुनील पर पड़ी। उसने धीरे से कहा—

"सुनील जा रहे हैं।"

"कहाँ ?" ज्योत्स्ना का हृदय धक कर उठा।

"वह देखो, दूसरे फुटपाथ पर। उनके साथ एक स्त्री भी है।"

ज्योत्स्ना ने देखा कि सुनील सूट पहने जा रहा है और उसके साथ अलका भी। अलका को देखते ही वह स्तम्भित हो गयी। उसने बार बार उन दोनों को देखा कि दोनों बातें करते हुए चले जा रहे हैं। वह सोचने लगी—अलका का साथ सुनील से कैसे हुआ। यह तो लाहौर की रहने वाली है, सुनील तो मेरे यहाँ केवल एक ही बार गया था। उस समय अलका भी नहीं आयी थी। फिर इसका साथ कैसे हुआ। अलका ने अवश्य सभी मेरी बातें सुनील से कहीं होगी और सुनील ने भी मेरे चरित्र पर आक्षेप किया होगा। दोनों के विचारों में मैं कितनी तुच्छ और दुराचारिणी दृष्टिगत हुई हूँगी, इसकी कल्पना से मुझे रोमांच हो आता है। अलका विचित्र स्त्री है, वह मेरे पति के लिए इतनी दूर चली आयी और सुनील से भी मिल गयी जैसे पानी से पानी मिलता है। दोनों ने मिलकर सारा रहस्य एक दूसरे पर प्रगट किया होगा, मेरे विषय में क्या २ समझा होगा। मैं सभी के नेत्रों से गिर रही हूँ, कटे वृक्ष की भाँति, निसहाय और निरालम्ब होकर, केवल एक पति के लिए......। वह रो पड़ी। उसके नेत्रों में आँसू आ गये परन्तु प्रभा के सामने उसने उसको प्रगट होने न दिया।

जब दोनों उस युवती के घर पर पहुँची तो उसने बड़े प्रेम से उनका सम्मान किया और आदर सहित बिठाया। यहाँ ज्योत्स्ना

का हृदय अधिक दुखी नहीं होता था क्योंकि उसमें बढ़कर दुखी पतित्यक्ता नारी सुधा सामने थी। ज्योत्स्ना ने सुधा से प्रभा का परिचय कराया और दोनों में एक प्रेम एवं सहयोग की भावना सर्वदा ससम्मान रखने की प्रतिज्ञा करायी। ज्योत्स्ना दुखित थी इसलिए जिस उद्देश्य को लेकर चली थी वह विस्मृत कर बैठी। उसने प्रभा से बतलाया कि सुधा को भी अपनी ही भाँति बनाने का प्रयास करो। ज्योत्स्ना को अब सुधा से बड़ी सहानुभूति हो चली थी। प्रभा ने भी सुधा को पूर्ण आश्वासन दिया।

थोड़ी देर बाद दोनों घर आयीं परन्तु ज्योत्स्ना बड़ी दुखी थीं।

× × × ×

१७

रात्रि को घर आकर ज्योत्स्ना अपने कमरे में कुछ समय तक इधर उधर घूमती रही। आज उसके रूप और गर्व का अधः पतन हुआ था, उसके चरित्र पर ठोकर मारी गयी थी और उसका मित्रों के नेत्रों से तिरस्कार हुआ था। मनुष्य, जिसको स्वाभिमान का गर्व है वह अपना अपमान नहीं सह सकता। ज्योत्स्ना का सारा गर्व चूर चूर हो गया था, शीशे के टुकड़े की भाँति। उसे अपने जीवन से घृणा हुई, उसे अपने यौवन और सौन्दर्य से घृणा हुई। उसने अपनी दुर्बलता का परिणाम अपनी आँखों देखा और उसके लिए पश्चात्ताप करने लगी। उसे कृष्ण मुरारी आज बड़े अच्छे प्रतीत हुए, जिनसे वह घृणा करती थी, जिनके स्वभाव और व्यवहारों से उसे चिढ़ थी, वही उसके

आराध्य होकर आये। वह उनको देखने के लिए व्याकुल हो पड़ी, तड़पने लगी, पानी के बिना मछली की भाँति। उसने उनका एक चित्र जो उपेक्षा और अवहेलना की दृष्टि से अलग रख दिया था, निकाला और सजल नेत्रों से उसे देखने लगी। चित्र में वह मुस्करा रहे थे, मानो कह रहे हों......ज्योत्स्ना, तुमने मुझे असहाय छोड़ दिया केवल अपने सुख के लिए। मैं तुम्हारे बिना जीवित नहीं रह सकता, यह जानते हुए भी तुमने निराशा के अन्धकार में ढकेल दिया। खैर तुम्हारे आनन्द में मैं बाधक भी नहीं होना चाहता।

ज्योत्स्ना सिसकने लगी और उस चित्र को छाती से लगा लिया। उसे सन्तोष न होता था। उसने पति को धोखा दिया था। वह काँप उठी किसी अन्तर्वेदना के अभिशाप से, किसी अज्ञात वियोग की पीड़ा से। वह फूट पड़ी, आँसुओं की धारा में व्याकुल होकर, दुखी होकर तड़पती हुई। उसके आँसू कृष्णमुरारी के चित्र पर गिरने लगे। वह चित्र को जितना देखती, उतनी उसकी प्रेरणा बढ़ती जा रही थी। वह उस घर में घबड़ाने लगी। उसे कमरे की चमकती वस्तुएँ काटने को दौड़ने सी लगं। उसे मालूम हुआ कि रात्रि की अँधियारी, दाँत निकाले उसे निगलने आ रही है, ससार का कुचक्र लाल नेत्रों से उसको खाने के लिए बढ़े चले आ रहे हैं। वह भय से खड़ी हो गयी और इधर उधर पागल की भाँति दौड़ने लगी। उसका स्वर रुक गया, स्वासों में गम्भीरता आ गयी। वह चिल्ला उठी—"पतिदेव, क्षमा करो, बचाओ, नहीं ये राक्षस मुझे खा डालेगें, बचाओ बचाओ" कहती हुई वह चीख मार कर गिर पड़ी।

चिल्लाने का स्वर सुनते ही उमेश बाबू दौड़ कर कमरे में दौड़कर आये तो देखा कि ज्योत्स्ना पृथ्वी पर अचेत पड़ी है। उनका

हृदय पुत्री की यह अवस्था देखते ही धड़कने लगा। उन्होंने शीघ्र ही उसे चित्त लिटा दिया तो देखा कि उसका आंचल आंसुओं से भीग गया है और मुख पर भय की एक छाया है। उन्होंने उसके हाथ में एक चित्र देखा तो उसे ले लिया। चित्र देखते ही उनके आश्चर्य का पारावार न रहा। तो, यह कृष्ण मुरारी का चित्र है। इस समय यह ज्योत्स्ना के हाथ में कैसे ... वह मौन हो गये परन्तु हृदय विचार-तरंगोंसे मथित होने लगा—क्या ज्योत्स्ना कृष्ण मुरारी से प्रेम करती है, तभी तो यह उसके चित्र को हाथ में लिए रो रही थी? क्या उसे यहां सुख नहीं है? क्या उसको मि० दत्त से प्रेम नहीं है? नहीं, ज्योत्स्ना तुम सुखी नहीं हो, मेरे घर में, पिता के घर में तुमने अपने सुख के बीस लम्बे वर्ष, स्वप्नों में काट दिये। मैंने तुम्हारे लिए, तुम्हारे सुख के लिए धन को पानी की भांति बहाया, तुम्हारे मुख पर मुस्कान देखने के लिए चरमराती हड्डी को, आशा की बलि दे देकर अब तक सम्भाला परन्तु तुम्हें प्रसन्न न कर सका, तुम्हारी हृदय कलिका अपने स्नेह झोंको से विकसित न कर सका। जब से तुम वहां से आयी तब से तुम चन्द्र की ज्योत्स्ना की तरह नहीं छितरायी, बल्कि बादलों की सघन छाया में छिपती चली गयी। ठीक है वैवाहिक जीवन के पश्चात पुत्री को कोई भी अपने घर में प्रसन्न नहीं रख सकता।

रमेश बाबू ने तुरंत डाक्टर को बुलाया और स्वयं उसकी चेतना को वापस लाने के लिए प्राणप्रण से चेष्टा करने लगे। मुख पर ठंढे जल का छींटा दिया। बिजली का पंखा खोल दिया परन्तु चेतना न लौटी। श्वांसो का वेग प्रबल होता गया। वह घबड़ा कर इधर उधर देखने लगे कि डाक्टर भी आ पहुंचा। उसने आतेही ज्योत्स्ना की परीक्षाकी और बतलाया कि हृदय

पर कोई मानसिक वेदना का गहरा प्रहार हुआ है जिसको यह सहन नहीं कर सकी हैं, इसलिए मूर्छा आ गयी है।

उमेश बाबू तो पागलों की तरह हो रहे थे, उन्होंने घबड़ा कर पूछा—

"कोई खतरा तो नहीं है डाक्टर साहब, मेरी ज्योत्स्ना बच तो जायेगी।"

"आप घबड़ाइये नहीं, अभी इनकी दशा सुधर जाती है, केवल कुछ दुर्बलता है।

"डाक्टर साहब! इसको क्या हो गया है? यह तो किसी की चिन्ता भी नहीं करती थी, इसके सुख के सभी साधन मैंने प्रस्तुत किये परन्तु इसके भाग्य में सुख ही नहीं बदा है।" उनके मुख पर कातरता छा गयी। डाक्टर ने दवा दी और नाड़ी देखने लगा। इतने में ज्योत्स्ना ने धीरे से आंखें खोलीं और चिल्ला उठी—"बचाओ"। उमेश बाबू की घबड़ाहट और बढ़ गयी। उन्होंने रोते हुए पूछा—

"डाक्टर साहब, मेरी ज्योत्स्ना को किसी तरह बचाइये, मेरी ज्योत्स्ना को, मेरे प्राणों की आत्मा को, मेरे आंखों की पुतली को। आप जो कहेंगे, मैं दूँगा।" उनके स्वर में आवेग था।

डाक्टर ने माथे का पसीना पोंछते हुए कहा—

"आप व्यर्थ में घबड़ाते हैं, अभी इनकी तबियत सुधर जाती है। डाक्टर ने दूसरी दवा दी और बैठ कर स्वांस की गति देखने लगा। उमेश बाबू तो पीले पड़ते जा रहे थे, उन्हें भय हो रहा था कि कहीं ज्योत्स्ना के हृदय की गति न बन्द हो जाय।

कुछ देर पश्चात ज्योत्स्ना ने आंखे खोलीं और सामने घबड़ाये पिता और डाक्टर को देखकर उठने का उपक्रम करने लगी। डाक्टर ने उठने से मना किया और बोला—

"आप अभी आराम कीजिये, दो एक दिन कहीं मत जाइये और न किसी बात की चिन्ता किजिये। आप के हृदय पर कुछ चोट पहुँची है, जिससे आप मूर्छित हो गयी थीं।"

डाक्टर चला गया। उमेश बाबू ने तब सन्तोष की साँस ली और उसके मस्तक पर हाथ फेरते हुए बोले—

"बेटी तुम्हें क्या हो गया था कि तुम चिल्लाकर बेहोश हो गयी।"

"मुझे कुछ भी नहीं मालूम। मैं अभी देख रही हूँ कि आप लोग मेरी दवा कर रहे हैं।"

"छिपाओ मत ज्योत्स्ना, धधकती ज्वाला को अपने कोमल हृदय के भीतर। मैं तुम्हारा पिता हूँ, मुझसे सब बातें साफ २ कहो।"

"मेरा माथा घूम रहा है, इस समय मैं अधिक नहीं बोल सकती। कल सब कहूँगी......।" वह रो पड़ी।

उमेश बाबू ने करुण स्वर में कहा......

"अच्छा......। सो रहो" और वह चले गये।

ज्योत्स्ना पुनः विचार धारा में बहने लगी—पिताजी ने पतिदेव का चित्र देखा होगा, मेरे आंसुओं से भींगे अंचल को देख कर उनको कैसी धारणा हुई होगी। वह मुझे विश्वास-घातिनी समझेंगे। वह सोचेगें कि मैं जिसके लिए इतना जंजाल फैला रहा हूं, उसी से भीतर भीतर यह मुझसे छल कर रही है। पतिदेव को वह घृणा की दृष्टि से देखते हैं और मैं उनको प्रेम दृष्टि से। आजकी घटना से वे और उद्विग्न हो गये होंगे। सम्भवतः उनकी धारणा परिवर्तित हो जाय। वह मेरा विवाह मि० दत्त से करना चाहते हैं केवल मेरे सुख के लिए परन्तु मैं उस पापी का मुँह भी देखना नहीं चाहती। उस दुष्ट की

छाया पड़ते ही मैं जल जाऊँगी। यदि अब वह मुझसे बोलेगा तो उसकी अच्छी खबर लूँगी। इच्छा होता कि मैं पिताजी से जाकर साफ-साफ कह दूँ कि मैं उनके बिना नहीं रह सकती। मेरे वे पति हैं और मैं उनकी स्त्री। चाहे जैसे वे मुझे रक्खें वैसे मैं रहूँगी। मैं कष्ट सहूँगी, मैं प्रताड़ना सहूँगी परन्तु उनके बिना नहीं रह सकूँगी। मुझे विश्वास है कि जब मैं उनके पैरों पर गिर क्षमा मागूँगी, तो अवश्य वह मुझे स्वीकार करेंगे और मेरा आदर करेंगे परन्तु उनका पता भी तो नहीं है। उन्हें मेरे लिए क्या २ ठोकरें खानी पड़ रही हैं। हे भगवान मुझे मृत्यु भी दे तो मैं सहर्ष स्वीकार करूँगी। इस निरादर से, इस प्रताड़ना से बच जाऊँगी...... ।

वह इसी धारा में बहती २ निद्रा के मधुर पलनों में झूमने लगी। प्रातः काल हुआ। उमेश बाबू को रात भर नींद न आयी थी। वे इसी चिन्ता में पड़े गोते खा रहे थे कि ज्योत्स्ना जब अपने पति से प्रेम करती है तब अवश्य उसके यहां इसे जाना चाहिए। परन्तु यह तो उससे अप्रसन्न होकर आई है? सम्भव हो सकता है कि किसी कारण मन मुटाव हो गया हो, तो इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उससे सम्बन्ध ही विच्छेद हो जाय। यदि मि० दत्त से इसका सम्बन्ध करा दूँ तो कुछ समय तक तो इसके दिन सुख से कटेंगे लेकिन विवाह का रहस्य कब तक छिपा रहेगा? उसके खुलते ही मि०दत्त घृणा करने लगेगें। इसे फिर जीवन के चक्कर में पड़ कर अपने को दुखमय अवस्था में रह कर ही सन्तोष करना पड़ेगा। उस समय कृष्ण मुरारी भी इसको ग्रहण करना एक पाप समझेंगे। भयंकर, विडम्बना है, यह जीवन कितना संघर्षमय है? मनुष्य इस क्षणिक जीवन के लिए कितनी कोशिशें करता है, परन्तु उसे आन्तरिक सुख नहीं मिलता। वास्तव

में धन किसी को सुखी नहीं बना सकता। हृदय का सुख सबसे बड़ा सुख है। जिनके पास धन नहीं है वह यही सोचते हैं कि धनवान बड़े आनन्द से जीवन व्यतीत करते हैं। चैन की बंसी बजाते हैं परन्तु उन्हें यह नहीं मालूम कि धन एक मद है जो मनुष्य को बुरा से बुरा कर्म करने के लिए बाध्य करता है। पेट भर भोजन और प्रेममय जीवन से बढ़कर संसार में कोई सुख नहीं हैं। व्यर्थ की चिन्ता जीवन को और कंटकों में फसा देती है।

उमेश बाबू उठते ही ज्योत्स्ना के कमरे में पहुँचे परन्तु अभी वह सो रही थी। मलीन मुख तकिये पर पड़ा था, बिखरे केश नीचे लटके थे, आँसुओं के सूखे धब्बे अब भी उसके कपोलों पर अंकित थे। वह टेढ़ी अपने शैय्या पर पड़ी थी। नेत्र स्वच्छ कमल की भांति बन्द थे, अधरों की लालिमा हल्की पड़ गयी थी। वह पड़ी थी लुटी हुई, मानों सौन्दर्य राशि बिखर गयी हो। ज्योत्स्ना प्रातःकालीन बेला में पीली पड़ रही थी। इच्छा हुई जगाकर सब बातें पूछने की, परन्तु यह सोच कर कि पूछने से चिन्ता बढ़ेगी और रोग बढ़ने की सम्भावना है, वह धीरे से कमरे के बाहर आये और नौकर को दवा देने को कह कर कहीं चले गये।

उमेश बाबू के चले जाने के करीब एक घन्टे पश्चात् ज्योत्सना की आँखें खुलीं। वह थोड़ी देर तक इधर उधर देखती रही, फिर एकाएक उठी तो उसे शरीर में बड़ी दुर्बलता का अनुभव हुआ। वह कुछ देर बैठी रही और कमरे की वस्तुओं को बड़े ध्यान से देखती रही। आध घन्टा व्यतीत हो जाने पर वह धीरे धीरे उठी और कमरे की सभी वस्तुओं को एक बार संदिग्ध दृष्टि से देखने लगी। कुछ देर इसी भांति घूमने के पश्चात उसने

नहाया धोया और एक सफेद साड़ी पहन ली। केशों को उसी तरह बांध लिया और बैठकर कुछ सोचने लगी।

उसे अब रंगीन वस्त्र, श्रृंगार बनाव से घृणा हो गयी। वह सरल जीवन व्यतीत करने का विचार करने लगी। कमरे की व्यर्थ की वस्तुओं को उसने हटाने का कार्य आरम्भ कर दिया। उसने सोचा कि केवल सेण्ट, साबुन, क्रीम और पाउडर में सैकड़ों रुपये एक महीने में व्यर्थ जाते हैं और ब्लाउजों में चालीस पचास रुपये सिलाई केवल। अन्धेर कर रही हूँ, अपने क्षणिक गर्व के लिए। मैं इतने परिश्रम से पैदा धन पानी की भांति बहा रही हूं, व्यर्थ में टेनिस के खेल में सैकड़ों रुपये महीने खर्च होते हैं। किसी के आने पर सिनेमा जाना यह सब व्यर्थ के खर्च को कम करूँगी। मैं अपना काम अपने हाथों करूँगी। स्वालम्बी बनूँगी और शान्ति मय जीवन बिताऊँगी।

वह इसी कल्पना के डूब-उतरा रही थी। अपनी छोटी सीमा पर उसे अन्त का पता न था इसलिए विह्वल थी, तन्मय थी। वह जीवन में रह कर उससे दूर थी बहुत दूर, अनन्त की भांति संज्ञा विहीन, हत बुद्धि बालिका सी मौना, करुणा की आकांक्षा सी सीधी बैठी-जीवन-पट पर कुछ धुँधले चित्र बना रही थी। अव्यक्त रंगों से अदृश्य तूलिका से, धीरे धीरे बुद बुदाते, झिलमिलाते कुछ चित्र अंकित कर रही थी, जिनका उसके लिए एक महत्व था। वह निमग्न थी अपनी धारा में, बहती हुई कोमल उर्मियों की मधुर क्रीड़ा सी, तट के छोरों को 'छप' से छूती हुई।

वह बैठी ही थी कि मि० दत्त मुस्कराते हुए कमरे में आ पहुँचे। मि० दत्त का वस्त्र आज देखने ही योग्य था, चमकता हुआ हाथ में अधखिला गुलाब और पतली सी छड़ी कोमल

लतिका की भांति लचकती हुई। नेत्रों पर सुनहला चश्मा आधुनिक सभ्यता की कमानी से सजा हुआ और मस्तक पर नाइट कैप कालासा, सामने की ओर कुछ झुका हुआ, स्वभाव के ही अनुकूल, कठोर।

ज्योत्स्ना जल गयी और मुँह फेर कर दीवाल की ओर देखने लगी। मि० दत्त पास आ गये और ज्योंही बैठने लगे कि वह तनकर खड़ी हो गयी और बोल उठी—

"आप यहाँ से अभी चले जाइये।"

"क्यों? क्या आज मैं दूसरा हो गया हूँ। देखती नहीं हो मिस ज्योत्स्ना, मैं तुम्हारे लिये कितना कष्ट उठा रहा हूँ।"

"चुप रहिये। आपका सारा भेद जानती हूँ। दुष्टता की भी सीमा होती है। इस सफेद सूट से नारी के हृदय का सौदा करना चाहते हो। ढोंगी कहीं के।"

"आज आप भूखी बाघिन क्यों हो रही हैं? कदाचित आप में कुछ परिवर्त्तन हो रहा है क्योंकि आज मैं आपको सादे कपड़े में देख रहा हूँ।"

"नान्सेन्स, बोलने का भी ढंग नहीं मालूम। तुमको लज्जा नहीं आती। दूसरी स्त्री पर अपने बनावटी प्रेम से अधिकार करना चाहते हो।"

"ऐसा मत कहिये। मैं आपके बिना नहीं रह सकता।"

"बस, अब आपकी कुशलता इसी में है कि आप सीधे लौट जाइये और फिर कभी भी यहाँ न आवें।" उसने कड़ककर कहा—

मि० दत्त ने देखा कि ज्योत्स्ना क्रोध से पागल होती जा रही है। कामुक व्यक्ति अपने विलास भावना के आगे सब कुछ भूल जाता है। उसे इतना तक ज्ञान नहीं रहता कि वह कलियों को तोड़ने के लिए हाथ बढ़ा रहा है या साँप की बिल में हाथ डाल

रहा है। मि० दत्त शराब के नशे में थे। वह ज्योत्स्ना की ओर कुछ बढ़ आये और लड़खड़ाते स्वर में बोले—

"डियर ज्योत्स्ना, एक बार मुझे अपने अधरों की मदिरा पीने दो। मैं तुम्हें रानी बना दूँगा, रानी।"

ज्योत्स्ना समझ गयी कि अब सीधे से काम न चलेगा। वह कुछ भयभीत सी हुई। धीरे से वह और पीछे हटी और आवेश-पूर्ण शब्दों में बोली—

"पापी, दुष्ट, लज्जा नहीं आती। अपनी सुन्दरी स्त्री सुधा को छोड़कर दूसरे के मोह-दीप पर जलने के लिए व्याकुल हो रहे हो। वह बेचारी अपने दिन रो २ कर काट रही है, एक एक दाने के लिए तरस रही है और तुम अपने आनन्द के लिए, अपने पाप की वासना के लिए दूसरे का दरवाज़ा देख रहे हो।"

"क्या कहा? सुधा! वह तो एक वेश्या है। मैं आपके सामने उसे कुछ भी नहीं समझता। मैं आप के लिए मर रहा हूँ।" मि० दत्त थोड़ा और आगे बढ़े।

ज्योत्स्ना शीघ्रता से उनके बगल हो गयी और चिल्लाकर बोली—

"खबरदार, मि० दत्त, यदि तुमने हाथ लगाया तो तुम्हारा गला घोंट दूँगी। मैं सुधा नहीं हूँ, जो तुम्हारे अत्याचारों को सह लूँगी। मैं तुम्हारे होश हवाश ठीक कर दूँगी। मुझे दुर्बल नारी मत समझ रखना।"

शराबी को अपनी मस्ती के आगे कुछ भी नहीं सूझता। वह तो आग की जलती ज्वाला को पकड़ने के लिए बढ़ जाता है। मि० दत्त अब अपने को न सम्भाल सके और लपक कर ज्योत्स्ना को पकड़ने का प्रयास करने लगे। उसके मुख से अस्फुट स्वर निकला—

"मिस ज्योत्स्ना, प्यासा हूँ, प्यास की तृप्ति चाहता हूँ।"

ज्योत्स्ना ने देखा बिना किसी प्रयत्न के बचना असम्भव सा है। उसने झपट कर उनके हाथ से छड़ी छीन ली और तानकर उनके चेहरे पर मारा। मि० दत्त चौंक पड़े। उनका सारा मद उतर गया। वह सम्भल ही रहे थे कि दो तीन हाथ और बैठ गया। वह तिलमिला गये। इतने में ज्योत्स्ना चिल्ला उठी—

"कुत्ते, देख अपने पाप का परिणाम। निकल जा यहाँ से। एक का जीवन भ्रष्ट कर दूसरे के जीवन पर लांछन लगाने आया था। भोग अपने किये का फल। यदि फिर आगे बढ़ने का साहस किया तो तेरा सर तोड़ दूँगी।"

मार खा लेने पर मि० दत्त की चेतना लौटी। वह ज्योत्स्ना के विकराल रूप को देखकर भयभीत हो रहे थे। उनका इतना बड़ा अपमान कभी नहीं हुआ था। उनको यह भी विदित हो गया कि ज्योत्स्ना, सुधा से पूर्ण परिचित है इसलिए उसने मेरी दुर्दशा की है। वह कुछ कहना ही चाहते थे कि ज्योत्स्ना की चिल्लाहट सुनकर कई नौकर दौड़कर भीतर आ गये और खड़े होकर यह दृश्य देखने लगे। ज्योत्स्ना ने नौकरों से कहा—

"इसको अभी बंगले के बाहर कर दो।"

मि० दत्त का उस समय अगर प्राण भी निकल जाता तो उन्हें जीवन से सन्तोष हो जाता परन्तु यह अपमान उनसे नहीं सहा जा रहा था। उन्होंने करुणा की भिक्षा माँगते हुए कहा—

"ज्योत्स्ना देवी, बस कीजिये। मेरी दवा हो चुकी। अब मेरा और अपमान मत कीजिये।" उनके नेत्रों में आँसू आ गये।

ज्योत्स्ना यों उनका मुख भी नहीं देखना चाहती थी परन्तु उनके आँसुओं को देखकर वह पिघल गयी और नौकरों से बोली—

"तुम लोग जाकर अपना काम करो।"

मि० दत्त नीचा मस्तक कर खड़े थे। उनके नेत्रों से आँसू जारी थे और वे अपने जीवन पर पश्चात्ताप कर रहे थे। पश्चात्ताप ही सबसे बड़ा प्रायश्चित है। उन्हें सुधा का ध्यान आया कि मैंने उस साध्वी स्त्री के प्रति कितना अत्याचार किया है। उसके जीवन को कितना दुखमय बनाया है। पता नहीं वह कहाँ होगी? कैसे अपना पेट पालती होगी? मेरा फूल सा बच्चा, पता नहीं किन २ गलियों की धूल फाँकता होगा।

वह सोचते २ भूमि पर बैठ गये। ज्योत्स्ना ने देखा कि इनमें परिवर्त्तन हो रहा है। अपने कार्यों पर इन्हें पश्चात्ताप हो रहा है। उसने धीरे से कहा—

"मि० दत्त आप कुर्सीपर बैठ जाइये। यदि अब से भी आप सुधर सकते तो मैं समझूँगी कि मनुष्य में भी कुछ आत्माभिमान है। उसे अपने मानापमान का कुछ ध्यान रहता है।

मि० दत्त चुप थे। मुख पर विषाद की गहरी कालिमा थी। ज्योत्स्ना पूर्ववत कह रही थी—

"आपने सुधा के साथ अन्याय ही नहीं किया बल्कि उसके चरित्र पर भी लांछन लगाया है। यह आपका सबसे बड़ा अपराध है। उसका अपमान आपका अपमान है। उसके दुखी रहने से आप जीवन में कहीं भी रह कर सुखी नहीं रह सकते। उसका अभिशाप आपके लिए घातक होगा। असफलता और अवनति की पराकाष्ठा होगी। आप ने उसे केवल अपने मनोनुकूल न होने के कारण त्याग दिया है। आप जानते हैं कि आधुनिक समाज की आँखें रूप और सौन्दर्य की बाहरी चमचमाहट से चकाचौंध हो जाती है। परन्तु वास्तविक गुण, शील, मर्यादा को नहीं आँकती। उसके पास प्यास है, वह समुद्र के पास जाता है और उसकी

उत्ताल तरंगों के खारे पानी से प्यास बुझाना चाहता है। परन्तु उसके समीप ही निर्झर है, सरिता और सरोवर हैं, जिसमें मिठास ही मिठास है और पवित्रता भी, उनको वह नहीं देखता क्योंकि उसकी आँखों पर लोभ का मोटा चश्मा लगा हुआ है। उसकी बुद्धि दूर तक नहीं जाती। वह प्राचीनता को छोड़कर नवीनता का उपासक बनता है। आज संसार इसी चक्र में पड़ा घूम रहा है। इसीलिए उसके पास सन्तोष और सान्त्वना नहीं है, त्याग और कर्म नहीं है।

मि० दत्त मैंने आपका अपमान किया है। उसके लिए मुझे दुख है और इसके लिए मैं सर्वदा आपके सम्मुख नत रहूँगी। अब आपसे एक प्रार्थना यह है कि यदि आप अपना जीवन सुखमय बनाना चाहते हैं तो अपनी सुधा को अपनाइये। अपने कोहनूर को काँच की भाँति न फेंकिये, उसकी जैसी स्त्रियों की संसार में बड़ी आवश्यकता है। वह देवी की प्रतिमूर्ति है। मुझे आपसे उस दिन बड़ी घृणा हुई जिस दिन मेरा साक्षात्कार उस अभागिनी से हुआ और मैंने उसके लिए जो कुछ किया वह अवश्य सीमा से बढ़ गया। परन्तु उसमें मेरा भी विशेष दोष नहीं। आवेश मानव का एक स्वभाव है।

मि० दत्त अब तक शान्त रहे। उनके मुख से शब्द न निकलते थे। उन्होंने धीरे से कहा—

"आप मुझे क्षमा करें, मैं भ्रम में था। मुझ पर एक मद था जो उतर गया। आज से मैं मानव जीवन का मूल्य समझ गया।"

"इस प्रकार मुझे लज्जित मत कीजिये। मैं आपसे केवल यही प्रार्थना करूँगी कि आप सुधा का जीवन सुधारें। ऐसी स्त्री आपको न मिलेगी। उसके न रहने के कारण आपका पतन हो रहा है। स्त्रियाँ गिरते मनुष्य को सँभाल सकती हैं, वह गिर

गिर कर भी पुरुष को उन्नति के पथ पर अग्रसर कर सकती हैं। जीवन में उत्साह भरने और प्रशंसा करने वाले की नितान्त आवश्यकता है जो गुण दोष की समीक्षा कर सके। उत्थान पतन, पुण्य पाप, आशा निराशा, की समुचित विवेचना कर सके। वह गुण उसकी करुणा भरी अखों में उसकी, वरदान भरी वाणी में है। स्त्री मानव की शक्ति है, पुरुष की अधिष्ठात्री देवी है और मनुष्य का सहारा है। उसके बिना जीवन व्यर्थ, तत्वहीन और महत्वहीन है।"

मि० दत्त ने श्रद्धाभरी आंखों से ज्योत्स्ना की ओर देखा और मस्तक झुका कर बोला—

"मैं सुधा से क्षमा याचना करूँगा और उसके स्वीकार करने पर उसको घर ले आऊँगा।

"स्त्री क्षमा की मूर्ति है परन्तु क्षमा सबसे बड़ा दण्ड है। यदि सुधा आप को क्षमा कर देगी तो वह आप के साथ घोर अन्याय करेगी। पति को क्षमा...... ! उस दिन भारतीय नारी-समाज का गौरव धूल धूसरीत हो जायगा, उसको श्रद्धा की दृष्टि से कोई न देखेगा। आप ने जो कुछ किया वह अच्छा ही किया। मैं स्वयं सुधा से मिलकर उसको आप के यहां ले आऊँगी।"

"परन्तु मैंने उसे ठुकरा दिया है, उसका अपमान किया है। क्या वह मेरा रूप देख कर शान्त रहेगी ?

"पत्नी पति के हजारों दोषों को भी नहीं गिनती। उसको अपने मानापमान का ध्यान नहीं रहता। वह उत्सर्ग की प्रतिमा होती है। सेवा उसका कार्य है, करुणा उसका वरदान है।"

"यदि आप उसे मेरे घर लाने का उपक्रम कर सकें तो मैं आप को क्या समझूँगा, मैं कह नहीं सकता। सचमुच आप देवी हैं, आप उपासना करने योग्य हैं।"

"अधिक पाप के पङ्क में ले जाने का प्रयत्न न कीजिये। मैं संसार की बड़ी भारी पापिनी हूं। मैं आप को शिक्षा दे रही हूँ परन्तु मैंने इसके विरूद्ध कार्य किया है। मैं मृत्यु मांगती हूं। मुझे संसार नीच समझता है। मैंने धोखा दिया है। मैंने नारी-जीवन को तुच्छ समझा है। मेरा अपराध घोरतम है। मेरे जैसी नारी को कहीं भी स्थान नहीं, मैं क्या करूँ ?" उसका स्वर तीव्र हो उठा। मि० दत्त घबड़ा कर कहने लगे—

आप को क्या हो गया है ? व्यर्थ में यह सब क्या बक रही हैं। अपने को संभालिये।"

"आप जाइये मि० दत्त। कल आइयेगा! आज मस्तिष्क ठीक नहीं है। मैंने जीवन को पाप से, अत्याचार से भर डाला है। मैं पागल हो रही हूँ।"

"आप बैठ जाइये, घबड़ाइये नहीं, सुनिये तो...... ।

"कुछ नहीं, जाइये, इस समय चले जाइये। मेरा मुख मत देखिये, पाप लगेगा। मैं विवाहिता हूँ, मैंने पति के साथ अत्याचार किया है।" वह रोती हुई दूसरे कमरे में भाग गयी।

'ज्योत्स्ना, विवाहित है' मि० दत्त के मुख से आश्चर्य मिश्रित स्वर निकला। वह कुछ देर तक खड़े रहे, परन्तु जब ज्योत्स्ना नहीं आयी तो धीरे २ घर की ओर चल पड़े।

× × ×

१८

मि० दत्त के चले जाने पर भी ज्योत्स्ना बड़ी देर तक रोती रही और कमरे से बाहर न निकली। बारह बज रहे थे। भोजन का समय हो गया था परन्तु उमेश बाबू अभी लौटे न थे। उसने आज कैसा कार्य किया था? इसी चिन्ता में वह विभोर थी कि नौकर ने आकर कहा—

"एक कान्स्टेबल आया है।

ज्योत्स्ना अपना भाव छिपा कर बाहर आयी और उससे पूछा—

"क्या है?"

"बाबू उमेश चन्द्र जी ने लाहौर के वकील कृष्ण मुरारी पर मानहानि का मुकदमा चलाया है। उनके नाम नोटिस तामिल हुई थी परन्तु वह वहां न मिले इसलिए यह वापस आ गयी है।" उसने नोटिस को ज्योत्स्ना के हाथ में दे दिया और सलाम कर चला गया।

ज्योत्स्ना के नेत्रों के सामने अंधेरा छा गया। वह यह न समझ सकी कि मैं किस षड़यन्त्र में फँसती जा रही हूँ। उसने जब नोटिश को पढ़ा तो उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि भूकम्प आ गया है। सभी वस्तुयें घूमती दिखाई दे रही हैं। वह चेतनाहीन सी होकर बड़ी देर तक खड़ी रही। उसने विचारा कि यदि यह नोटिश उनके हाथ में पड़ गयी होती तो वह कैसी २ कल्पना करते और मेरे विषय में क्या २ सोचते। अच्छा हुआ कि वह वहाँ नहीं रहे, नहीं तो बड़ा भारी कांड उपस्थित हो जाता। सब से

बड़ी आश्चर्य की बात तो यह है कि पिता जी ने बिना मेरे या भैया की राय के उनके नाम नोटिस कैसे भेजदी और कभी बतलाया भी नहीं। उसमें मेरा नाम भी लिखा है। लोग सुनेंगे तो कितना हंसेंगे कि ससुर ने दमाद पर अपने तथा लड़की के लिए मानहानि का मुकदमा चला दिया है। अदालत उसका क्या फैसला देगी? यहां के लोग पिता जी के ऊपर कितना हँसेंगे और मेरे विषय में क्या २ सोचेंगे?

वह इसी विचार में भीतर आयी और बैठी ही थी कि उमेश बाबू डाक्टर के साथ आ पहुंचे। उसने नोटिस को छिपा दिया और खड़ी हो गयी। डाक्टर ने आते ही पूछा—

"अब आप की कैसी तबियत है?

"अच्छी है।"

"ठीक २ बताओ। तुम हर बात छिपाती रहती हो।" उमेश बाबू ने कहा।

ज्योत्स्ना हँस पड़ी और लजाती हुई बोली—

"आज अच्छी तो हूँ, केवल कुछ कमजोरी मालूम होती है।"

वह भी शीघ्र दूर हो जायगी। कल की मूर्छा से ऐसी अवस्था हो गयी है।"

डाक्टर ने ज्योत्स्ना की नाड़ी और हृदय के गति की परीक्षा की और बोला—

"सब ठीक है। किसी भी प्रकार की चिन्ता की आवश्यकता नहीं। केवल पूरे विश्राम की आवश्यकता है।

दवा देकर डाक्टर चला गया तो उमेश बाबू ने पूछा—

"ज्योत्स्न, कल तुम्हारी ऐसी तबियत क्यों हो गयी थी?"

"मुझे स्वयं पता नहीं।"

"तो बचाओ बचाओ क्यों कह रह थी।"

"मुझे इसका ध्यान ही नहीं है कि मैंने क्या कहा और कब बेहोश हुई। होश आने पर मैंने आप लोगों को सामने बैठे पाया।"

"तुम किसी प्रकार की चिन्ता न किया करो। मैं सब ठीक कर लूँगा। मुझे तुम्हारे हृदय की कोमलता अब विदित हो रही है।"

वह चले गये तो ज्योत्स्ना का मुख लज्जा से भर गया। ज्योत्स्ना को अब पति की चिन्ता होने लगी कि पितादेव भी उसके लिये दुखी और चिन्तित हैं। परन्तु उनका तो पता नहीं है। उनको खोजने के लिए अलका का ही सहारा लेना उचित है। सुनील की याद उसे आती थी परन्तु सुनील ने उसके यहाँ आना ही छोड़ दिया था। इसलिए ज्योत्स्ना ने विचार किया कि उसके यहाँ चलकर अपने विचारों को प्रगट करूँ और और सुनील की मिथ्या भावना का समूल उच्छेदन करूँ। परन्तु यह विचार कर कि अलका ने मेरे विषय में सुनील से पता नहीं क्या २ बातें कही होंगी, बिना उसके जाने वहाँ न जाऊँगी।

इसी चिन्ता में दो दिन बीत गये। उमेश बाबू की मनोवृत्ति कुछ शिथिल हो गयी। उन्होंने देखा कि ज्योत्स्ना को आधुनिक विचारों से घृणा हो रही है। यहाँ तक कि कपड़े पहनने, तथा अन्य वस्तुओं के उपयोग में बड़ी उदासीनता का परिचय दे रही है। उसका कमरा पूरा बदल गया है। अब वह ड्राइंग रूम न रह कर एक बैठका हो गया है। सफेद साड़ी के अतिरिक्त वह कुछ पहनती ही नहीं। डिनर, पार्टियों तथा डान्सों में जाना उसने बिलकुल बंद कर दिया है। उसे अपने मायावी जीवन से घृणा हो गयी है, तब मुझे भी उसके विचारों में हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है।

मैंने कृष्ण मुरारी पर मुकदमें की नोटिस भेज कर बड़ी भारी त्रुटि की है। जब यह समाचार ज्योत्स्ना को विदित होगा तो उसको कितना दुख होगा, मैं अपने स्वभाव से विवश हूँ। क्रोध आते ही मेरा मस्तिष्क घबड़ा उठता है, मैं पागल हो उठता हूँ और उसके आवेश में पता नहीं क्या २ कर जाता हूँ। सुरेश ने भी मुझे बहुत समझाया था परन्तु मैंने उसकी एक बात पर ध्यान तक नहीं दिया। उसे भी मेरे स्वभाव से चिढ़ पैदा हुई होगी। लज्जा भी मुझे क्या सोचती होगी? मैंने जान बूझ कर ज्योत्स्ना को इतना स्वच्छन्द किया था। उसका परिणाम कितना घातक हो रहा है। हमारे पूर्वजों ने स्त्रियों की स्वच्छन्दता पर बड़ी कड़ी २ टीकायें की है, वे ठीक हैं। इसका दिग्दर्शन आज मेरे नेत्रों के सामने हो रहा है। स्त्रियाँ स्वतन्त्र होकर अपने मर्यादा की सीमा में नहीं रह सकतीं। स्वतन्त्रता के आते ही उनमें स्वच्छन्दता का विकास होने लगता है जो उनके लिए अहितकर ही नहीं परन्तु सर्वनाश के गड्ढे में ले जाने वाला है, उनको संसार के खुले वातावरण में व्यापार की वस्तु बना देता है। पाश्चात् देशों की शिक्षा और सभ्यता ने भारत को कितना गिरा दिया है, इसको प्रत्येक भारत वासी जो इसका शिकार हो चुका है, भलीभाँति जनता है। आज कल के नवयुवक जो कालेजों और यूनिवर्सिटियों की बड़ी २ डिग्रियाँ लेकर बाहर आते हैं, अपने को कितना ऊँचा समझते हैं, कितना विद्वान और योग्य समझते हैं, कितने बड़े देश के सेवक बनते हैं, यह उनके वस्त्र, रीति रिवाज और सभ्यता से साफ़ प्रगट हो जाता है। वे मस्तिष्क की विलासिता लेकर जीवन के स्वप्नों का दृश्य देखते हैं जो आगे चलकर निराशा के घोर अन्धकार में परिवर्तित हो जाता है। इसी भाँति शिक्षित युवतियाँ भी अपने कर्म-मार्ग से च्युत

होकर पश्चात्य नारियों के समान अपना अमूल्य जीवन पुरुषों के हाथ में सौंप देती है। यही कारण हैं कि भीम और अर्जुन ऐसे वीर, हरिश्चन्द्र और कर्ण ऐसे दानी, राम और कृष्ण ऐसे महान पुरुष, गौतम तथा शंकराचार्य ऐसे तत्ववेत्ता पैदा नहीं हो रहे हैं। देश पतन के मुख में जा रहा है। फूट और कलह के कोल्हू में बुद्धि पिस रही है। निरपराधियों पर अत्याचार हो रहा है। जीवन एक पहेली हो रही है, उसकी सीमा अनन्त है, उसका पथ असीम है।

उमेश बाबू को विराग उत्पन्न हुआ और अपने जीवन से उन्हें घृणा-सी पैदा हुई। उन्हें एक निराशा हुई जो वृद्धावस्था में बड़ी घातक होती है। जीवन की एक लम्बी यात्रा के पश्चात् जब मनुष्य की चेतनायें शिथिल हो जाती हैं, जब उसकी इच्छायें सांसारिक वस्तुओं के आनन्द से तृप्त हो जाती हैं, तभी उसमें त्याग और वैराग्य की भावना जागृति होती है। उसकी आकांक्षाओं में उत्ताल तरंगों सी उमंग नहीं रहती। नम्रता और सरलता का विकास होने लगता है। उसके जीवन का अनुभव सभी बातों से सशंकित रखता है और वह भविष्य में बड़ी सावधानी से कार्य करता तथा फूँक २ भूमि पर पैर रखता है।

उमेश बाबू का क्रोध, और उनकी आतुरता घटने लगी, ऊषा को देख कर पश्चिम की ओर भागती हुई काली रजनी सी। उन्होंने ज्योत्स्ना के विषय में कुछ बोलना ही छोड़ दिया। सभी लोगोंसे एक प्रकार अलग रहने लगे। किसी के यहाँ भी न जाते। अब वे धर्म की ओर अग्रसर हुए। पहले नृत्य, चित्रपट तथा पार्टियों में उनका अधिक समय व्यतीत होता था। अब उनको बन्द कर, वही समय अच्छी २ धर्म की पुस्तकों में लगाने लगे।

समय के साथ साथ स्मृति भी धुँधली होती जाती है। यह प्रकृति का नियम है कि जब तक वस्तु समक्ष रहती है तभी तक उससे एक स्नेह और सहानुभूति रहती है। परन्तु उसके न रहने पर वही स्मृति विस्मृत हो जाती है और कुछ समय पश्चात लुप्त एददम हो जाती है।

इस घटना के दो दिन पश्चात् मि० दत्त, उमेश बाबू के यहाँ आये। उन्हें देखते ही उमेश बाबू ने कहा—

"कहिए, इस ड्रेस में कैसे ?"

"क्यों क्या इस कपड़े में कोई खराबी है।"

"नहीं २ मेरे कहने का तात्पर्य यह था कि आप तो सर्वदा सूट पहना करते थे परन्तु आज धोती और कुरता पहने हुए हैं।"

"अब केवल काम के समय सूट पहनूँगा और बाक़ी समय इसी प्रकार रहा करूँगा।"

"आखिर इस प्रकार के परिवर्तन का क्या कारण है ?"

"अपनी इच्छा है। अब तक दूसरा ही ढंग रहा और अब बदल दिया है। जब संसार ही परिवर्तनशील है तो इसमें रहने वाले प्राणी क्यों न अपने को बदला करें।"

"यह तो ठीक है मगर पार्टी तथा डिनर में आप इस प्रकार जा सकेंगे ?"

"क्यों कोई है हर्ज क्या ? जब सभी स्थानों में सुधार हो रहे हैं तो वहाँ भी इस प्रकार जाना ही चाहिए और सभी से इसी प्रकार आने के लिए अनुरोध भी करना चाहिए। यह तो अपने देश का पहिनावा है। सर्वदा हम लोगों को अंग्रेजों की नकल तो नहीं करनी चाहिए।"

उमेश बाबू हँस कर बोले—

"हमें तो हँसी आती है कि आप कैसी बहकी२ बातें आज कर

रहे हैं। आप तो इंग्लैंड के रस्म रिवाज, खान-पान और रहन सहन को बड़ा अच्छा समझते थे और कहते थे कि विना इंग्लैंड गये कोई आदमी अपने को जेंटिलमैन कहने का दावा नहीं कर सकता।"

"अब मैंने उसका स्वरूप समझा है। जो लोग वहाँ जाते हैं उनकी बुद्धि और आँखों पर वहाँ की सभ्यता का जो चश्मा चढ़ जाता है वह यहाँ आने पर भी कुछ समय तक लगा रहता है, परन्तु जब यहाँ की सभ्यता की छाप उसपर पड़ती है तो उसका जोश हलका पड़ने लगता है और धीरे धीरे उसका नशा उतर जाता है। जब तक मनुष्य को कोई ठोकर नहीं लगती, तब तक वह नहीं सोचता कि ठोकर खाने से क्या होता है? परन्तु उसके लगते ही वह उस पीड़ा का मूल्य समझता है और उसे दूसरे के प्रति सहानुभूति भी होती है। जो दर्द की पीड़ा नहीं समझता वह क्या जान सकता है कि दर्द से दुखी कितना व्याकुल होता है।

"आप तो सुधारक बनते जा रहे हैं मि० दत्त।"

"यह सुधार नहीं बल्कि इसे तो स्वाभाविक प्रवृत्ति कहनी चाहिए।"

इसी बीच में ज्योत्स्ना आ गयी। मि० दत्त की पोशाक देख कर ज्योत्स्ना ने उन्हें झुक कर प्रणाम किया। ज्योत्स्ना को देखते ही मि० दत्त भी कुर्सी से उठ खड़े हुए और प्रणाम कर बोले—

"अब आपकी कैसी तबियत है?"

"अच्छी ही है।" उसने उदास स्वर में कहा—

उनके कपड़े से ज्योत्स्ना ने अनुमान कर लिया कि मि० दत्त की बुद्धि अब ठिकाने आ गयी है। इनको अब जाकर यह विदित हुआ कि संसार में मनुष्य का क्या स्थान है? इनका हृदय अब पवित्र और शीतल हो गया है। ज्योत्स्ना ने कहा—

"आप तो बिल्कुल ही बदल गये मि० दत्त।"

"यह सब आपकी दया है। मैं पशु से मनुष्य हो गया। आपने मुझपर जो दया की है उसका मैं आजीवन आभारी रहूँगा।"

"व्यर्थ में प्रशंसा कर के मुझे लज्जित न कीजिए। मैं अपने अपराधों के लिए आप से क्षमा माँगती हूँ।"

"अपराधी को अपराध से मुक्त करने वाला न्यायाधीश कभी भी उससे क्षमा—याचना नहीं करता।"

"परन्तु मैं तो न्यायाधीश नहीं हूँ और न आप अपराधी। यह तो संयोग की बात थी।"

कुछ भी हो आपने मुझे डूबते से बचाया।"

ज्योत्स्ना ने कृतज्ञता से मस्तक नीचा कर लिया। उमेश बाबू इन लोगों की बात भलीभाँति न समझ सके, इसलिए मौन होकर चुप रह गये। कुछ इधर उधर की बातचीत के पश्चात् ज्योत्स्ना ने कहा—

"तो क्या आप चलियेगा?"

"इसी ध्येय से तो आया हूँ"

ज्योत्स्ना तुरन्त तैयार हो गयी। दोनों चल पड़े। उमेश बाबू चुप होकर कुछ सोचने लगे। रास्ते में मि० दत्त ने कहा—

"मुझे वहाँ जाने में बड़ी लज्जा आती है"

"क्यों, अपनी स्त्री के सामने लज्जा कैसी!"

"मैंने उसका अपमान किया है, उसे कलंकिनी कहा है। मैं कौन सा मुँह लेकर उसके सामने जाऊँगा!"

"पुरुष के सभी अपराधों को स्त्री क्षमा कर सकती है परन्तु पुरुष कभी ऐसा नहीं करता।"

"ठीक कहती हैं आप। पर मैंने उसके प्रति अत्याचार किया।

है। उसको हृदय के आसन पर बिठाकर एकाएक पटक दिया है। उसके करुणाक्रन्दन पर मैंने ध्यान तक नहीं दिया, बल्कि प्रताड़ना दी है।"

"कुछ भी हो स्त्री क्षमा की मूर्ति है क्योंकि इस शस्त्र के अतिरिक्त उसके पास कोई अस्त्र नहीं। स्त्री अपना तिरस्कार सह सकती है परन्तु पति के अपमान को नहीं सह सकती। त्याग के पक्ष में स्त्री पुरुष से महान है। वह त्याग सौजन्य और शील की मूर्ति होती है। पुरुष स्वाभाविक कठोर होता है, दूसरे परिस्थियाँ और उसे कठोर बना देती हैं। दरिद्रता से मारा हुआ मनुष्य अपनी आत्म-हत्या तथा भयंकर से भयंकर कर्म करने के लिए प्रस्तुत हो जाता है। क्योंकि उसकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती। स्त्री में केवल उसकी दुर्बलता ही उसकी असफलताओं की जड़ है नहीं तो वह पुरुषों से भी महान है।"

"यह मैं मानता हूँ ज्योत्स्ना देवी। मैंने और भी देशों की स्त्रियों को देखा है परन्तु उनमें यह त्याग और आत्म समपर्ण नहीं पाया जाता। उनका प्रेम पति की वैभव-सीमा तक ही सीमित है। पति के निर्धन अथवा असहाय होने पर वे दूसरा पथ पकड़ लेती हैं और इसीलिए उनके जीवन का मूल्य व्यापार का एक अंग हो जाता है।"

इसी प्रकार बातें करते दोनों सुधा के घर पहुँचे परन्तु सुधा वहाँ न मिली। बड़ी देर तक दोनों व्यक्ति आसरा देखते रहे परन्तु जब वह न आयी तो निराश होकर लौट पड़े। मि० दत्त ने सुधा को जब वहाँ न पाया तो उनके विचारों में एक तूफान सा आया। वे सोचने लगे कि स्त्री का क्या ठिकाना! जब वह पुरुष के अनुशासन के बाहर है तब वह स्वतंत्र ही नहीं पूर्ण स्वच्छन्द है और स्त्रियों की स्वच्छन्दता उनके लिए घातक है। जब

मैंने सुधा को त्याग दिया तभी उसने अपना जीवन बनाने के लिए कोई मार्ग ढूँढ़ा होगा और मेरे बैर का बदला चुकाना चाहा होगा। सम्भव नहीं कि वह ज्योत्स्ना से मिलकर किसी षड़यन्त्र की रचना कर रही हो और मुझे भी अपमानित करना चाहती हो। स्त्री जब अपमानित होती है तो वह अपने क्रोध को शान्त करने के लिए विषैली नागिनी हो सकती है और कठिन से कठिन कार्य उसके लिए सरल और सुबोध होजाता है। जहाँ स्त्री एक ओर अबला है वहाँ दूसरी ओर शक्ति की प्रबल मूर्ति, अविश्वास और अन्धविश्वास की सजीव छाया।

मि० दत्त का हृदय फिर बदला संध्या के दृश्य की भांति उन्हें सुधा से घृणा हुई। क्या अब तक वह सच्चरित्र होगी? और ज्योत्स्ना से भी क्या आशा? यह भी सुधा की भांति विवाहित होकर अपने पुरुष को छोड़ बैठी है और नायिका बन सभी नायकों के साथ जीवन का अभिनय करना चाहती है। फिर भी वह अपने को गर्विणी और चरित्रवान कहती है। यह सब ढोंग है। जिसे रूप का गर्व है, धन का ऐश्वर्य है, वह क्या अपने एकाकी जीवन से सन्तोष, कर सकती है। कभी भी नहीं, हृदय की प्यास एक प्याले से शान्त नहीं होती, उसे नये २ और सुन्दर प्याले चाहिए।

ज्योत्स्ना विवाहित है परन्तु न तो उमेश बाबू ने मुझसे अब तक कुछ कहा और न इसीने। पता नहीं इसका पति संसार में जीवित है अथवा नहीं। स्त्री माया है, छल है और एक रहस्य है, इसको कोई नहीं समझ सकता।

जाग उठी सुप्त प्रतिहिंसा, प्रतिशोध की भावना, घायल हृदय में। पुरुष होकर स्त्री से अपमानित हो और फिर उसी के यहाँ जाँय, केवल जीवन की भिक्षा मांगने। ऐसी भीख जो मिल कर

भी ठुकरायी गयी हो। फिर उसी के लिए, जिसपर से विश्वास उठ गया, जिसपर से श्रद्धा और सम्मान उठ गया। उसके लिए क्षमा याचना। धिक्कार है ऐसे पुरुषत्व पर। गर्व और अहंकार! तुमने मेरा अपमान किया, जहाँ तुम्हारा वास है, जहाँ से पैदा होते और लय होते हो। तुमने अपने सामने दूसरे को नहीं समझा—अच्छा देखना मैं भी हृदय हूँ, मैं आंधी और प्रलय ला सकता हूँ, प्रतिशोध की भयंकर ज्वाला प्रज्वलित कर सकता हूँ और तुम्हार गर्व तोड़ सकता हूँ। मुझे सागर की भांति शान्त समझते हो, मैं अपने लहरों से बड़े २ अहंकारियों का मान मर्दन करता हूँ।

मि० दत्त के मुख पर क्रोध और घृणा की छाया फैल गयी। उन्होंने अरुण नेत्रों से ज्योत्सना को देखा तो मालूम पड़ा उस रश्मि के भीतर भयंकर विष भरा है। उन्होंने पूछा—

"ज्योत्स्ना क्या आप विवाहित हैं?"

उसने एक बार रूखे नेत्रों से उनकी ओर देखा और बोली—

"हाँ"

"आप के पतिदेव कहाँ है?"

"मुझे नहीं मालूम"

"अपने पतिदेव को नहीं जानतीं, कि वे कहाँ हैं?"

"नहीं" उत्तर निराशामय था।

"मुझे आश्चर्य और कौतूहल होता है कि आप क्या हैं?"

वह मुसकरा पड़ी और उसकी कोमल वाणी फूटी—

"आश्चर्य भी एक स्वभाव है। जो किसी बात पर आश्चर्य नहीं करते वे बड़े बुद्धिमान होते हैं।"

मि० दत्त इसको न समझ सके। उन्होंने ज्योत्स्ना पर दूसरा कटाक्ष किया।

"अज कल सुनील नहीं दिखलाई देते"

"संसार के सभी लोग अपने २ समय पर दिखलाई देते हैं। पशु, पक्षी कीट, पतंग सभी हर समय नहीं रहते। सुनील अब नहीं आता।"

"क्यों ?"

"किसी के हृदय में क्या छिपा है यह कौन जानता है मि० दत्त। बाहर से सभी शान्त और निश्चल प्रतीत होते हैं परन्तु किसके लिए कौन षड़यन्त्र रचा जारहा है यह कौन जानता है।"

मि० दत्त के नेत्र तन गये। उन्होंने समझा कि ज्योत्स्ना मेरे ही ऊपर व्यंग कर रही है। वह शान्त स्वर में बोले—

"सुधा कहाँ गयी होगी ?"

"अपने पेट के लिए कुछ उपक्रम करने"

"क्या वह कुछ करती भी है ?"

"हाँ, उसे अवश्य करना चाहिये। निःसहाय स्त्री का बिना कुछ किये कैसे काम चल सकता है ?"

अब मि० दत्त को बड़ा क्रोध आया और वह बीच ही रास्ते में ज्योत्सना से बिदा लेकर अपने घर की ओर चल पड़े।

× × ×

१९

कृष्णमुरारी ने अल्मोड़ा में पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्तकर ली थी। अ र उनका मन वहाँ की असभ्य जातियों में लग गया था। रात दिन वह उन्हीं के साथ रह कर अपना जीवन व्यतीत कर रहे थे। उन्हीं के कारण वहाँ की जातियों में सुधार की भावना जागृत हो चुकी थी और वे कृष्णमुरारी को बड़ी श्रद्धा की दृष्टि से देखते थे।

एक दिन कृष्णमुरारी एक शिलाखंड पर बैठे दो तीन बच्चों को पढ़ा रहे थे कि आठ दस सैनिकों की एक टोली घूमती २ वहाँ आ निकली। सैनिक स्वभाव ही से उद्दण्ड होते हैं इसलिए कृष्ण-मुरारी ने बच्चों को समझा दिया कि ऐसे लोगों से डरना नहीं चाहिए। उनके साथ सरलता का व्यवहार करना चाहिये। बालक यद्यपि भयभीत हो गये थे परन्तु कृष्णमुरारी के समझाने से उनमें कुछ साहस हो आया। सैनिक आकर उन लोगों के चारों ओर खड़े हो गये और इन छोटे बच्चों को देख देखकर प्रसन्न होने लगे। इतने में उन्हीं में से एक जवान सैनिकने निकलकर पूछा—

"क्या आप इन बच्चों को पढ़ाते हैं?"

"जी हाँ" कृष्णमुरारी ने उत्तर दिया।

सैनिक बड़े ध्यान से उनकी ओर देख कर बोला—

"ऐसा मालूम होता है कि मैंने आपको कहीं देखा है?"

"मुझे"

"जी हाँ, आपको। आपका शुभ नाम क्या है?"

कृष्णमुरारी ने देखा कि सैनिक का व्यवहार बड़ा सज्जनोचित

है। पहले तो उन्होंने नाम बतलाना ठीक न समझा परन्तु कुछ सोचकर कहा—

"मेरा नाम कृष्णमुरारी है।"

सैनिक खड़ा हो गया और प्रणाम कर बोला—

"क्षमा कीजियेगा, मैं आपको पहचान न सका।

कृष्णमुरारी बड़े असमञ्जस में पड़ गये। उन्होंने यह समझकर कि यह मेरा कोई परिचित है, खड़े होकर उसके प्रति सम्मान प्रगट किया और बैठने को कहा। सैनिक बैठते हुए अपने साथियों से बोला—

"तुम लोग जाओ, मैं थोड़ी देर बाद आऊँगा।"

सैनिकों के चले जाने पर वह बोला—

"आप मुझे न पहचानते होंगे परन्तु मैं आपको भलीभांति जनता हूँ।

"मैं स्वयं आश्चर्य में हूँ कि आपको मैंने कहाँ देखा है?

"मेरा नाम सुनीलकुमार है और मैं ज्योत्स्नादेवी का सहपाठी हूँ। सुनील का नाम सुनते ही उनके मुखपर आश्चर्य की हलकी छाया खेल गयी। वह सोचने लगे, इसी का पत्र ज्योत्स्ना के नाम आया था। अवश्य यह ज्योत्स्ना की बातें जानता होगा परन्तु वह संभल कर बोले—

"मैं आपको केवल जान भर रहा हूँ। परन्तु आप यहाँ कैसे आये?"

"मैं तो अब तक दिल्ली ही में था। मुझे फौज के साथ कुछ दिन यहाँ रहने का आर्डर मिला और मैं चला आया।"

"तो लाव-लश्कर के साथ आने का कारण?"

"इसके कैप्टेन जो हूं।" स्वर में झेंप थी।

"तब तो आप बहुत बड़े आदमी हैं।"

इस पर दोनों हंस पड़े। कृष्णमुरारी ही ने पूछा—

"आजकल ज्योत्स्ना देवी कैसी है ?"

"क्या बताऊँ ! आपके सामने कहने में लज्जा आती है।"

"कहिए। लज्जा की कौन बात है। बहुत दिनों से उनका कोई समाचार नहीं मिला।"

"उनकी दूसरी शादी होने जा रही है।

कृष्णमुरारी पर मानों वज्र गिर पड़ा। उनको यह विश्वास न था कि ज्योत्स्ना अपनी मर्यादा पर कुठाराघात करेगी। उन्होंने फिर पूछा—

"किसके साथ......।"स्वर में एक हलका कम्पन था।

"मि० एन० दत्त के साथ। वह अभी आई० सी० यस० होकर आये हैं और वहाँ के मजिस्ट्रेट हैं।

"तो क्या उनके पिता और भाई दोनों ने राय दे दी है।"

"उनके भाई तो कहीं गये हुए हैं परन्तु उमेश बाबू तो इसके लिए बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं और उन्होंने ही इस विवाह को ठीक भी किया है।"

कृष्णमुरारी बड़े सोच में पड़ गये कि अब क्या होगा ! जिसके लिए मैंने इतना बड़ा त्याग किया वह हमसे दूर भागना चाहती है। सच है स्त्री का हृदय पत्थर से भी कठोर और जल से भी तरल होता है। ज्योत्स्ना ने मेरा अपमान किया था परन्तु मुझे उसका किंचित्त मात्र भी दुख नहीं था। आज उसके विवाह की सूचना सुन कर मैं विस्मित होता हुआ भी शान्त हूँ। क्या कर सकता हूँ ! अब मेरा उसका सम्बन्ध ही क्या ? मैंने तो उसी दिन समझ लिया था कि ज्योत्स्ना सर्वदा के लिये घर में अन्धकार करती जा रही है। उनके मुख से एकाएक निकल पड़ा—

"ज्योत्स्ना" और नेत्र सजल हो आये। सुनील को इनकी यह अवस्था देख कर बड़ा दुख हुआ। उसने कहा—

"आप दुखित क्यों होते हैं ? आपने तो उनका स्वभाव देखा ही होगा। ऐसी स्त्रीयाँ किसी एक की नहीं होतीं।"

दुख केवल इस बात का है कि मेरा उनपर विश्वास था। मैं यहाँ हूँ परन्तु मुझे आशा थी कि वह किसी दिन अवश्य आवेगी परन्तु आज सारी अभिलाषायें नष्ट हो गईं, इच्छाओंपर तुषारापात हो गया—मनुष्य क्या से क्या हो जाता है, इसे कौन जान सकता है। उन्होंने निराशा भरे नेत्रों से सुनील की ओर देखा और पूछा—

"आप अब उनके यहाँ नहीं जाते !!"

"नहीं, बिल्कुल नहीं। मैं उनपर विश्वास करता था। परन्तु जब यह बात मुझे मालूम हुई तभी से मैं उन पर अश्रद्धा रखने लगा। एक दिन मैंने जब अपनी आंखो से उनकी लीला देखी तो मेरी अश्रद्धा घृणा के रूप में बदल गयी।'

"आप ने क्या देखा था ?

"कहने में भी संकोच होता है।"

"कहिए, जिस वस्तु से अब कोई सम्पर्क नहीं, उसके गुण-दोषों की विवेचना करने में कोई दोष नहीं।"

सुनील एक बार हिचका परन्तु तत्काल ही बोल उठा—

"मैंने एक दिन संध्या को देखा ज्योत्स्ना देवी स्वछन्द भाव से बैठी पियानो बजा रही हैं और मि० दत्त उनके बगल में बैठे बड़े प्रेम से हंस २ कर उनसे वार्तालाप कर रहे हैं। मैं उनसे मिलने गया था परन्तु यह दृश्य देख कर उलटे पैरों लौट आया और तब से कभी नहीं गया। उस घटना के दो ही दिन बाद मुझे

मालूम हुआ कि ज्योत्स्ना देवी की शादी मि० दत्त से होने जा रही है।"

इतना कह सुनील भी चुप हो गया। कृष्णमुरारी स्मृति की धुँधली ज्योति में देखा कि अलका खड़ी उनकी ओर देख रही है। उसके नेत्रों में कातरता है परन्तु उनका हृदय शान्त है, गम्भीर है सागर की भाँति अपनी शीतलता में बड़वानल छिपाये। उनकी मौन-वृत्ति देखकर सुनील ने पूछा—

"क्या अलका को लिख दूँ कि आप यहाँ पर हैं क्योंकि उनका अनुरोध था कि यदि कहीं भी आपका समाचार मिले उन्हें सूचित करूँ।

"उन्हें यहाँ बुलाकर क्या करूँगा। वह मुझे लाहौर चलने के लिये बाध्य करेगी और मैं वहाँ अभी थोड़े दिन नहीं जाना चाहता। अभी कुछ दिन रुकिये तब समाचार दे दीजियेगा।"

सुनील स्वयं अलका की ओर कुछ आकर्षित हुआ था और वह इसीलिए इस सुन्दर भूमि में उसकी उपस्थिति चाहता था। वह अलका को स्वयं नहीं बुला सकता था, इसलिए कृष्णमुरारी के बहाने बुलाना चाहता था। यह अवसर उसको बड़ा सुन्दर मिला। कृष्णमुरारी ने पूछा—

"अभी आप यहाँ कितने दिन तक रहेंगे।"

"कोई ठीक नहीं है परन्तु कम से कम एक महीना तो रहूँगा ही।"

"तब तो आप के साथ मेरा दिल बहला रहेगा।"

"यह आपकी कृपा है" कहता हुआ सुनील उठा और बोला—

"आप कहाँ रहते हैं?"

"उस झोपड़े में" दूर पर इशारा करते हुए कृष्णमुरारी ने कहा—

"तब तो आप पूरी तपस्या करते हैं।"

"तिसपर भी तो फल अच्छा नहीं मिलता दिखाई दे रहा है।"

सुनील हँस पड़ा और फिर मिलने का वादा कर चला गया कृष्णमुरारी उसकी ओर बड़ी देर तक देखते रहे।

सुनील के चले जाने पर कृष्णमुरारी बड़ी देर तक वहाँ बैठे रहे। जिन बच्चों को वह पढ़ा रहे थे, वे भी चले गये थे। एकान्त में मनुष्य का हृदय कल्पनाओं का कोटर हो जाता है। वह विचारों की उलझन में पड़ जाता है। कृष्णमुरारी को चिन्ता थी, भावी जीवन का प्रश्न हल करना था। वह अब तक भविष्य की मरुभूमि में मृग-मरीचिका की ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रहे थे परन्तु वहाँ पहुँचने पर केवल शुष्क निराशा के ही दर्शन हुए। वह निराश हो गये, जीवन संघर्ष से हारे व्यक्ति की भाँति। उन्होंने विचार किया कि यहाँ से भी कहीं चला जाऊँ, जहाँ अपना कोई न हो, सहानुभूति का भी अभाव हो। विचारों की मेघमाला ने उनके हृदय का ढँक लिया, वह संज्ञा-शून्य होकर बड़ी देर तक बैठे ही रह गये।

सुनील अपने कैम्प में आकर अलका को पत्र लिखने बैठा। यौवन की पहली मुस्कान बड़ी मोहमयी होती है। सुनील युवक था, स्वतन्त्र और निर्द्वन्द। उसका जीवन अभी सुख-पलनों में बीता था और नौकरी भी उसे स्वभावानुकूल मिली थी। उसके जीवन में एक लहर थी, और उसमें भी एक उन्माद। वह ज्योत्स्ना के विचारों से प्रसन्न रहता हुआ भी उसके व्यवहारों से चिढ़ता था क्योंकि ज्योत्स्ना को रूप का गर्व था, धन का मोह था। अलका को पत्र लिखने के लिए उसे कई घन्टे सोचने पड़े। वह उसे क्या लिखे, किन भावों का समावेश करे

इसी उधेड़बुन में वह पड़ा रहा। अन्त में अपनी मनोभावना उसपर प्रगट न हो, इस विचार से उसने केवल यही लिखा कि बाबू कृष्णमुरारी यहाँ पर हैं, यदि आप उनसे मिलना चाहती हैं तो तुरंत चले आइये।

दूसरे दिन फिर सुनील कृष्णमुरारी के झोंपड़े पर पहुँचा। उस समय वह बैठे कुछ पढ़ रहे थे। वह पुस्तक में इतने तल्लीन थे कि उन्हें यह विदित न हुआ कि कोई उनसे मिलना चाहता है। बड़ी देर तक सुनील उनके पीछे खड़े होकर उनकी तल्लीनता को देख रहा था कि एकाएक कृष्णमुरारी ने पुस्तक बन्द किया और उठे। सुनील को पीछे देखकर वह बोले—

"आप कब से खड़े हैं ?"

"बड़ी देर हुई। मैं आपकी तन्मयता देख रहा था।"

"क्या करूँ। अब मेरी तन्मयता इन्हीं पुस्तको में रह गयी है" कहते हुए उन्होंने एक चटाई बिछा दी और उस पर सुनील और वह स्वयं बैठ गये। सुनील ने कुछ देर तक इधर उधर की बातों के बाद पूछा—

"यहाँ के शान्त जोवन में आपको क्या आनन्द आता है ?"

"इसका आनन्द तो मैं ही जानता हूँ अथवा वह जान सकता है, जिसने संसार का पर्याप्त आनन्द ले लिया है।"

"आपने तो अच्छा उत्तर दिया।"

एक बनावटी हँसी के साथ कृष्णमुरारी ने कहा—

"आनन्द तो एक कल्पना की वस्तु है। जो आनन्द की जितनी सुन्दर कल्पना करेगा, उसे उतना ही आनन्द मिलेगा।"

"तब तो आप बड़े ही सुखी होंगे।"

"इसका प्रमाण तो आप से छिपा भी नहीं है। जिस सुख की आप कल्पना करते हैं वैसा सुख भगवान की कृपा से किसी

को भी न मिले, नहीं तो उसके लिए मृत्यु और जीवन का कोई अन्तर न प्रतीत होगा।

काँप उठी कृष्णमुरारी की आत्मा उस कंकाल को देखकर, जो अभी २ उनके सन्मुख आ खड़ा हुआ था। साथ में उसके उसकी स्त्री थी। उन्होंने स्त्री से पूछा—

"इन्हें क्या हो गया है?"

स्त्री का रुदन स्वर वेदना की ठेंस से बढ़ चला।

"तुम घबड़ाओ नहीं, साफ़ साफ़ बताओ इन्हें क्या हुआ है।"

स्त्री अटकते हुए स्वर में बोली—

"ये बीमार हैं और अब जीवन की अन्तिम घड़ियाँ गिन रहे हैं।"

"तो क्या तुमने इनकी दवा नहीं की।"

"नहीं। मेरे पास जितने रुपये थे वे सारे लगा दिये परन्तु अब एक पैसा भी नहीं है। किससे माँगू क्या करूँ, कोई मेरा साथ देने वाला नहीं है" स्त्री की वाणी में करुणा रो रही थी।

उन्होंने कहा—"घबड़ाने की कोई बात नहीं है, मैं जल्दी ही इसका प्रबन्ध करता हूँ। वह इतना कह ही पाये थे कि पांड़ेजी के साथ रामचरन भी अन्दर आ गया। कृष्णमुरारी ने कहा—

"देखो पांड़ेजी! अपने गाँव की दशा। थोड़े से अन्न के लिए एक पुरुष की जान जा रही है और कोई भी उसकी खोज खबर लेने वाला नहीं है। ऐसे गाँव से तो ऐसी जगह रहना अच्छा है" जहाँ अपना भी कोई न हो।"

इस बात का प्रभाव पाँड़ेजी पर अधिक पड़ा। उन्होंने कहा कि आप ठीक कहते हैं।" उस दयनीय दृश्य को देखकर कठोर हृदय भी पिघल उठा, हिम की भाँति ढुलकता हुआ निर्झर के मधुर श्रोत की भाँति जगत को संदेश देने। उन्होंने कहा—

तब तो इनका शीघ्र प्रबन्ध करना चाहिए।"

"अवश्य! मनुष्य की सेवा ही सबसे बड़ा धर्म है।" तुम इनके लिए कुछ गर्म दूध का प्रबन्ध करो और मैं डाक्टर को बुला लाता हूं। इतने में रामचरन बोल उठा—

"मैं क्या करूँ?"

"अभी तो तुम्हारे ऊपर स्वयं विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ा है, तुम दूसरे की क्या सहायता करोगे? घर जाकर अपना प्रबन्ध ठीक करो तब आना।"

रामचरन खड़ा रह गया अवाक होकर, जीवन की दो धाराओं के मध्य में कर्त्तव्य और स्वार्थ की विवेचना करते हुए।

निरन्तर चोट के कारण कठोर से कठोर वस्तुएँ दुर्बल हो जाती हैं। केवल रस्सियों के दरेर से पत्थरों पर लीक पड़ जाती है। जल की लहरों की संघात से तट के पाषाण सुडौल और चिकने बन जाते हैं। मंगल पाँड़े गाँव के पुरोहित जो अपने सुख से बिश्व-सुख की कामना करते थे, जिनकी बुद्धि प्राचीनता के टूटे फूटे रोड़ों से बनाई गई थी, जिनके विचारों का लोहा सारा गाँव मानता था और जिनकी वाणी ब्रह्मा की दूसरी वाणी होती थी; वही प्राचीनता का पुजारी, धर्म के नाम पर शोणित बहा देने वाला हृदय अपने में विद्रोह कर उठा—"मनुष्य एक है, उसकी आकांक्षायें समान हैं, सभी को एक दूसरे का सहयोगी होना चाहिए।" मिट गयी वह भावना जिसके सम्मुख आधुनिकता हाथ जोड़े खड़ी रहती थी, गाँव की संगठित बुद्धि का कोई अस्तित्व न था। इतने बड़े जीवन में उस ब्राह्मण हृदय ने किसी का भला न चाहा था। किसी की उन्नति न देखी थी और किसी को गर्व में फूलते न देखा था। जो उस संकुचित सीमा में आया, वह हाथों का बटेर हो गया परन्तु—

परिस्थिति मनुष्य में परिवर्त्तन कर देती है। सर्वदा मनुष्य एक सा नहीं रहता। आज मंगल पाँड़े पशु से मनुष्य हुए थे। वे दौड़कर गाँव में गये और स्वयं गाय का दूध दूहने लगे। किसी ने प्रणाम किया, किसी ने पालागन, किसी ने बड़ी श्रद्धा से देखा तो कोई हाथ जोड़े खड़ा रह गया परन्तु पाँड़ेजी ने किसी पर ध्यान न दिया। उनमें विचित्र परिवर्तन हो गया था। उनके सामने नेत्रों में, रोम रोम में तथा कानों में यही स्वर गूँज रहा था—"मनुष्य की सेवा जीवन का सबसे बड़ा धर्म है।" घर के नौकरों ने जब यह दशा देखी तो चकित रह गये। स्त्रियों ने जब यह देखा तो घबड़ा गयीं परन्तु कर्त्तव्य के सम्मुख लोक-लज्जा का कोई मूल्य नहीं। पाँड़ेजी ने दूध गरम किया और उसी गति से बिना किसी से बोले उसके घर पहुँचे। स्त्री गाँव के पुरोहित को अपने घर आया देख रोने लगी और कहने लगी—

"अब मुझे पूर्ण आशा है कि ये बच जायेंगे, जब आपकी इतनी कृपा है तो इनका कुछ नहीं हो सकता।"

पाँड़ेजी को मालूम पड़ा जैसे वह आज बड़े महान हो गये हैं। उन्हें एक विचित्र आनन्द का अनुभव हो रहा था। स्त्री दूध पिला ही रही थी कि कृष्णमुरारी डाक्टर को लेकर आ पहुँचे। डाक्टर ने मरीज को देखा और आश्वासन दिया कि रोगी अच्छा हो जायेगा। दवा देकर डाक्टर चला गया तो कृष्णमुरारी ने पाँड़ेजी से कहा—

"पाँड़ेजी! आपने तो एक आदमी की जान बचा ली।"

यह सब आप ही का प्रसाद है। उनके नेत्रों में आनन्द के अश्रु थे।

× × ×

२०

दूसरे दिन ही गाँव पर जमींदार का क्रोध अत्याचार के रूप में बरस पड़ा। गाँव के स्वामी के सामने जनता का इतना साहस की उसकी आज्ञाओं का उल्लंघन करे, जान बूझकर सोये सर्प को जगा दे। जमींदार का क्रोध भड़क उठा था प्रलय के रूप में, निस्सहाय और अनाथ जनता पर वज्रपात करने के लिए। सिपाहियों का एक दल आकर गाँव में जमा गया और एक को जमींदार के यहाँ चलने को वाध्य करने लगा। जो लोग आनाकानी करते उन पर कोड़ों की मार पड़ने लगी। परिणाम यह हुआ कि दो दल हो गये और स्थिति कठिन होने लगी। मंगल पाँड़े ने सिपाहियों से कहा कि कोई भी तुम्हारे साथ नहीं जा सकता और यदि तुम लोग कठोरता का व्यवहार करोगे तो अच्छा न होगा। पाँड़ेजी का साहस देखकर गाँव वाले कुछ कठोर तो हुए परन्तु भविष्य की चिन्ता करके घबड़ा रहे थे।

इनका द्वन्द उग्र रूप धारण करने ही वाला था कि कृष्णमुरारी आ पहुँचे। उनको देखते ही ग्रामवासियों में एक साहस का संचार हो आया। पुलिस वाले कठोर पड़ते जा रहे थे। कृष्णमुरारी ने आते ही पूछा—

"तुम लोग क्या चाहते हो ?"

सिपाहियों के नायक ने कड़क कर कहा—

"हमलोग इनको जमींदार के यहाँ ले जायेंगे।"

"क्यों ?"

"जमींदार का हुक्म है।"

"जमींदार का हुक्म क्या, राजा का भी हुक्म हो तो ये नहीं जा सकते। ये लोग उनके नौकर नहीं हैं कि हुक्म पाते ही दौड़ जायँ।"

"तो क्या ये लोग नहीं जायेंगे ?"

"नहीं !" सभी चिल्ला उठे।

नायक ने अपने सिपाहियों से जबर्दस्ती करने को कहा परन्तु भीड़ उत्तेजित हो गयी और सभी एक स्वर में चिल्ला उठे—

"सावधान, किसी के शरीर पर हाथ न लगाना नहीं तो ठीक न होगा।"

कृष्णमुरारी बीच में आ गये और नायक से बोले—

"तुम व्यर्थ में झगड़ा पैदा करना चाहते हो। यहाँ से कोई भी तुम्हारे यहाँ न जायेगा, तुम जाकर अपने स्वामी से कह दो।"

नायक ने कहा—

"क्या आप ही इस झगड़े की जड़ हैं ?"

"नहीं ! मैं तो झगड़ा दूर करना चाहता हूँ। मैं कभी भी नहीं चाहता कि किसी के विचार के विरुद्ध उससे काम लिया जाय। मनुष्य स्वतन्त्र है और उसे स्वतन्त्र रहना चाहिए।"

"तो कानून कोई वस्तु नहीं।"

"है, परन्तु कानून वही मान्य हो सकता है जो जनता के हित का हो। उस कानून का कोई मूल्य नहीं जो जनता के हित का न हो।"

"अच्छा होता कि आप अपने को अलग रखते। हम लोग इन लोगों से समझ लेंगे।

"आप अप्रसन्न न हों। आप तो हमारे भाई हैं, हमीं पर जब अत्याचार करेंगे तो आप ही सोचिये कि आपको क्या लाभ होगा।"

"ठीक है परन्तु हम लोग भी तो किसी के नौकर हैं, उनकी आज्ञा पालन करना हमारा धर्म है।"

"अच्छी बात है, तो आप जो चाहें करिये।"

नायक सिपाहियों को लेकर चला गया। उसने समझ लिया कि बात बढ़ाना व्यर्थ है। उस दिन ग्राम वालों का कृष्णमुरारी पर अगाध श्रद्धा हो गयी और उनकी ख्याति आस-पास के कई गाँवों में फैल गई। कृष्णमुरारी ने उस दिन गाँव में सन्ध्या को एक सभा करने का आयोजन किया और उसकी सूचना आस-पास के सभी गाँवों में भेज दी गयी।

संध्या होते होते ही गाँव के बाहर एक मैदान में ग्रामीण एकत्रित होने लगे। गाँव के सभी लोगों में एक नया उत्साह दिखाई दे रहा था। सभा मण्डप के बीच एक ऊँचा मंच बना था। मंगल पाँड़े और कृष्णमुरारी दौड़ दौड़ कर लोगों के बैठने का प्रबन्ध कर रहे थे। दूर दूर के गाँव के लोग भी धीरे धीरे आ रहे थे। कृष्णमुरारी का नाम सुनकर अल्मोड़ा के अच्छे अच्छे लोग भी आ पहुँचे। उनकी ख्याति इस प्रकार फैल गयी थी कि सन्ध्या होते ही ग्रामीणों को एक बड़ी संख्या एकत्रित हो गयी और एक नया उमंग दिखलाई पड़ने लगा। पाँड़ेजी में परिवर्त्तन देखकर सभी लोगों के भाव बदल रहे थे और प्राचीन रूढ़ियों के पक्षपाती कितने पंडित दाँतो तले अँगुली दबा रहे थे। सब लोगों के इकट्ठा हो जाने पर मंगल पाँड़े ने पहले पहल भगवान की एक प्रार्थना सुनाई और तब कृष्णमुरारी करतल-ध्वनि के बीच खड़े हुए और बोलना आरम्भ किया—

"भाइयो! आज आपके बीच मैं अपने कुछ विचार प्रगट करना चाहता हूँ। यह मुझे भलीभाँति विदित है कि आप की स्थिति इतनी दयनीय है कि आप कोई कठिन काम एकाएक

नहीं कर सकते परन्तु कुछ कार्य ऐसे हैं जो आप अपने ही सहयोग से करके अपने में एक शक्ति और संगठन का विकास कर सकते हैं। सर्व प्रथम आप में जो कुरीतियाँ या पाखंड आ गये हैं इनको दूर कर देना चाहिए। आज से हज़ारों वर्ष पूर्व भारतवर्ष के गाँव संसार में सर्वश्रेष्ठ समझे जाते थे, इसका मुख्य कारण यही था कि उस समय के गाँवों में संगठन था और आपस में फूट न थी। परन्तु आज के गाँव फूट और विरोध के घर हो गये हैं। पारस्परिक फूट या विरोध का कितना घातक प्रभाव देश पर पड़ता है, इसका ज्वलन्त उदाहरण हमारा इतिहास है। हमें यह देखकर बड़ा दुख होता है कि जरा सी बात पर आप भविष्य का ध्यान न रखते हुए अपने भाई का ही गला काटने को तैयार हो जाते हैं। इससे आपकी हानि और दूसरों का लाभ होता है। इसी के परिणाम स्वरुप आज भारत परतन्त्र है। आप लोगों का कर्तव्य है कि आप अपनी संकुचित भावना छोड़कर आपस में प्रेम और सहानुभूति रक्खें। यदि किसी की भूल से त्रुटि हो जाय तो गाँव की पंचायत उसका निर्णय करे। हम यह नहीं चाहते कि हमारे आपस के झगड़ों का फैसला दूसरों की इच्छा पर निर्भर रहे। आप लोगों में अन्धविश्वास और कुरीतियों का अड्डा बना हुआ है। उसका मुख्य कारण आप लोगों की निरक्षरता है। जब तक आप में शिक्षा का प्रचार भलीभाँति न होगा तब तक आप में अपने भले बुरे सोचने की शक्ति न आयेगी। आधुनिक युग में जितने देश उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचे हुए हैं, वहाँ के लोग अधिक संख्या में सुशिक्षित हैं। आपको यह आश्चर्य होगा कि भारत ऐसे विशाल देश में केवल नौ प्रतिशत व्यक्ति शिक्षित हैं जहाँ इंगलैंड, जर्मनी, फ्रांस तथा जापान इत्यादि देशों की जनता नब्बे प्रतिशत शिक्षित है।

आप लोगों में बाल-विवाह इत्यादि ऐसी कुप्रथायें और अन्ध-विश्वास हैं जिससे आप लोगों का नैतिक पतन बड़ी शीघ्रता से हो रहा है और आप अपने स्वाभिमान को लात मार कर बुरी व्यवस्थाओं और रिवाजों के दास हो रहे हैं। आप लोगों का कर्तव्य है कि आप सभी लोग अपने गाँवों में पाठाशालाओं की स्थापना करें और उसमें शिक्षा के साथ साथ रचनात्मक कार्य भी सिखलाये जाँय। भारत की भावी सन्तति शिक्षित होकर अपने देश समाज और कुटुम्ब की रक्षा कर सकेगी। जो लोग दिन को समय नहीं पाते, उनके लिए रात्रि की पाठशालायें खोली जाँय। जिससे सभी लोग कुछ न कुछ शिक्षित हो सकें। बहुधा ऐसा देखा जाता है कि गाँव वालों की अशिक्षा के कारण दूसरे लोग उनसे अधिक लाभ उठाते हैं और उनपर अत्याचार भी करते हैं। मूर्खता एक अभिषाप है जिसका निवारण आप के ही सहयोग से हो सकता है।

बहुधा यह देखने में आया है कि गाँव की अधिकांश जनता गरीब है। यद्यपि ये लोग कार्य अधिक करते हैं परन्तु उनका मूल्य उस कार्य के सामने कुछ भी नहीं होता। इन गरीब किसानों की हड्डियों से चूसी कमाई पर बड़े २ सेठ साहूकार और पूँजीपति अपने महलों को खड़ाकर सब प्रकार के वैभव का आनन्द लेते हैं, परन्तु इनको खाने को अन्न नहीं मिलता, इनके बच्चों को कपड़े नहीं मिलते। इनका जीवन पशु से भी गिरा हुआ है। शीत की कठिन सर्दी में, ग्रीष्म की भयंकर गर्मी तथा वर्षा के मूसलाधार जल में खड़े होकर ये किसान अपने-जीवन के सहचर दो बैलों के साथ खेत की मिट्टी में अपना फूटा भाग्य खोजते फिरते हैं। आपके जीवन और नगरों के आनन्दमय जीवन में कितना अन्तर है! भूमि और

आकाश का, पर्वत और परिमाणु का। जहाँ एक ओर चकाचौंध करने वाली ऊँची २ अट्टालिकायें संसार के विलास और ऐश्वर्य में डूबी खड़ी हैं वहीं दूसरी ओर घास फूस की टूटी फूटी झोपड़ियाँ जैसे कंकालों का श्मशान बन रही हैं। मनुष्य सभी हैं, परन्तु इतना परिवर्त्तन! एक स्वतन्त्र है और रुपयों को पानी की भाँति बहा कर अपनी बड़ी से बड़ी आकांक्षा पूर्ण कर लेता है, तो दूसरा अपनी क्षुधा की शान्ति के लिए दिन भर परिश्रम करता है। उसकी अभिलाषायें निराशा के घेरे में ही छिप जाती हैं। गरीबी एक पाप है। वह मनुष्य जो दरिद्र है, गरीब है, दीन है उसका कोई अस्तित्व नहीं। इसलिए आपको चाहिए कि सहायता के द्वारा गरीबों को सुमार्ग पर लाकर उनका जीवन सुन्दर बनाइये। आप अपने कार्य्यों का मूल्य समझिये, अपनी कमाई का सदुपयोग कीजिये, देखिये तब पता लगेगा कि आप कितने महान हैं। आपके ऊपर सारा देश आश्रित रहता है, आप सब के पालक और संरक्षक हैं। आप दूसरों के लिए अपना बलिदान करते हैं। आप संगठित होकर अपनी दुर्बलताओं को दूर कीजिये और गरीबी जो एक पाप है उसे दूर करिये।

आपकी संख्या देश में सब से अधिक है। आपके संगठन में वह शक्ति है जो बड़े बड़े सम्राटों की सत्ता में नहीं मिल सकती। आपके कोप से आकाश कांप उठेगा, आपके प्रण के आगे अचल चंचल हो जायेगें। बड़े बड़े अत्याचारियों का सिंहासन डगमगाने लगेगा। आप के संगठन में जादू है, आपके स्वर में देश की आत्मिक पुकार है। आप अपना मूल्य देखिये और अपने अस्तित्व की शक्ति का अनुभव कीजिये तब पता लगेगा कि आपका संसार के परिवर्त्तन में कितना हाथ है।"

सारी जनता उनकी ओर मुग्ध की भाँति देख रही थी,

चातक की भाँति जो बहुत दिनों से उस सरस सुधा-धार के लिए व्याकुल थी। अन्त में उन्होंने कहा—

"भाइयों। जो कुछ मुझे कहना था वह कह चुका। अब आपसे यह आशा है कि आप मिलकर मेरी बातों पर विचार करें और एक योजना बनाकर उसेकार्यान्वित करें।"

कृष्ण मुरारी के वैठते ही सारा आकाश मंडल जय जयकार की करतल ध्वनि से भर गया। सभी के नेत्रों में कृष्ण मुरारी का चेहरा चित्र की भाँति उतर आया और विदित हुआ कि इस व्यक्ति के हृदय में कितना बड़ा ज्वालामुखी पहाड़ छिपा हुआ है। ध्वनि समाप्त होते ही मंगल पांड़े उठे और बोलना शुरू किया—

"भाइयों! आप लोगों ने अपनी दुर्बलतायें सुन लीं और उनके दूर करने के उपाय भी समझ लिए। मैं इतना विद्वान नहीं कि अब इससे अधिक समझा सकूँ। मेरा एक विचार है कि इस पुनीत अवसर पर किसी संघ की स्थापना की जाय, जिस में हमलोग समय समय पर एकत्रित होकर अपनी समस्याओं पर विचार विनियम कर सकें। तथा भविष्य के लिए सुचारु रूप से कार्य निर्धारित कर सकें।

इस राय पर सभी बड़े प्रसन्न हुए और कई लोगों ने इसका समर्थन भी किया। बड़ी देर पश्चात् लोगों ने उसी स्थान पर "जनता सेवा संघ" की स्थापना की और उसका प्रधान सभापति कृष्ण मुरारी को चुना और मन्त्री मंगल पांड़े बनाये गये। सभा की कार्यवाही समाप्त हुई और सभी लोग कृष्ण मुरारी की प्रशंसा करते हुए घर लौटे।

× × ×

शिकार हो रही हैं। हमें जीवन की सार्थकता का पता नहीं है। हमारी योग्यता और हमारी सहनशीलता तभी सफल होगी जब उपकारों से किसी का भला होगा, किसी का दुख दूर होगा और कोई हमारे कार्यों की सराहना करेगा।"

"परन्तु हमें कौनसा कार्य करना चाहिए।"

"हमारा कर्त्तव्य होगा कि हम स्त्रियों में जागृति पैदा करें, उनके अंधविश्वास को निकाल फेंके और उनमें शिक्षा के प्रचार द्वारा उनकी कायरता दूर कर, उन्हें जीवन का मूल्य समझावें।

"तो क्या वे हमारी बातें मान लेंगी।"

"क्यों नहीं! हम लोग अपना दल बनायेंगी! हम उनको समझायेंगी।"

"अच्छी बात है।"

"तो अभी सुधा के पास चलो, उसे भी अपना सन्देश सुना दूँ।"

प्रभा तैयार हो गई और ज्योत्स्ना के साथ सुधा के घर की ओर चल पड़ी। सुधा कहीं जाने को तैयार ही थी कि ज्योत्स्ना प्रभा को लिए आ पहुँची। उसने ज्योत्स्ना को देखकर अपना जाना स्थगित कर दिया और पूछ बैठी—

"इस समय आप कैसे आयीं।"

ज्योत्स्ना ने अपना सारा विचार उसके सामने कह सुनाया। सुधा ने इसे सहर्ष स्वीकार लिया और यह निश्चित हुआ कि दूसरे दिन से ही कार्य प्रारम्भ कर देना चाहिए।

ज्योत्स्ना जब सुधा के घर गयी, उस समय उमेश बाबू उसके कमरे में उसे खोजते हुए आये। ज्योत्स्ना को वहाँ न पाकर वह लौटना चाहते थे कि उनकी दृष्टि एकाएक समाचार पत्र पर पड़ी। उन्होंने उसे उठा लिया और पढ़ने लगे। प्रथम पृष्ठ पर कृष्ण-

मुरारी का नाम देखकर उनके नेत्र उसपर गड़ गये। उन्होंने उसे बड़े ध्यान से पढ़ा और पढ़कर एक दीर्घ श्वाँस लेकर वहीं बैठ गये। सोचा—उनपर व्यर्थ का लांछन लगा मैंने उन्हें जीवन मे निराश कर दिया है। ज्योत्स्ना की बात पर हमने उसका परिणाम नहीं सोचा। अन्धविश्वासी की भाँति उसकी बातें स्वीकार कर लीं और अनर्थ कर डाला। यह मेरी दुर्बलता है, मेरे हृदय की प्रबलता है। ज्योत्स्ना की वेदना उसे संसार से विरक्त कर रही है, उसको इस जीवन से घृणा हो रही है। अब वह स्वयं पश्चात्ताप कर रही है अपने अभिमान पर, अपने यौवन की प्रथम आँधी पर और अपने हृदय की थोड़ी सी दुर्बलता पर। मैं क्या करूँ! कृष्णमुरारी वास्तव में एक सच्चे हृदय का युवक है। उसमें दृढ़ प्रतिज्ञा की शक्ति है, उसमें एक आशा है जिसके सहारे वह उन्नति की चरम सीमा पर पहुँच रहा है परन्तु यह सम्भव हो सकता है कि कदाचित उसे पूर्ण विश्वास हो गया हो कि ज्योत्स्ना का दूसरा विवाह हो जायगा और इसीलिए वह अकेला होकर देश-सेवा में अपने को उत्सर्ग करना चाहता है। उसके विचार कितने उच्च और परिपक्व हैं, उसके सिद्धान्त कितने महान और सुलभ हैं। उसकी शक्ति ग्रामीणों की टूटी शक्ति में मिलकर संगठित होगी। उसमें एक अनुभव होगा और उसे लोग कितना ऊँचा देखेंगे! कृष्णमुरारी एक नेता बनेगा, ग्रामीणों का देश में एक राग बजाने के लिए, एक शक्ति पैदा करने के लिए और एक जागृति का पाठ सिखाने के लिए और मैं.........जीवन के छोर पर आकर भी कुछ न कर सका। उनकी इच्छा हुई कि एक बार कृष्णमुरारी से मिलूँ और उसके विचारों को समझूँ। यह सोचकर वह बाहर आये और चिन्ता में बैठे वहीं समाचारपत्र पढ़ रहे थे कि सुरेश बाबू अपने

ससुराल से आ पहुँचे। उन्होंने बड़ी श्रद्धा से पिता को नमस्कार किया। उमेश बाबू ने बड़े प्रेम से कहा—

"बैठो सुरेश! तुम्हारे ससुर का क्या हाल है?"

"अब तो पहले से ठीक है।"

"हर्ष की बात है।"

"ज्योत्स्ना कहाँ है?"

"कहीं गयी होगी।". निराशा भरे शब्दों में उमेश बाबू ने कहा।"

पुत्र ने पिता की आकृति देखी तो विदित हुआ कि पिता अधिक दुखित हैं। उन्होंने समझा कि कदाचित तबियत खराब होने के कारण पिताजी की ऐसी दयनीय दशा है परन्तु वे जानते थे कि पिताजी अपने स्वास्थ्य का अधिक ध्यान रखते हैं, अवश्य किसी मानसिक चिन्ता ने उन्हें दुखित कर दिया है। पुत्र की ममता जाग उठी और उन्होंने पूछा—

"पिताजी! आप दुखित दिखलायी देते हैं?"

उमेश बाबू को ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों किसी ने कस कर ठोकर लगायी हो। उन्होंने भरे नेत्रों से एक बार सुरेश की ओर देखा और कहा—

"क्या करूँ बेटा! मैं जीवन भर सुखी होकर भी सुख का मूल्य न समझ सका, जीवन के एक कटु अनुभव को देखकर भी उसका उद्देश्य नहीं जान सका। मैं जीवन को जीतकर भी हार गया। मैंने अपनी अवस्था में बड़े बड़े पेचीदे मुकद्दमे सुने, उन पर विचार किये और उनके उचित निर्णय किये परन्तु ज्योत्स्ना के जीवन का निर्णय मेरे लिए असाध्य हो गया। मैं उसमें अपना ही ध्यान नहीं कर सका कि उसके जीवन की सुग-

मता के लिए मेरा क्या कर्त्तव्य है ? मैं उसी की चिन्ता में अपनी अन्तर्ज्वाला से जल रहा हूँ ?"

"ज्योत्स्ना क्या कहती है ?"

"मैंने चाहा कि उसका दूसरा विवाह कर दूँ परन्तु वह अब उस जीवन से घृणा करती है, दूसरे विवाह के नाम से भागने लगती है, मानों उसका दम घुटा जा रहा हो।"

"तब उसे समझा बुझा कर कृष्णमुरारी के यहाँ ही भेजना ठीक है।"

स्वाभिमान पर धक्का लगा और उमेश बाबू काँप उठे। इसी एक बात पर कभी उमेश बाबू जलते अंगारे बन जाते थे परन्तु आज हिम के समान कठोर होने पर भी गर्मी पाकर पिघल रहे थे। उन्होंने कहा—

"परन्तु कृष्णमुरारी क्या कभी ज्योत्स्ना को स्वीकार करेगा ?"

"मुझे तो आशा है पिताजी ! चाहे ज्योत्स्ना ने उन्हें ठुकरा दिया हो परन्तु वे उसको नहीं ठुकरा सकते। वे विद्वान हैं, वे जीवन के रहस्य को जानते हैं।"

"जब तुम्हारा इतना बड़ा दृढ़ विश्वास है तो ज्योत्स्ना से पूछकर इसका निपटारा शीघ्र कर डालो, जिससे मैं भी कुछ दिन और जीवित रह सकूँ, नहीं तो इसी चिन्ता में घुलघुल कर ज्योत्स्ना को इसी तरह असहाय और निरीह छोड़कर चल बसूँगा।"

"आजकल कृष्णमुरारी कहाँ हैं ?"

उमेश बाबू ने वही समाचार पत्र उनके हाथ में दे दिया। सुरेश बाबू ने विस्फारित नेत्रों से उस समाचार को पढ़ डाला और गम्भीर मुद्रा में निमग्न होकर बोले—

"इनका मार्ग तो कुछ दूसरा ही हो रहा है।

"हाँ, इसीलिए तो मेरी चिन्ता और बढ़ रही है। कदाचित उसे यह पूर्णतया विदित हो गया है कि अब इस जीवन में ज्योत्स्ना न मिलेगी।"

"हो सकता है परन्तु इन कार्यों से इनके पकड़े जाने का भय है।"

"मैं भी यही सोच रहा हूँ कि सरकार ऐसे व्यक्ति को कब तक बाहर रहने देगी।"

"तब ज्योत्स्ना का क्या होगा?"

"क्या बताऊँ! मेरे सामने तो अन्धेरा ही अन्धेरा दिखाई दे रहा है।"

दोनों चुप होकर कुछ सोचने लगे। कमरे की निस्तब्धता में हृदय की वेदना एक मूक रुदन करने लगी। वे लोग बैठे इसी चिन्ता में विभोर थे कि ज्योत्स्ना आ पहुँची और भाई को देखते ही फूली कली की भाँति खिल उठी—

"भैया, कब आये।"

सुरेश बाबू बहन के प्रेम भरे स्वर में तन्मय हो गये। वे खड़े हो गये और उन्होंने बढ़कर ज्योत्स्ना का हाथ पकड़ कर कहा—

"तुम अच्छी हो ज्योत्स्ना!"

"हाँ, कमरे की दीवालों को कँपाती हुई ज्योत्स्ना के हृदय की करुणा फूट पड़ी। सुरेश बाबू की जिह्वा बन्द हो गयी, बहिन के प्रेम के कारण तथा उसकी अवस्था को सोचकर उमेश बाबू ने देखा कि हरिणी के समान ज्योत्स्ना, मयूरिनी के समान ज्योत्स्ना आज किसी भार से लदी हुई, किसी बोझ से झुकी हुई मन्द प्रकाश बिखरा रही है। सुरेश ने उसे पास बैठा लिया और बोले—

"क्या तुमने यह समाचार पत्र पढ़ा?"

"हाँ, मैं सबसे पहले इसे पढ़ चुकी हूँ।"

"तो इसका क्या परिणाम निकाला ।"

"वही जो होना चाहिए। जब उन्हें सुख नहीं, जब उन्होंने सारे संसार को लात मार कर अपना जीवन देश सेवा में उत्सर्ग कर दिया है, तो मैं सुख को भोगकर क्या करूँगी। उसका उपयोग कर किस जीवन का तत्व समझूँगी ।"

"तो क्या तुम भी जीवन से निराश हो जाओगी ।"

"नहीं, बल्कि जीवन सार्थक करूँगी और सफलता प्राप्त करूँगी ।"

"कैसे बेटी !" उमेश बाबू ने चकित होकर पूछा।

"जैसे उन्होंने किया है ।"

"क्या तुम उनकी तरह अपना जीवन व्यतीत करोगी ।" स्वर में एक आरोह था। "जी हाँ, पिताजी ! मुझे आज ही तो जीवन का मूल्य विदित हुआ है। जीवन का सुख जी भर उठा चुकी हूँ, अब उससे घृणा हो गयी है। मैं अब काँटों में फूल खिलाना चाहती हूँ, चट्टान पर दूब उगाना चाहती हूं और ऊसर पर हरा भरा खेत बनाना चाहती हूँ। मेरी दुर्बलता आज साहस के रूप में परिणत हो गयी है। मैं सब कुछ कर सकती हूँ और करूँगी। चाहे मार्ग में पर्वत खड़ा हो या काँटे बिछे हों। प्रण के सम्मुख कठिनाइयाँ भी फूल हो जाती हैं ।"

"यह मैं क्या सुन रहा हूँ ज्योत्स्ना ।"

"जो आप सुन रहे हैं वह ठीक है। अब इस नारी हृदय में, अह ज्वाला नहीं छिप सकती, वेदना नहीं रुक सकती। सीमा का उल्लंघन ही विनाश का कारण है परन्तु क्या करूँ ? विवश हूँ अपनी स्थिति के कारण, मेरे सम्मुख जीवन का सबसे बड़ा कार्य क्षेत्र है ।"

पिता चुप हो गये पुत्री की वाणी के सम्मुख, उस बहती जल-

धारा के प्रवाह का झोंका वह कच्ची मिट्टी के बाँध से नहीं रोकना चाहते थे। सुरेश बाबू ने समझ लिया कि ज्योत्स्ना ने अपने जीवन का व्रत परिवर्तित कर दिया है। ज्योत्स्ना एकाएक उठकर अपने कमरे में चली गयी।

इधर अलका ने जब कृष्णमुरारी की प्रसिद्धि सुनी तो वह उनसे मिलने के लिए लालायित हो उठी। उसको पहले आश्चर्य हुआ कि वकील साहब सार्वजनिक क्षेत्र में कैसे आये परन्तु जब उसने उनके विचारों और सिद्धान्तों का तर्कपूर्ण प्रतिपादन देखा तो उसको विश्वास हुआ कि वे अब सुन्दर स्वप्नों की छाया को भूलकर उसकी नश्वरता का अस्तित्व समझ बैठे हैं और देश सेवा की ओर अग्रसर हो गये हैं। उसके सम्मुख ज्योत्स्ना का दम्भपूर्ण चित्र आ गया। उसको जीवन में सर्व-प्रथम ईर्षा हुई ज्योत्स्ना के भाग्य पर। उसके सम्मुख एक एक करके सारी घट-नायें आयीं और चली गयीं। अन्त में उसने सोचा कि जीवन का चक्र कितना चक्करदार है, उसके एक एक पग पर रुकावटें तथा बन्धन हैं। फिर सुनील की एकाएक याद आयी। वह फौजी युवक, सुन्दर और जवान, एक अल्हड़ता लिए मानों इच्छा भरे नेत्रों से उसकी ओर देख रहा है। उसको अपने चिर सहचरी ज्योत्स्ना के कार्यों से घृणा हो गयी थी, केवल इसीलिए कि वह अपने पति को छोड़कर दूसरे के हाथों का खिलौना हो रही थी। उसने ज्योत्स्ना की ओर देखना भी पाप समझा। परन्तु वह पराया है ..अपना नहीं। मैं उसकी चिन्ता क्यों करती हूँ। वह रुक गयी द्रुत गति से चलती गाड़ी की भाँति और उसके सामने जीवन का प्रश्न छिड़ गया—अब क्या करूँ, उसके हृदय को सन्तोष न था, उसके विचारों में शान्ति न थी। उसने निर्णय किया कि एक बार कृष्णमुरारी का दर्शन तो कर लूँ परन्तु उससे

लाभ ही क्या होगा। वह मस्तक को हथेली पर लिए कर्म-क्षेत्र में खड़ा है. उसे मोह कहाँ, उसको ममता की क्या चिन्ता है, उसका उद्देश्य महान् है, असीम है अनन्त की भाँति जिसका छोर नहीं है।

परन्तु यदि ज्योत्स्ना उनके पास गयी तो क्या वे उसको अपना सकेंगे, नहीं, कभी भी नहीं। वह जायेगी ही क्यों ! उसकी दूसरी शादी हो रही है, एक योग्य व्यक्ति के साथ जो उसकी इच्छाओं का दास और अभिलाषाओं का सेवक है। ज्योत्स्ना ने भी समाचार पत्रों में उनकी स्थिति का अनुमान किया होगा एक अपरिचित की भांति, भूली हुई स्मृति की चिन्ता में। और उनके कृत्यों को पढ़ कर हँस पड़ी होगी, रिक्त घड़े की भांति गम्भीर घोष करती हुई कदाचित अपनी सफलता के आनन्द में। कृष्णमुरारी अब उसके नहीं रहे और न ज्योत्स्ना ही उनकी रही। घटना का क्रम उलटा हुआ है और हृदय की ज्योति अमर ज्योति की भांति जलती जा रही है।

× × ×

२२

'जनता सेवा संघ' की नीव पड़ते ही लोग कृष्णमुरारी की कार्य कुशलता का परिचय पाने लगे और देखते ही देखते गांव के वातावरण में एक विशेष परिवर्तन हो गया। एक विद्यालय की स्थापना हो गई और कुरीतियों को दूर करने का उपाय बड़ी शीघ्रता से होने लगा। मंगलपांड़े तन मन धन से जनता की अशिक्षा को दूर करने का प्रयत्न करने लगे। कृष्णमुरारी के उत्साह को देख कर अल्मोड़ा के कुछ नवयुवक भी इस संघ के सदस्य हो

गये और उनके कार्य-क्रम में हाथ बटाने लगे। कृष्णमुरारी की प्रसिद्धि बढ़ती गयी। एकदिन यह निश्चय हुआ कि संघ के उद्देश्य को विशाल बनाने के लिए गांवों में पर्यटन करना चाहिए और अपने सिद्धान्तों का प्रसार करना चाहिए।

योजना बन गयी और कृष्णमुरारी अपने दल बल के साथ पर्यटन के लिए निकल पड़े। रास्ते में जो मिलता उसको कुछ न कुछ समझाते हुए आगे चलते चले। सन्ध्या होते होते एक गांव में पहुंचे तो देखते क्या हैं कि कुछ लोग उनका स्वागत करने के लिए तैयार हैं। कृष्णमुरारी ने उन्हें अपना उद्देश्य बतलाया और उनकी कठिनाइयां पूछीं।

एक ग्रामीण ने कहा—

"हमारे ऊपर सिपाही बड़ा अत्याचर करते हैं। हम से लगान वसूल करते हैं और धमकियाँ देकर कितने रुपये और ऐंठ लेते हैं।"

"तुम लोग उनसे मत डरो। जब वे आवें तो उनको लगान दे दो और यदि वे किसी प्रकार का अत्याचार करें तो सभी मिल कर उन्हें समझाओ।

"वे समझाने से नहीं मानते।'

"क्यों नहीं मानेंगे। यदि सारा ग्राम मिलकर उनके सामने जायगा तो उनको भी तुम लोगों का भय होगा और वे अत्याचार न कर सकेंगे। तुम्हारा संग्राम उनके लिए सब से बड़ी शक्ति होगी। तुम्हारी एकता उनके लिए सब से बड़ा भय होगा।"

आपस में बातें हो ही रही थीं कि एक गरीब स्त्री चिल्लाती हुई वहां पहुँची और धाड़ मार मार कर रोने लगी। सभी लोग उसकी ओर घूम पड़े और पूछने लगे क्या हुआ? परन्तु उसका

रुदन और भी तेज होता गया। उसकी ऐसी दशा देख कर कृष्णमुरारी उसके पास पहुंचे और बोले—

"तुम क्यों रो रही हो बेटी ?"

स्त्री का रोना रुका तो अवश्य परन्तु वह कुछ बोल न सकी। इतने में एक ग्रामीण वहाँ आया और बोला—

"इसको इसके पति ने मारा है।"

"क्यों ?" कृष्णमुरारी ने पूछा।

"वह बड़ा ही आलसी और शराबी है। नशे में आकर बहुधा वह अपना सारा क्रोध इसी पर उतारता है।"

"यह तो बड़ी बुरी बात है। स्त्री पर हाथ उठाना पुरुष की सब से बड़ी नीचता है और उससे भी बढ़ कर दुख है शराब के नशे में एक अबला पर पशुवत व्यवहार करना। तुम लोगों में इसकी तनिक चिन्ता भी नहीं कि स्त्री ही गृह की लक्ष्मी होती है। वे एक सृष्टि की धात्री हैं, बिना उनके मनुष्य का जीवन नीरस है। यह सब कुशिक्षा इतनी भयंकर होती है कि कभी २ वही जीवन के पतन का कारण हो जाती है। शराब पीना बहुत बुरा है। दिन भर के परिश्रम की कमाई को पानी में फेंक, मूर्ख बन कर गालियां देना और अपनी आत्मा का हनन कराना कितनी क्रूर नीचता है।"

इसी बीच में मंगलपांड़े बोले—

"क्या कहा जाय। भारतीय आज इन्हीं कुरीतियों के कारण अपने हाथों अपने पैरों पर आप कुल्हाड़ी मार रहे हैं। जो लोग दरिद्र हैं, दीन हैं, उनमें ही कुरीतियां अपना स्थान बनाती हैं और उन्हें नाश के किनारे पर ला खड़ा कर देती हैं।" गांव वालों को चाहिए कि मदिरा सेवन की प्रथा रोक दी जाय और जहां कहीं यह सुनाई पड़े वहां जाकर लोगों को उसका दुष्परिणाम

समझाया जाय और भविष्य में एसा करने से सचेत किया जाय।"

कृष्णमुरारी ने स्त्री से कहा—

"तुम घबड़ाओ नहीं, अब तुम्हें यह कष्ट न भोगना पड़ेगा।"

वे लोग उस स्त्री के पति के समीप पहुँचे और उसकी दशा देख कर डाँट कर बोले—

"तुमने अपनी स्त्री को क्यों मारा है?"

एक समूह को अपने पास खड़ा देख वह कांप गया और उसका सारा नशा काफूर हो गया। कृष्णमुरारी ने उसे समझाया और रात को वहीं टिक गये। रात्रि में उन्होंने सारे ग्रामीणों के मध्य में समझाया कि तुम लोगों को अपना मूल्य समझना चाहिए और अपने कर्त्तव्य को सोचना चाहिए।

प्रातः काल होते ही ये लोग आगे बढ़े और दूसरे गांव की सीमा पर पहुँचे परन्तु ये लोग गांव में घुस भी नहीं पाये थे कि पुलिस का एक दल वहां आ पहुंचा और उसने इन लोगों को आगे बढ़ने से रोक दिया। कृष्णमुरारी ने आगे बढ़ कर पूछा—

"तुम हम लोगों को क्यों रोक रहे हो?"

इतने में दारोगा सामने निकल आया और उसने कहा—

"मुझे हुक्म मिला है कि मैं आप को इस तरह घूम २ कर जनता को भड़काने न दूँ।"

"मैं किसी को भड़का नहीं रहा हूँ, मैं तो अपने उद्देश्य का प्रचार कर रहा हूँ और उसकी पूर्ति में मैं किसी की आज्ञा नहीं मान सकता।

"आप जानते हैं कि सरकार का हुक्म टल नहीं सकता।"

"मैं यह भी जानता हूँ कि सरकार के हुक्म हमारे लिए कितने हितकर हैं। मैं उस कानून को कभी कानून नहीं समझता हूँ, जो प्रजा के कार्यों में विघ्न डालता हो।"

"कौन से कानून प्रजा के कार्यों में विघ्न डालते हैं।"

"वे सभी कानून जो जो प्रयोग में लाये जाते हैं।'

दारोगा ने समझा कि कानून पर बहस करने से हम नहीं पा सकते, इसलिए बोला—

"आप यहाँ से लौट जाइये और मैं कुछ नहीं चाहता।"

"आखिर आप मुझे यहाँ से क्यों लौटाना चाहते हैं। आपको मेरे कहीं जाने से क्या हानि होती है।"

"मेरी हानि लाभ का सवाल नहीं मुझे यहाँ के उच्च पदाधिकारीयों की आज्ञा हुई है और मैं उसका पालन कर रहा हूं।"

"अच्छी बात है, आप की आज्ञा मानता हूँ।"

इतने में मंगलपाड़े आगे बढ़े और बोले—

"हम किसी का हुक्म नहीं मानेंगे, हम आगे बढ़ेंगे।"

इस पर जनता आगे बढ़ने के लिए प्रयत्न करने लगी परन्तु कृष्णमुरारी ने कहा—

"भाइयों! जरा सी नासमझी पर अपनी मर्यादा और उद्देश्यों का महत्व न गिराइये। सभी को अपने में शान्ति स्थापित करने का प्रयत्न करना चाहिए।"

"हमारा उद्देश्य प्रेम और सत्यता के ऊपर निर्भर है। हमारा सिद्धान्त अहिंसा और दया के ऊपर आश्रित है। हम किसी को कष्ट देकर अपना कार्य नहीं करना चाहते।"

कृष्णमुरारी वहीं से घूम कर दूसरे गांव की ओर चल पड़े। इधर कृष्णमुरारी के कार्यों से वहां के जमींदार को बड़ा क्रोध आया। पहले तो उन्होंने समझा कि यह वेग शीघ्र ही शान्त हो जायगा परन्तु जब उन्होंने देखा कि यह रोग फैलता ही जारहा है तो उन्होंने जिले के कलक्टर के पास इसकी सूचना दी और तुरन्त ही हुकम आ गया कि कृष्णमुरारी को कहीं जाने न दिया जाय

दूसरे दिन समाचार पत्रों में लोगों ने पढ़ा कि जन सेवा-संघ की योजनानुसार कृष्णमुरारी अपने दल बल के साथ गांवो में अपने सिद्धान्तों का प्रचार करने गये थे परन्तु सरकारी हुक्म के कारण वह मार्ग ही में रोक दिये गये। इसको पढ़ते ही सभी तरफ एक जागृति फैल गयी। लाहौर में इस समाचार पर टीका टिपणियां होने लगीं और भिन्न २ स्थानों से उनके पास कार्य की सफलता पर बधाइयां आने लगीं। उन्होंने भी अपना कार्यक्रम स्थगित न किया और आगे बढ़ते गये।

ज्योत्स्ना ने समाचार पत्रों में जब यह समाचार पढ़ा तो उसका कलेजा मुंह को आ गया, उसके हृदय की धड़कन बढ़ने लगी। उसने सोच लिया कि अब उनके पकड़ जाने में कोई सन्देह नहीं है और किसी न किसी दिन यह समाचार प्रकाशित होगा कि कृष्णमुरारी पकड़ लिये गये। पति के दुख का ज्योत्स्ना पर यह प्रथम मार्मिक आघात था। उसने अपने को दृढ़ किया और विचार किया कि चाहे जो कुछ भी हो उनके कार्य की पूर्ति मैं करती रहूंगी। यदि वे न रहे तो मैं भी बाहर न रहूँगी और उनके उद्देश्यों का पालन करते करते कानूनों का शिकार बनूँगी।

समाचारपत्रों ने कृष्णमुरारी के कार्यों की सराहना की और उनकी प्रशंसा के गान गाये। वे अपने दल के साथ एक गांव से दूसरे, तीसरे और चौथे इसीप्रकार आगे बढ़ते गये। जिले में उनको एक एक बच्चा जानने लगा और उनके यश की प्रशंसा होने लगी। उनके इस कार्य से जमींदारों का अत्याचार कुछ कम हो गया और सिपाहियों की ज्यादती कुछ दब सी गयी। गांव २ में जनता सेवा संघ की शाखा खोली गयी और सारे ग्रामवासी उसके सदस्य बनते गये। खादी घरों में कात कातकर स्वदेशी कपड़े पहनने का प्रचार खूब बढ़ा। ये लोग अपने कार्य में संलग्न ही थे कि कृष्णमुरारी को जिले के कलक्टर की सूचना मिली कि

आप किसी भी गांव में न जायें और किसी भी प्रकार की सभा न करें, नहीं तो आपके विरुद्ध कार्यवाही की जायेगी। कृष्णमुरारी ने हँसकर उसकी अवहेलना कर दी और उसी दिन आगे आने वाले गांव में एक महती सभा की योजना की। इसकी सूचना विद्युत की भांति सभी जगह फैल गयी और समाचारपत्रों ने भी इनका प्रति दिन का कार्यक्रम निकालना प्रारम्भ कर दिया जिससे इनकी प्रसिद्धि दूर दूर तक फैल गई। ग्रामीण जनता की आंखों में तो वे एक देवता के समान हो गये और उनकी वाणी वेद-वाणी समझी जाने लगी।

दूसरे ही दिन एक विशाल सभा में बोलते हुए कृष्णमुरारी को वहाँ के दरोगा ने गिरफ्तार कर लिया। सभा भंग हो गयी। भीड़ उत्तेजित हो गयी परन्तु कृष्णमुरारी ने उन्हें समझाया और उन्हें शान्त किया। ग्रामवासियों में एक बड़ा आन्दोलन सा मच गया। लोगों ने लगान देना बन्द कर दिया और सरकारी आज्ञाओं का उल्लंघन करने का विचार किया। उनके स्थान की पूर्ति के लिए विचार हो ही रहा था कि कृष्णमुरारी थोड़ी ही देर बाद वापस आते दिखाई पड़े। दारोगा ने उन्हें ले जाकर छोड़ दिया था।

ये लोग अब अलमोड़ा की ओर लौटे और उद्देश्यों को व्यापक और शक्तिपूर्ण बनाने का विचार करने लगे। कुछ दिनों तक शान्ति पूर्वक कार्य करने के पश्चात् कृष्णमुरारी ने अपने उद्देश्यों में परिवर्त्तन कर दिया और जनता में शिक्षा के प्रचार के अनुसार जागृति का बीज बोना चाहा। जमींदार के विरुद्ध जितने भी कार्य सोचे गये थे वे सभी परिवर्तित कर दिये गये। ठोस रचनात्मक कार्यक्रम पर उन्होंने जोर दिया और उसकी उन्नति के लिए वे प्राणप्रण से सचेष्ट रहने लगे।

× × ×

२३

दिन भर के परिश्रम से थका हुआ सुनील अपने कमरे में बैठा जीवन की उदास गोधूली में प्रेममय स्वप्न की धुँधली छाया देख रहा था। उसको जीवन की एक चाह थी जो मादकता बनकर उसको एक छोर से दूसरे छोर उड़ा लाती थी, उड़ती हुई चिड़िया की भाँति उसको एक अनुभव हुआ था परन्तु वह भी एक स्वप्न सा। वह एक विचित्र उलझन में पड़ा अपने को थोड़ी देर के लिए चिन्ता-सागर की सीमा से दूर रखकर किसी आनन्द की थपकियों में सोना चाहता था। यौवन मादकता खोजता है, जिसमें वह तल्लीन होकर कुछ प्राप्त कर सके, कदाचित एक प्यास जो सभी को युवावस्था में लगती है और जो एक आँधी, एक झोंका लिए आती है। वह उसी की काल्पनिक धारा में बह रहा था, बिना पतवार की नौका की भाँति केवल लोल लहरियों का थपेड़ा खाते हुए। अचानक टेलीफोन की घन्टी बज उठी। उसकी धारा टूटी, उसने फोन उठाया—

"हलो! कौन हैं आप?"

"मैं ज्योत्स्ना.......।"

सुनील को विदित हुआ कि किसी ने उसके शरीर में बिजली का तार छुला दिया हो। उसने अपने को सम्भाला और बोला—

"कहो क्या काम है?"

"तुम मेरे यहाँ एक बार आओ, कुछ बातें करनी हैं।"

"मुझे अवकाश नहीं है, मैं बड़े काम में फँसा हूँ।"

"क्या ज्योत्स्ना के लिए अपना काम थोड़ी देर के लिए छोड़ नहीं सकते? सुनील! क्या तुम मुझसे इतनी घृणा करते हो।"

"नहीं घृणा तो नहीं करता परन्तु.... ।"

"कहो, कहो, तुम जो कुछ कहना चाहते हो, साफ २ कहो। मैं सब कुछ सहने को प्रस्तुत हूँ, लांछन अपमान और प्रताड़ना भी।"

"मैं तुम्हारा अपमान नहीं कर सकता और न किसी को करने ही दूँगा।"

"अच्छा! यदि तुम्हें अवकाश मिले तो थोड़ी देर के लिए चले आना।"

उसकी करुणाभरी वाणी ने कठोर हृदय को पिघला दिया। सुनील अब उसका अधिक अपमान न करना चाहता था। उसका हृदय मसोस उठा उसकी अन्तर्वेदना से। उसने तुरन्त ही उत्तर दिया कि मैं अभी आ रहा हूँ। सारी चिन्ता को छोड़कर वह उठा और अपनी कार पर बैठकर ज्योत्स्ना के घर की ओर चल पड़ा।

ज्योत्स्ना ने जब सुनील के हृदय की बात समझी तो उसे बड़ी घृणा हुई अपने नीरस जीवन की विफलता पर। उसने क्षण भर के लिए सोच लिया कि जीवन का अन्त ही दुखमय है। परन्तु अब उसे किसी की चिन्ता न थी क्योंकि अब उसका क्षेत्र बदल गया था और उसमें एक विशाल परिवर्त्तन होगया था।

वह बैठी अपने भाग्य की कुछ टूटी रेखाओं को जोड़ रही थी कि सुनील की कार बंगले में घुस आयी और वह पूर्ववत् अल्हड़ता के साथ ज्योत्स्ना के कमरे की ओर चल पड़ा। दर्वाजे पर आकर उसने देखा कि ज्योत्स्ना किसी गूढ़ चिन्ता में निमग्न है। वह भीतर चला आया। किसी के आने की आहट पाकर ज्योत्स्ना ने सर घुमाया और सुनील को देखकर वह खड़ी होगयी और उदासीनता के साथ बोली—

"आओ सुनील ! तुम तो मुझे बिल्कुल भूल ही गये....। ठीक है, बुरे दिनों में कोई किसी का साथ नहीं देता।"

झेंपते हुए सुनील सामने के कोच पर बैठ गया।

ज्योत्स्ना कुछ पूछना चाहती थी परन्तु वह अपनी दुर्बलता भी नहीं प्रगट करना चाहती थी।

ज्योत्स्ना का सादा जीवन देखकर सुनील ही पूछ बैठा—

"क्यों ज्योत्स्ना, तुम बड़ी सीधी होती जा रही हो।"

"मेरे फूटे भाग्य पर व्यंग न करो। मैं तुम्हारा मन्तव्य समझ गयी।"

"तुम मेरी बातों का दूसरा ही अर्थ लगा रही हो, मैं सचमुच इधर तुम्हारे में अधिक परिवर्त्तन देख रहा हूँ।"

"हाँ, तुम्हारा विचार कुछ अंशों तक ठीक ही है।"

"अच्छा, यह तो बताओ कि अलका ने तुमसे मेरे विषय में क्या २ बातें कही थीं।"

"उसने कहा था कि ज्योत्स्ना अब दूसरी शादी करेगी क्योंकि उसे कृष्णमुरारी से चिढ़ है।"

"तो तुमने क्या सोचा था।"

"मैंने भी यही परिणाम सोचा कि अब तुम मि० दत्त से विवाह कर लोगी।"

ज्योत्स्ना ने जो समझा था वह ठीक निकला। उसने कहा—

"तभी तो तुम मुझसे घृणा करने लगे।

"नहीं, घृणा नहीं बल्कि एक स्पर्धा पैदा हुई। जो अपने को बार बार बनाता और बिगाड़ता है उसके ऊपर विश्वास करना भी एक भूल है।"

"ठीक ही है तुम्हारा विचार परन्तु यदि तुम स्वयं उस

स्थिति में होते तो कदाचित उतना न सोचते, जितना तुम सोच चुके हो।"

सुनील झेंप गया और धीरे से बोला—

"क्या करूँ ज्योत्स्ना। मनुष्य कभी २ अनेक विचारों में उलझकर उसी में उसके आरम्भ और अन्त तक की दशा का अनुमान लगा लेता है।

"हाँ कुछ अंशों में तुम्हारी यह बात ठीक है।"

"तो तुम्हारा विवाह मि० दत्त के साथ ठीक नहीं हुआ।"

"नहीं, अब क्या होगा! विवाह केवल एक बार होता है वह भी एक ही व्यक्ति के साथ।"

"तब तो तुमने बड़ी बुद्धिमानी की और मुझे प्रसन्नता इस बात की है कि तुमने अपना भविष्य सुधार लिया। मैं तुम्हारे विचारों की दृढ़ता के लिए तुम्हारी शुभकामना चाहता हूँ।"

"ज्योत्स्ना ने एक बार गर्व से सुनील की ओर देखा और नत हो गयी। सुनील चुप रहने वाला न था। उसकी सारी घृणात्मक भावनायें विलीन हो गयीं, ऊषा के आगमन से अनन्त में विलीन होती हुई रजनी की भाँति। उसने हँसकर पूछा—

"आजकल वकील साहब कहाँ हैं?"

ज्योत्स्ना ने समाचार पत्रों को उठाकर सुनील के सामने रख दिया। उसने उसको एक सरसरी निगाह से पढ़ लिया और कुछ देर तक सोचता रहा फिर बोल उठा—

"उन्होंने तो बड़ा भारी बोझ अपने सर पर ले रक्खा है, जिसके चारों ओर भय का ही साम्राज्य है।"

"जब मनुष्य अपने को इस कार्य के लिए पूर्ण समर्थ समझता है, तभी इसमें हाथ बटाता है।"

"कार्य तो बड़ा ही महान और दुस्तर है परन्तु सबसे

उत्तम है जीवन का उत्सर्ग, आशाओं और अभिलाषाओं का बलिदान और वह भी दूसरे के लिए, जनता के लिए। वह मनुष्य धन्य है जिसने देश के लिए अपना बलिदान किया और करता जा रहा है।"

ज्योत्स्ना हँस पड़ी और बोली—

"मुझे बड़ा आश्चर्य होता है कि तुम सरकार के नौकर होकर उसके विरोधियों की बड़ाई करते हो।"

"जो बड़ाई के योग्य है, उसकी बड़ाई करने में कोई अपराध नहीं। वीर लोग अपने बैरियों का भी यश-गान करते हैं यदि वे वीरता से तलवार के घाट उतरते हैं। मनुष्य को हृदय देखकर, उसका चरित्र चित्रण करना चाहिए। मुझे तो आश्चर्य होता है कि उसका प्रभाव तुम्हारे ऊपर कितना व्यापक पड़ रहा है। यदि तुम अब भी उनका अनुकरण करके अपना जीवन सुधार लो, तो कितनी ऊंची हो जाओगी ज्योत्स्ना, शायद यह अनुमान के परे की बात होगी।

ज्योत्स्ना झूम उठी यौवन की प्रथम हिलोर की भाँति। उसकी सारी वेदना लुप्त हो गयी। उसे पश्चात्ताप था परन्तु कदाचित वह अब जाता रहा। उसमें अल्हड़ता की आँधी आयी हरहराती हुई।

"ज्योत्स्न.! अलका वकील साहब के पीछे क्यों पड़ी हैं।"

"उसकी इच्छा कौन समझ सकता है। व्यक्ति ही विचित्र है। यदि वह थाली की भाँति छिछला है तो समुद्र की भाँति गम्भीर। वह रहस्यों की पिटारी और सरलता की प्रतिमा है।"

"परन्तु वह स्वयं के कार्य्यों से विदित हो जाता है। मुझे तो आश्चर्य है कि वकील साहब की जितनी चिन्ता तुम्हें नहीं है, उससे बढ़कर तो उसी को है।"

"अब वह भी उनकी चिन्ता न करेगी,क्योंकि उन्होंने अपना मार्ग ही परिवर्तित कर लिया है।"

परन्तु हृदय एक सा नहीं रहता, उसमें आँधी और झंझा आया करते हैं।"

ज्योत्स्ना चुप हो रही। सुनील कुछ देर तक समाचारपत्र पढ़ता रहा। पढ़ना समाप्त कर वह उठा और हँसता हुआ बोला—

"इसीलिए तुमने मुझे बुलाया था कि और किसी विशेष कार्य से।"

"कार्य तो यही था परन्तु सबसे बड़ा कार्य तो तुम्हारा आना था। तुमने तो यहाँ आना ही छोड़ दिया था।"

"अब अवश्य आया करूँगा।"

सुनील चल पड़ा और ज्योत्स्ना भी साथ साथ। मोटर के पास आकर सुनील ने कहा—

"तुमने मुझपर विजय पा ली।"

"कैसे ?"

"मैंने यहाँ कभी न आने का प्रण किया था परन्तु तुम्हारी पवित्रता मुझे यहाँ खींच लायी। मैं अब स्वयं पछता रहा हूँ कि मैंने कैसे गंदे विचार पाल रखे थे।"

"तुमने नहीं वरन अलका, एक नारी की प्रतिमा ने वैसे विचार पालने को बाध्य किया था।"

लज्जित होता हुआ सुनील बोला—

"नहीं, ऐसी बात तो नहीं थी, परन्तु फिर भी उसका प्रभाव मेरे ऊपर पड़ा है एक छाया की भाँति, मृग-मरीचिका की सुदूर कल्पना की भाँति। उससे मैं अधिक प्रभावित हुआ हूँ, पता नहीं क्यों ? और आज भी वह मुझे एक पहेली सी जान पड़ती है।"

"मुझे आश्चर्य है कि वह नारी है या कि छलना का चित्र, सजीव, चमकता हुआ।"

"तुम्हें उसे देखकर ईर्ष्या होती है न।"

"यह तो नारी की स्वाभाविक मनोवृत्ति है परन्तु मैं उसकी ओर से अधिक निश्चिन्त थी। जब वह मेरे सामने आती थी तो एक स्पर्धा होती थी परन्तु उसका प्रत्यक्षीकरण न कर सकती थी।"

"वह मेरे निकट आ रही थी परन्तु मैं उससे दूर हो रहा था, पता नहीं, किसी अज्ञात प्रेरणा से मैं बढ़ रहा था एक मस्ती में रूप सौन्दर्य की लपलप करती ज्वाला का आलिंगन करने। मुझे ध्यान न था कि वह नारी है, एक अपरिचित है और जीवन की अल्हड़ता की मादकता है।"

"तभी तुम अलका के अलकों में भूले से उलझे थे और मार्ग नहीं ढूंढ़ पा रहे थे।" हँसती हुई ज्योत्स्ना बोली—

वह हँसता हुआ कार पर बैठा और इस तरह ओझल होगया मानों वायु का झोंका झकझोरता हुआ निकल गया हो।

सुनील के चले जाने पर ज्योत्स्ना का हृदय कुछ हलका हो गया और वह अपने कार्यक्रम की योजना सोच ही रही थी कि मि० दत्त आ पहुँचे। उसने उठकर उनका अभिवादन किया और बोली—

"और सब कुशल है।"

"जी हाँ! आप आज तो बिल्कुल खादीमय हो गयी हैं। क्या बात है? क्या आपको भी देश-प्रेम सूझी है।"

"अब तक तो दूसरे की नकल बहुत करती रही परन्तु अब अपनी वस्तु पहन रही हूँ। पाश्चात्य देश का पर्दा अब नेत्रों से हट गया है।"

"यह तो ठीक है परन्तु देश-भक्ति भी एक रोग है, जिसको

उसकी धुन लग जाती है, वह इसके पीछे दीवाना हो जाता है परन्तु भारत में अब भी बड़ी कमी है।"

"कमी किस वस्तु की है?"

"यहाँ लोगों में अभी शासन-भार ग्रहण करने की शक्ति नहीं है और बिना पश्चिमी सहायता के वह कभी आ नहीं सकती।"

"ऐसा आप कैसे कहते हैं। क्या भारत के लोगों ने कभी शासन नहीं किया है या कभी राज्य-प्रणाली का विधान नहीं बनाया है। जब यहाँ के लोगों को कोई अधिकार देकर उसका परिणाम न देखा जाय तो केवल कल्पनावश भारतीयों को अयोग्य ठहराना कितनी अहमन्यता का परिचायक है।"

"परन्तु यहाँ की जनता अभी भी इतनी असभ्य है कि शासन-प्रणाली का अर्थ ही नहीं समझ सकती। राज्य, शील की केन्द्रित सत्ता है और उसकी शील शक्तिशाली हाथों में होनी चाहिए।"

"शक्ति का विकास क्रमशः होता है। सम्राट् की शक्ति एकाएक कहीं से पैदा नहीं हो जाती, उसकी शक्ति का संचय जनता द्वारा होता है और वह शक्ति तभी तक स्थिर रहती है जब तक उसको जनता का सहयोग मिलता रहे।"

"यह कोई ठीक नहीं है कि राज्य का सभी नियम जनता के अनुकूल हो। परिस्थिति के अनुसार नियमों का निर्माण होता है।"

"इसी से प्रजा में विद्रोह के बीज फूटते हैं और वह अपने राज्य का शासन ढीला समझने लगती है। परतन्त्र देशों में सरकार यह ध्यान नहीं रखती कि कौनसा कानून प्रजा के हित के लिए है और कौन अहित के लिए। फिर नियम और कानून तो प्रजा की सुविधा को देखते हुए बनने चाहिए और ऐसे ही देशों में प्रजा और राजा समान होते हैं। कहा भी गया है कि

"यथा राजा तथा प्रजा।" यदि राजा अच्छा न होगा तो प्रजा भी अच्छी न होगी।"

"राजा तो अपने भरसक प्रबन्ध करता ही है।"

"प्रबन्ध तो सभी करते हैं। संसार के कार्यों में सभी मनुष्य भाग लेते हैं परन्तु उसमें कोई कम और कोई अधिक अपना विचार प्रगट करता है और उसीके अनुसार कार्य भी करता है। जिस देश की प्रजा असन्तुष्ट है, उस राज्य का कभी भला नहीं हो सकता। उसके एक नहीं सैकड़ों उदाहरण मिलेंगे, रूस, फ्रांस इत्यादि देश आज भी इतिहास के पृष्ठों से गरज गरज कर विजय घोष कर रहे हैं।"

"उन देशों की बातें छोड़ दीजिये, वहाँ और यहाँ में महान अन्तर है।"

"देशों में कहीं भी अन्तर नहीं होता परन्तु वहाँ की सरकारों में अन्तर होता है।"

"मैं इस विषय पर वादविवाद कर के माथापच्ची करना नहीं चाहता। मैं तो यह पूछ रहा था कि लोग व्यर्थ ही देश के नाम पर एक संगठित सरकार का सामना करते हैं। यह नहीं जानते कि दोनों में कितना अन्तर है। एक के हाथ में शक्ति और शस्त्र है दूसरे के हाथ में कुछ नहीं है!"

"आप यह नहीं जानते कि संगठन में कितनी शक्ति होती है। आहों और सच्चे विचारों में कितना प्रभाव होता है।"

"होता होगा परन्तु यहाँ तो कुछ भी नहीं दिखाई दे रहा है। सरकार के भक्त ही भक्त हैं।"

"आपने नगरों की चमक दमक देखी है, पाश्चात्य रंग ढंग की वेशभूषा में पलने वाले मनुष्यों को देखा है और उनके सहयोग की भावना देखी है, बस इसी से अपना अनुमान दृढ़ कर लिया

है कि सरकार से प्रजा सुखी है। आप जानते हैं कि भारतवर्ष गाँवों का देश है, यहाँ की अधिकांश जनता ग्रामों में निवास करती है और देश का सबसे बड़ा प्रश्न—भोजन उन किसानों के हाथ में है।"

"यह तो सभी जानते हैं परन्तु उनमें अशिक्षा और मूर्खता का बाहुल्य है।"

"यह तो आपकी केवल कल्पना है। सच्ची भारतीयता का नमूना आपको उन गाँवों में ही मिलेगा जहाँ भोले भाले ग्रामीण स्वर्ग के आनन्द का अनुभव करते हैं और दूसरे के लिए अपना त्याग करते हैं।"

"इस प्रकार की कल्पना सभी करते हैं परन्तु उनकी आपसी बुराइयाँ कोई देखे तो घृणा हो जायेगी।"

"आप भूल कर रहे हैं मि० दत्त! क्या आप यह नहीं जानते कि भारतवर्ष संस्कृति का सबसे बड़ा विश्वविद्यालय है। अपनी इस घोर यातनावस्था में भी यह केवल अपनी संस्कृति के कारण ही श्रेष्ठ है नहीं तो अब तक इसका विनाश हो गया होता। भारत ने प्रलय का सामना किया है, आँधियों से खेल खेला है, बिजलियों की कड़क से हँसी की है और सागर के घोर गर्जन से अपना मनोविनोद किया है, परन्तु सब कुछ होते हुए भी अपनी सभ्यता अपनी मौलिक एकता बचा रक्खी है। गाँवों की टूटी झोपड़ियों में जिसमें कभी कभी भारतीय शासन और नियम के निर्माण के संकेत मिलते थे, सम्राट् चन्द्रगुप्त को कौटिल्य के द्वारा, महाराज दशरथ और राम को विश्वामित्र और वशिष्ठ ऐसे महान ऋषियों के द्वारा। भारत की शक्ति, भारत की सभ्यता, भारत का विश्वव्यापी गौरव ग्रामों से फूटा है, विश्व में फैलने वाला प्रकाश, कण कण से क्रान्ति की ज्वाला निकले वाली

फूँकार, उन नर-कंकालों की अस्थियों से विस्फुरित हुआ है।"

"आज का संसार तो नगरों में स्थित हैं, ग्राम का कोई महत्व नहीं है।"

"हो सकता है केवल उन्हीं लोगों के लिए जिनकी आँखों पर विनाशकारिणी सभ्यता का चश्मा लगा हुआ है।"

"देश की बड़ी २ संस्थायें अपने आगे ग्रामों का प्रश्न छेड़ती हैं क्योंकि उनको ग्रामों से ही आशा है; इने गिने नगर शक्ति और संगठन की चिरस्थायी नींव नहीं दे सकते।"

"तब तो आप को गाँव में ही रहना चाहिए।"

"रहूँगी, अवश्य रहूँगी और आप से भी कहूँगी कि आप यह आडम्बरपूर्ण जीवन छोड़ कर वहीं चलिए जहाँ मानवता पायी जाती है और जहाँ प्रेम के पुजारियों का जमघट है—जहाँ राजा प्रजा का वास्तविक सम्मिलन होता है। जिनका संसार छोटा है परन्तु शान्ति, मधुरता और सन्तोष की प्रेममयी मंजूषा उमड़ी पड़ती है।"

"आप तो गाँव में एक जागृति कर देंगी और गाँव वाले आपके अनुयायी हो जायेंगे।"

"अवश्य। यह आप अपनी ही आँखों देखेंगे।" गर्व से उसके नेत्र तन गये।

इतने में रमेश बाबू आ गये। उनको देखते ही दोनों खड़े हो गये। उन्होंने बैठते हुए कहा—

"कहिए मि० दत्त ! क्या बातचीत हो रही थी।"

"ज्योत्स्ना देवी तो अब ग्राम्य-जीवन बिताने का विचार कर रही हैं।"

"हाँ, अब वैसा अवसर ही आ गया है।" उनकी वाणी हृदय को चीर कर निकल पड़ी।

"क्यों, कोई नई बात हो गयी है।"

उमेश बाबू अधिक बोल न सके, उन्होंने समाचारपत्र उनके हाथ में दे दिया। उन्होंने देखते ही कहा—

"हां आजकल अल्मोड़ा जिले में यह मनुष्य बड़ी ही जागृति पैदा कर रहा है, जमींदार ने इसको रोकने का प्रयत्न किया परन्तु उसे सफलता न मिली। जनता अधिक संख्या में उसके सिद्धान्तों को मान रही है।"

उमेश बाबू चुप थे। इतना कह लेने पर मि० दत्त ने देखा पिता, पुत्री दोनों किसी चिन्ता में मौन हैं। उन्होंने घबड़ा कर पूछा—

"क्या आप लोग इस घटना से दुखी हैं।"

"नहीं मि० दत्त। जिन महाशय ने इतना बड़ा आन्दोलन मचा रक्खा है, वह ज्योत्स्ना के पति हैं।"

"कृष्ण मुरारी वकील इनके पति हैं।"

"हाँ—परन्तु आजकल वह देश सेवा में संलग्न हैं।"

मि० दत्त बड़े ही उलझन में पड़ गये। एक बार उन्होंने ज्योत्स्ना की ओर देखा और बोले—"कार्य तो बड़ा कंटकाकीर्ण है, पगपग पर रुकावटें और बन्धन, जीवन के पल पल में एक सामना एक......खतरा।"

"है तो, परन्तु एक देश प्रेमी को इसकी क्या चिन्ता।"

"उन्हें कोई चिन्ता न होगी परन्तु ज्योत्स्ना देवी कदाचित दुखित हों, उनकी आशायें कदाचित अधूरी रह जायें और वे एक ऐसी नवस्फुटा कलिका की भाँति कांटों के जाल में गिर जायँ और असमय में ही बरबाद हो जायँ।"

न सह सकी उस प्रताड़ना को, उस लांछन को, दृढ़-प्रतिज्ञ

हृदया ज्योत्स्ना और डंड के टंकार सी, तट से टकराती ज्वार सी 'छप छप' करती बोल उठी—

"अब आशायें तरंगित हो चुकी हैं, अभिलाषायें बरदान पाकर सिद्धि की प्राप्ति में अग्रसर हो रही हैं। इच्छाओं का सागर अपनी मर्यादा की सीमा में ही मौन हो गया है।"

"परन्तु सुख पलनों में झूमने वाली नारी के लिए यह एक अभिशाप के तुल्य होगा।"

"यह आप की कोरी कल्पना है। स्त्री का सुख-स्वर्ग और आनन्द के साधन सभी पति के साथ हैं। पति ही देवता है, जो देवरूप होकर नारी को सफलता का बरदान देता है। स्त्री ही शक्ति है जो पुरुष से वरदान पाकर उसी की साधना में लीन हो जाती है।"

"क्या आप भी उनकी तरह कार्य करेंगी ?"

"करना ही पड़ेगा, यदि वे मना भी करें तो मैं उनके पीछे चलती रहूँगी।"

"वे तो पुरुष हैं, कष्टों को झेल लेंगे परन्तु आप कैसे झेलेगीं।"

"स्त्री शक्तिहीन है परन्तु अवसर पर उसमें असीम शक्ति का संचार हो जाता है, वह कालिका और दुर्गा भी हो सकती है, सीता और द्रौपदी भी बन सकती है।"

मि० दत्त सकपका गये। ज्योत्स्ना का यह रूप इसके पहले उन्होंने कभी भी नहीं देखा था। उन्होंने उत्साहपूर्वक कहा—

"तब मुझे आशा है कि आप को अपने कार्यों में सफलता मिलेगी।"

"और आप को भी...... ।"

मि० दत्त हँस पड़े और सारा तात्पर्य समझ कर बोले—

"क्या करें ज्योत्स्ना देवी ! हम लोग दूसरे के नौकर हैं।

हम कानून के अनुसार चलने वाले हैं और उसी के झोंके में हम लोग अन्याय भी कर डालते हैं।"

"पर आप को अपने कर्त्तव्यों का पालन करना ही सब से बड़ा धर्म है।"

इस पर मि० दत्त कुछ कहना ही चाहते थे कि उमेश बाबू बोल उठे—

"ज्योत्स्ना को अब जीवन का सच्चा अनुभव हुआ है और उसके लिए वह कमर कस कर तैयार है। मेरे लिए भी यह एक गर्व का विषय है।"

"वास्तव में जीवन का मूल्य वैभव के जगमगाते सौन्दर्य में नहीं मिलता है, उसका मूल्य तो विपत्तियों की खरी कसौटी पर अंकित होता है। वकील साहब को जो आनन्द इस समय मिल रहा होगा, कदाचित वह इसके पहले न मिला होगा।"

वातवतरण स्तब्ध हो गया निस्पन्द, नीरव सूनसान की तरह और मस्तिष्क विचारों की विह्वलता से ऊबचूभ करने लगा। परन्तु ज्योत्स्ना को सन्तोष न था, वह कार्य करना चाहती थी। उसे अब एक प्यास लग रही थी देश-भक्ति की, वह बनना चाहती थी नारी, एक आदर्श नारी, पति के समान श्रेष्ठ, जनता के नेत्रों में देवता नहीं देवी......। उसका हृदय मचल रहा था, तड़प रहा था, उस क्षेत्र में, उस दिशा में कार्य करने को, भ्रमण करने को।

× × ×

२४

जनता सेवा-संघ के सिद्धान्तों के अनुसार कृष्णमुरारी को पुनः अपने कार्य के लिए प्रस्थान करना पड़ा। अब उनकी कीर्ति दूर दूर फैल चुकी थी, वह वकील से देश भक्त और नेता हो रहे थे। उनकी प्रशंसा एक पहेली थी, सब के लिए, मित्रों तथा सम्बन्धियों के लिए। उनके त्याग पर जनता मुग्ध थी, उनकी सेवा पर लोग प्रसन्न थे, उनकी वाणी से लोग आनन्दित हो जाते थे। जमींदार, वहाँ के अधिकारी, पुलिस तथा उच्च पदाधिकारी लोग उनके कार्यों से घबड़ाते थे। वह अपने दौरे पर जा रहे थे कि उन्होंने देखा, एक किसान को जमींदार के सिपाही बुरी तरह मार रहे हैं और जमींदार साहब सामने बैठे यह दृश्य देख रहे हैं। सिपाहियों का कोड़ा उसकी पीठ पर बज्र के समान पड़ रहा था, वह चिल्लाता था, कराहता था परन्तु वे नर पशु-हिंसक के समान उस पर प्रहार कर रहे थे। कितने ही ग्रामीण वहाँ खड़े इस प्रकार काँप रहे थे मानों उनके सामने सिंह बैठा हो। कृष्णमुरारी यह मार्मिक दृश्य न देख सके, उनके नेत्रों से क्रोध की चिनगारी बरस पड़ी। वह इस पशुवत व्यवहार को न सह सके। वे तुरन्त ही उन लोगों के पास पहुँचे और और डाँट कर बोले—"तुम लोग इसे क्यों मारते हो? इसने कौन सा अपराध किया है।"

सिपाहियों के हाथ एकाएक रुक गये। उन्होंने देखा कि कृष्ण मुरारी खड़े क्रोध से काँप रहे हैं। वह किसान भी रो रो कर कहने लगा—

"बाबूजी ! हमें ये लोग मार डाल रहे हैं, हमसे रुपया भी ले लिया और अब मेरे ऊपर कोड़े लगा रहे हैं, बचाइये, नहीं तो मैं मर जाऊँगा।"

जमींदार ने कृष्णमुरारी को कभी आँखों से न देखा था केवल उनका नाम भर सुना था। उन्होंने कड़क कर कहा—

"आप से क्या मतलब ! आप इस बीच में क्यों बोलते हैं ? हमारा रुपया बाकी है, हम उसे लेंगे।"

"तो क्या रुपया वसूल करने का यही तरीका है कि किसी के प्राण लेकर रुपया वसूल किया जाय।"

"हाँ, हम लोग टेढ़े से ही अपना असल लेते हैं।"

जमींदार की ऐंठ देख कर कृष्णमुरारी भी कड़े पड़ गये और बोले—

"क्या आप को यह नहीं मालूम कि इन अत्याचारों का परिणाम कितना बुरा होगा ! आप मनुष्य होकर दीनों और निहत्थों पर पशुओं से भी घृणित व्यवहार करते हैं। आप को ऐसा करना शोभा नहीं देता। युग बदल रहा है और उसके साथ साथ मनुष्य की भावनायें भी। अब जनता आपके इस नृशंस व्यवहारों को न सहन करेगी और न आप के नादिरशाही हुक्म को मानेगी। आप का यह थोथा अभिमान इन्हीं लोगों के हाथ नष्ट हो जायगा। आप जानते हैं कि यही किसान आप को प्रजा हैं और इन्हीं पर विपत्ति का पहाड़ ढहा कर आप कभी भी सुख नहीं उठा सकते। आपके किसी भी अंग के कट जाने से आपके सारे शरीर को दुख होगा।"

"मैं आपको अपना मन्त्री नहीं माना है कि आप हमें मंत्रणा दें।"

मैं आपको केवल मनुष्यता क्या है, यही बता रहा हूँ।

आपको यह राय दे रहा हूँ कि ऐसे पाशविक अत्याचार छोड़कर यदि आप नम्रता, दयालुता तथा मानवता का व्यवहार करें तो आप के एक इशारे पर ये किसान अपना प्राणोत्सर्ग कर सकते हैं। ये इतने असभ्य नहीं हैं कि आपके कार्यों का प्रतिरोध करेंगे। आप इनसे एक का चार लेते हैं, बिना पैसे दिये दिन भर काम लेते हैं और उस पर से मार कर उसका पुरस्कार इस तरह देते हैं, यही तो है आपकी न्यायप्रियता और प्रजा के प्रति कर्त्तव्य, क्यों ?"

जमींदार को अब क्रोध आ गया। उसने कड़ककर कहा—

"अब आप यहाँ से चले जाइये, नहीं तो आपके साथ भी व्यवहार अच्छा न होगा।"

"आपके इस डर से मैं अपना कर्त्तव्य नहीं छोड़ सकता। आपको इतना अधिकार नहीं है कि सब को एक ही खेत की मूली समझें। सरकार भी कोई वस्तु है, उसने भी कानून बनाये हैं। उसमें भी यही विधान है कि कोई किसी को मार नहीं सकता, बिना कारण किसी को कुछ कह नहीं सकता।"

"मेरे हाथ में यहाँ का सब कानून है, मैं जो चाहूँ कर सकता हूं।"

"देखिये जमींदार साहब ! मनुष्य कभी भी एक सी दशा में नहीं रहता। बड़े बड़े सम्राटों को भी एक एक दाने के लिए दूसरों का मुँह देखना पड़ता है। आपका यह गर्व और गौरव कभी न कभी पददलित होगा जिसके कारण यही किसान होंगे जो आपसे घृणा करेंगे। आप इनके परिश्रम का मूल्य नहीं जानते। बस, यहाँ बैठे ही बैठे अनुमान कर लेते हैं कि ये आपके रुपये नहीं देते। इन दीनों की एक एक आशायें खेत के एक एक दानों पर केन्द्रित रहती हैं। इनके जीवन में रुकावटें हैं, समाज

की, धर्म की लोक लज्जा तथा पुलीस और आप लोगों के व्यवहारों की। वे कहाँ तक किन किन कठिनाइयों को रोकें, किसका किसका मुँह बन्द करें।"

इन लोगों के वादविवाद से सिपाहियों ने मारना बन्द कर दिया था। जमींदार भी दबता जा रहा था। धीरे धीरे बहुत से लोग आसपास से आकर वहाँ खड़े हो गये थे। जमींदार इस व्यक्ति के साहस को देखकर कुछ स्तम्भित से हो रहे थे। उन्हें यही नहीं विदित हो रहा था कि यह व्यक्ति यहाँ कैसे आया ? लोग आपस में कानाफूसी भी करने लगे।

इसी बीच में तीन चार नौकर एक लड़की को घसीटते हुए वहाँ ले आये। उसकी अवस्था सोलह या सत्रह वर्ष की थी। उसके वस्त्र अस्तव्यस्त हो रहे थे, वह चिल्लाती जाती थी और अपने अंगों को छिपाने का उपक्रम कर रही थी। कृष्णमुरारी इस दृश्य को देखते ही चिल्ला उठे—छोड़ दो उसे और दौड़कर उसके पास पहुँच गये।

उन्होंने नौकरों को ढकेल दिया और तड़प कर बोले—

"तुम लोग इस स्त्री को इस प्रकार से लाने वाले कौन हो, तुम्हें लज्जा नहीं आती कि एक नवयुवती को इस प्रकार घसीट कर ले आ रहे हो।"

लड़की भय से थर थर काँप रही थी। सब के सामने वह पीली पड़ गयी थी परन्तु कर ही क्या सकती थी। उसके शरीर पर फटे वस्त्र थे, जिनमें से उसका गौर रंग दमक रहा था। कृष्णमुरारी ने देखा कि भय से कम्पित, लज्जा से सशंकित और यौवन के भार से नमित वह अबला, प्राण की भिक्षा तथा जीवन के अस्तित्व की भिक्षा मांग रही है, पृथ्वी पर देखती हुई, झुकती हुई कुमुदुनी के समान।

सभी ग्रामीणों के नेत्रों में रक्त की अरुणिमा थिरक उठी। कृष्णमुरारी ने उस लड़की से पूछा—

"तुमको ये लोग कैसे लाये ?"

वह सिसक रही थी। उसका इतना साहस न था कि वह मुँह से कुछ कहती। उसकी वाणी में रुदन था। इसी बीच में मंगल पांड़े, आगे निकल कर आये और बोले—

"बोलो बेटी ! तुमको ये दुष्ट कैसे यहाँ लाये। तुम कहाँ थी ?"

स्नेह के करुणा से लड़की का स्वर लहरी गूज उठी—

"मैं घर पर थी, ये लोग बोले कि चलो तुम्हें जमींदार साहब बुला रहे हैं। मैंने कहा कि पिताजी घर पर नहीं हैं और मैं जा नहीं सकती। तो इन्होंने कहा कि तुम्हारे पिता जमींदार के यहाँ मौजूद हैं। मैंने लाख प्रयत्न किया, अनुनय किया, बिनय किया परन्तु ये दुष्ट मुझे जबर्दस्ती उठा लाये।"

विद्रोही आत्मा पुकार उठी। मंगलपांड़े के अधर फड़क उठे क्रोध से। उन्होंने जमींदार से कहा—

"आप को लज्जा नहीं आती कि एक लड़की को आप यहाँ बुलाकर उसके सतीत्व को भ्रष्ट करना चाहते हैं।"

जमींदार लड़की की ऐसी दशा देखकर स्वयं घबड़ा गया था। उसकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया था। सारा रहस्य खुल गया था। वह ऐसे पीले पड़ रहे थे मानों हजारों घड़े पानी उनपर गिर गये हों। उनके मुख से कुछ निकलता ही न था। उन्होंने कहा—

"मैंने इसे नहीं बुलाया था।"

"तब आप के नौकर इसको क्यों पकड़ लाये।"

जमींदार चुप हो रहा। लड़की ने एक बार मस्तक उठाया तो उसके नेत्र उस व्यक्ति पर पड़े जो पहले जमींदार का क्रोधभाजन

हो चुका था। उसने चिल्लाकर कहा—"पिताजी।" और दौड़कर अपने पिता के पास चली गयी, इस तरह जैसे हरिणी हिंसक पशुओं के मध्य से भाग कर अपनी माता के पास जाकर खड़ी हो जाती है। पिता ने भी उसे अश्रुपूर्ण नेत्रों से देखा और मस्तक नीचा कर लिया। सभी लोगों ने इसका रहस्य समझ लिया और सभी को जमींदार की पाप मनोवृत्ति का पता लग गया। कृष्णमुरारी से न रहा गया। उन्होंने कड़क कर कहा—

"कहिए जमींदार साहब! आप इसी पाप वृत्ति से अपनी जनता को प्रसन्न रखना चाहते हैं। आपको तो डूब मरना चाहिए। आपको लड़के लड़कियाँ नहीं हैं जो आपने इस अबोध लड़की के ऊपर अपना पाप का हाथ बढ़ाना चाहा था। अभी आप उनके पालक बन रहे थे परन्तु अब आप का पाखंड सबको विदित हो गया है।। आप मनुष्य रूप में राक्षस हैं।"

सभी को क्रोध आ गया। दो एक तो उसी समय जमींदार को खरी-खोटी सुनाने लगे। कृष्णमुरारी ने सबके सम्मुख खड़े होकर कहा—

"आप लोगों ने अपनी मर्यादा का सत्यानाश अपने ही हाथों देखा है। आप लोगों की दुर्बलता से आपके रक्षक ही आपका सर्वनाश कर डालते हैं। आप लोगों ने अपने सामने बहू बेटियों का अपमान देखा। क्या आप के रक्त में मर्यादा का प्रवाह नहीं, क्या आप अपनी शान और गौरव के लिए आततायी को दंड देना स्वीकार नहीं करते। क्या अपराधी दंड का भागी नहीं है। क्या आप चाहते हैं कि आपकी सन्तान पैसों पर बिकें, चाँदी के कुछ चमचमाते हुए सिक्कों के लिए नारियों का अमूल्य और पवित्र सतीत्व भ्रष्ट हो?"

सभी एक स्वर से चिल्ला उठे—"नहीं हम लोग ऐसा कभी सहन नहीं कर सकते।"

"तब आपका कर्त्तव्य यह है कि ऐसे शासक से इसका बदला लीजिये। ऐसे अपराधों का बदला क्षमा नहीं है जिसके कारण बराबर अपराध होते रहें। आप लोग इनकी भूमि पर निवास नहीं करते, इनका अन्न नहीं खाते और न इनसे सम्बन्ध रखते हैं तब क्या कारण है कि ये आप पर अत्याचार करते हैं। आप यदि चाहें तो ये एक दिन में ठीक हो जायें। इनके ये नौकर-चाकर जो इनके दाहिने हाथ हैं, वे आपके भय से आपकी ओर आँख न उठा सकेंगे। आप इनको कुछ न मानिये और न इनकी आज्ञा का पालन कीजिये। संसार में स्वाभिमान को तिलाञ्जलि देकर जीना वृथा है। आज भारत की परतन्त्रता का सबसे बड़ा मुख्य कारण यही है। धन के घमंड में कुछ नर-लोलुप दीनों के साथ ऐसा ही व्यवहार करते हैं। परिश्रम और धन का इस जगत में दुरुपयोग हो रहा है। जिनके पास धन है वे निर्बलों का शोषण कर उससे प्राप्त धन को यहाँ तथा विदेशों में विलासिता की तृप्ति के लिये पानी की भाँति बहाते हैं। उन्हें दीन दरिद्र किसानों की कमाई का कोई ध्यान नहीं रहता। वे अपना आनन्द देखते हैं, उन्हें किसी के दुख सुख से क्या तात्पर्य। उन्हें तो चाहिए सुरा, सुन्दरी, नृत्य, कटाक्ष तथा युवतियों का मादक यौवन। ऐसे व्यक्तियों ने देश को पतन की ओर ढकेल दिया है।"

ग्रामवासियों पर कृष्णमुरारी के विचारों का बड़ा व्यापक प्रभाव पड़ा। सारी जनता उत्तेजित हो गयी और जमींदार पर आक्रमण कर उससे बदला लेने का विचार करने लगी। कृष्ण-मुरारी ने जब यह दृश्य देखा तो उन्होंने समझाते हुए कहा—

"भाइयो! इस समय क्रोध करने का समय नहीं है। हमें

अपना कार्य करना चाहिए। हमारा यह सिद्धान्त है कि वैरी के साथ भी सहानुभूति रखना चाहिए। हमारे प्राचीन परम्परा के अनुसार भी यही विचार आदरणीय माना गया है।" इतने में एक ग्रामीण भीड़ से निकल कर बोला—

"यदि हम इनको इसका दण्ड न देंगे तो ये बराबर ऐसा ही करते चले जायेंगे।"

"नहीं! उस मनुष्य से ऐसी आशा नहीं है जिसका अभिमान पैरों तले कुचला जा चुका है। जिसके पापों का भंडाफोड़ सबके सामने हो चुका है।"

"ऐसे व्यक्ति को समाज में रहने देना ही सबसे बड़ा पाप है।"

"यदि आपका कोई अंग कट जाता है तो क्या आप उसको काट कर फेंक देते हैं।"

"नहीं तो।"

"तब आपका कर्त्तव्य यह है कि आप उनको सुधार कर अपने में सम्मिलित कर लीजिये, यही उनके लिये सबसे बड़ा दंड होगा। यदि उसमें मनुष्यता का लेश मात्र भी होगा तो वे अपने को सुधार लेंगे और नहीं तो बुरे आदमी का भला कभी भी नहीं होता।"

सभी लोगों ने उस समय उनकी बात मान ली और अपने अपने घरों की ओर चल पड़े। उस दिन से जमींदार ने कभी भी किसी के ऊपर आँख तक न उठाई। वे लज्जा के मारे गड़े जा रहे थे। जब उन्हें यह विदित हुआ कि उत्तेजित जनता को समझाने वाले सज्जन कृष्णमुरारी ही थे, तब उन्हें बड़ी श्रद्धा हुई! उन्होंने अपने को बिल्कुल परिवर्तित कर दिया। किसानों के प्रति उनका व्यवहार सरल और सुबोध हो गया। क्रूरता बदल गयी

दयालुता में और अत्याचार की पराकाष्ठा सहानुभूति में। कृष्ण-मुरारी कई दिनों तक इधर उधर के गाँवों में अपने संघ का प्रचार करते करते अन्त में घर लौट आये।

× × ×

२५

निराशा से भरे स्वप्न में स्मृतियों की छाया की तरह अलका, जीवन की धाराओं में पड़ी किनारों की ओर सतृष्ण नेत्रों से देख रही थी। वह समाचारपत्रों में कृष्णमुरारी की योग्यता, विचार-पद्धति तथा विद्वत्ता का आभास पा चुकी थी। देश-प्रेम सबसे बड़ा प्रेम है। उसके लिए लोग अपना सब कुछ बलिदान कर देते हैं। कृष्णमुरारी की सफलता के सम्मुख उसकी विचारधारा मुड़ चली और सुदृढ़ तथा अचल भाव से खड़ी २ खाड़ी में जाकर गिरने लगी झर झर करती तथा उद्वेग तथा उल्लास से भरी हुई।

वर्षा हो चुकी थी। ग्रीष्म ऋतु से तपित आहें आँसुओं में बरस चुकी थीं प्रत्येक बनस्पत्ति पर, कण कण तथा स्थावर और जंगम पर। वायु में एक पुलकन थी, सिहरन थी। अलका अपने कमरे में खड़ी आकाश में निकले इन्द्रधनुष का दर्शन कर रही थी—तपी पृथ्वी से एक सोंधी बास निकल रही थी। ऋतु परिवर्तन ही जीवन परिवर्तन है। अलका में एक नई मादकता थी। वह विभोर थी उसी में कि एकाएक उसको

एक पत्र मिला। उसने खोला और सरसरी निगाह से पढ़ डाला। बीच में कुछ थमी, कुछ रुकी परन्तु फिर चल पड़ी गति के आवेग में और अन्त में रुकी। मुँह से एक शब्द निकला—'सुनील' और थोड़ी देर के लिए वातावरण शान्त हो गया परन्तु मौन होकर कदाचित एक विह्वल अन्तर्द्वन्द से भर कर॥

उसने सोचा कि मेरी कल्पना निर्मूल है। ज्योत्स्ना का दूसरा विवाह नहीं हुआ और न वह कर सकती है। कृष्णमुरारी के कार्यों से तो उसे और गर्व होगया है। सुनील पुनः उसके यहाँ जाने लगे और दोनों में पुनः वही विचार पैदा होने लगे, जैसे दो बिछुड़ी धारायें आपस में आकर मिल गयी हों, कुछ कोलाहल और द्वन्द करती हुई। सुनील ने मेरी बातें भी ज्योत्स्ना से कह दी हैं और उसने मेरे प्रति अच्छे ही विचार प्रगट किये हैं परन्तु ज्योत्स्ना में अभी परिवर्तन हुआ या नहीं यह बात रहस्यमय है। वह अवश्य परिवर्तित हुई होगी धूप-छाँह के खेल के समान। इच्छा होती है कि एक बार पुनः ज्योत्स्ना से मिलकर अपने अन्तिम विचारों का समाधान कर लूँ और फिर जीवन की मधुर कल्पनाओं से छेड़खानी करती रहूँ।

वह उठी और प्रस्तुत हो गयी, भविष्य के अंधेरे में गन्तव्य स्थान को टटोल टटोलकर ढूँढ़ने के लिए। चल पड़ी पुनः उस दिशा की ओर जहाँ से रहस्य की उलझन प्रारम्भ होती है और जहाँ जाकर समाप्त हो जाती है। आवेगों की व्याकुलता से भरी वह चल पड़ी, पलों तथा क्षणों को अवहेलना की दृष्टि से देखती हुई और अतीत के स्वप्नों को सजाने के लिए छोड़ती हुई। पहुंच गयी अपनी योजनानुसार अन्तिम छोर पर! ज्योत्स्ना का बंगला प्रकाश में छिप रहा था, सफेद आवरण ओढ़े। वह धड़-धड़ाती हुई, आवेग से भरी पहुँच गयी जहाँ ज्योत्स्ना थी और

देखा उसके प्रकाश में हँसता हुआ एक अल्हड़ युवक सुनील ! वह ठिठकी, हिचकी और रुकी केवल एक क्षण के लिए, कुछ सोचने के लिए परन्तु बढ़ चली फिर अपने मनोवेगों को शान्त करने। उसने दर्वाजा खोला और बोली—

"नमस्ते ज्योत्स्ना देवी ! आप कुशल से तो हैं।"

टूट गयी विवादों की शृंखला वाणी की सुकुमारिता से। ज्योत्स्ना खड़ी हो गयी अप्सरा की प्रतिमूर्ति सी और सुनील भी घूम पड़ा, आगन्तुक प्राणी से परिचय प्राप्त करने के लिए। परन्तु उनके बीच खेल गयी एक मुस्कुराहट हलकी सी किसी अज्ञात प्रेरणा से और उत्तर में ज्योत्स्ना का हृदय बोल उठा—

"मेरा बड़ा सौभाग्य है कि आप बड़े अवसर पर आयीं। हमें आप ही की आवश्यकता थी।"

"क्या सुनील बाबू आपकी आवश्यकता के लिए पर्याप्त नहीं हैं।"

सुनील अलका के भाव को समझ गया। उसने एक चुटकी लेते हुए कहा—

"आप से भी न रहा गया मिस अलका ! ईर्ष्या स्त्रियों का गुण जो है।"

ज्योत्स्ना सुनील को रोकते हुए बोल उठी—

"क्या करूँ हृदय पत्थर तो नहीं है, उसमें कोमलता भी है।"

"आप तभी बाहर से पत्थर और भीतर से पैनी हैं।"

"और भी हैं। वाणी से विद्वान और प्रमाणों से योग्य।" सुनील बोल उठा।

ज्योत्स्ना के कहने से अलका बैठ गयी। सुनील और ज्योत्स्ना भी बैठे। बैठते ही अलका ने कहा—

"ज्योत्स्ना देवी ! आप मुझे क्षमा करेंगी। मैंने आपको नारी नहीं समझा था।"

"तब क्या पुरुष समझ रक्खा था।" उसने हँसते हुए पूछा।

"नहीं उससे भी ऊँचा, क्योंकि आदर्श ही पूजनीय है।"

"इसके लिए आपका धन्यवाद है। परन्तु आप इस समय कैसे चली आयीं।"

"उन्हीं अपराधों की क्षमा मांगने और मि० सुनील से कुछ बातें करने।"

"हाँ, हाँ ठीक है। इनसे अवश्य बातें कीजिये। मैं तो यही आशा करती हूं कि आप लोगों की बातें जीवन पर्यन्त चलती रहें।"

दोनों लज्जित होकर चुप हो रहे। ज्योत्स्ना इन लोगों के लिए चाय लेने चली गयी तो सुनील ने पूछा—

"आपको आने की क्या अधिक उत्कंठा थी।"

"हाँ, उत्कंठा ही व्यक्ति के अतीत और भविष्य के बीच में होड़ बदा करती है।"

सुनील कुछ सोचने लगा। उसके मुख पर एक लालिमा दौड़ आयी और नेत्र विस्फारित होकर पृथ्वी को देखने लगे। उसने कुछ सोच कर कहा—

"आपने मेरे विषय में पत्र पढ़ कर क्या सोचा ?"

"कुछ विशेष नहीं परन्तु फिर भी वही जो एक घबड़ाया हृदय सोच सकता है।"

"अर्थात्.........।"

हँसती हुई तथा भावों को नेत्र में भरती हुई वाणी की लोच बोल उठी—

"आप अपने हृदय से पूछिये कि आपने मुझे पत्र क्यों लिखा था और .....।"

सुनील ने एक बार नेत्र उठाये और अलका ने भी। दोनों की छोटी छोटी पुतलियों ने क्या कहा, क्या सुना, क्या विचार किया? कौन जान सकता है। तत्काल ही वह क्षण समाप्त हुआ और ज्योत्स्ना चाय लिये आ पहुँची। दोनों के मुख पर एक लज्जा की लाली को देखकर ज्योत्स्ना ने कहा—

"अलका देवी! आप बड़ी भाग्यशालिनी हैं।"

"अब आप से अधिक नहीं। ज्वार उठ कर शान्त हो चुका है, उमंगे शिथिल हो चुकी हैं।"

ज्योत्स्ना चाय देती हुई बोली—

"मैं आप लोगों की सफलता पर बधाई देती हूँ और आशा करती हूँ कि आप लोग मेरे कार्यों में कुछ कुछ सहयोग देते रहियेगा।"

अलका और सुनील चुप थे। क्या कहते? पता नहीं कहाँ कहाँ के लोग दूर दूर से इस प्रकार आकर आपस में मिलकर एकाकार होजाते हैं कि आश्चर्य भी होता है और कौतूहल भी। यही संसार का विधान है कि मनुष्य अकेला से दुकेला हो जाता है। नियति के भौहों में बल पड़ रहे हैं या अनन्त की गहरी छाया पड़ रही है उसे कौन जान सकता है। जिस प्रकार हास्य में रुदन और रुदन में हास्य निहित है, उसी प्रकार जीवन में संयोग और वियोग है।

एक सप्ताह बाद ही ज्योत्स्ना ने अपने यहाँ ही सुनील और अलका के शुभ विवाह का प्रबन्ध किया। आसपास के लोगों तथा सम्बन्धियों को निमन्त्रण भेजा गया। अलका ने भी इसको स्वीकार कर लिया। सुनील तो पहले से ही उसकी ओर आकर्षित

हो चुका था। अब उसके मनोनुकूल घटना घट रही थी। उसकी आशायें फैल रही थीं बसन्त में रसाल मंजरियों की भाँति। ज्योत्स्ना, प्रभा, सुधा सभी मिलकर विवाह को सम्पन्न बनाने के प्रयत्न में जुट गयी थीं।

उमेश बाबू और सुरेश बाबू भी पर्याप्त मात्रा में सहयोग दे रहे थे।

दिन गया और रात्रि आयी, उद्वेग और उत्साह लिए। पल तथा क्षण के साथ साथ आकांक्षायें बलवती होती गयीं। सुख के दिन देखते ही देखते व्यतीत हो जाते हैं परन्तु दुख का एक एक पल एक एक युग के समान व्यतीत होता है। यौवन की प्रथम अंगड़ाई ही विवाह है। दिन आया पूर्ण उत्साह लिए। ज्योत्स्ना अब अधिक चिन्तित या दुखी नहीं थी क्योंकि उसके जीवन का मार्ग निर्धारित हो चुका था। आज इस उत्सव पर वह विशेष प्रसन्न थी। वह प्रातःकाल ही मि० दत्त के बंगले पर गयी। उस समय वह बैठे कुछ काम कर रहे थे। ऐसी बेला में ज्योत्स्ना को देखते ही वह खड़े हो गये और बोले—

"आप इस समय कैसे आयीं ?"

"मैं आपको एक निमन्त्रण देने आयी हूँ और साथ साथ भाग्यका प्रकाश देने।"

"मैं नहीं समझ सका कि आप क्या कह रही हैं।"

"आप को आज स्वयं समझ में आ जायेगा। सन्ध्या को हमारे यहाँ आपको आना पड़ेगा।"

"आप पहले बात तो बताइये। मैं रहस्यवादी नहीं हूँ जो अनुमान से ही सारी बातें समझ लूँ।"

"आप तो स्वयं समझदार हैं! क्या एक छोटी सी बात नहीं समझ सकते।"

"स्त्रियों की एक छोटी सी बात भी उल्लझन लिये होती है, उसको समझने के लिए बहुत बड़े मस्तिष्क वाले विद्वान की आवश्यकता है।'

"अच्छी बात है। आज सुनील कुमार का विवाह अलका कुमारी से होगा और आपका भी .. सुधा से।"

झेंपते हुए मि० दत्त ने कहा—

"आप मेरे पीछे बड़ी व्यस्त हैं। मैं इन उपकारों का बदला कैसे दे सकूँगा।"

"मैं उसकी इच्छुक नहीं हूँ। मनुष्य को यदि किसी दूसरे को हानि पहुँचाने का अधिकार नहीं है तो उसे प्रताड़ना या उसकी निन्दा का भी अधिकार नहीं है। यदि कोई किसी के जीवन को बना नहीं सकता तो उसे बिगाड़ना भी नहीं चाहिए।"

"आप तो बड़ा भारी आदर्श हमारे सामने रख रही हैं।"

"यह सब आप लोगों की कृपा से ही।"

मि० दत्त ने कृतज्ञता से भर कर उनका निमन्त्रण स्वीकार किया और सन्ध्या को आने का वचन दिया। ज्योत्स्ना वहाँ से चल पड़ी।

सन्ध्या होते ही बाबू उमेशचन्द्र का बंगला अतिथियों से भर गया। बिजलियों के प्रकाश से आँखें चकाचौंध हो जाती थीं, कृत्रिम दीपमालिका के प्रकाश में दो प्रेमियों का प्रेम फूल रहा था। बंगले के बड़े कमरे में, लोगों की उपस्थिति में सुनील और अलका का विवाह वैदिक रीति से समाप्त हुआ। ज्योत्स्ना ने उठकर मि० दत्त तथा सुधा का परिचय लोगों को दिया। वेदध्वनि तथा वैदिक नियमों के अनुसार उनका सम्बन्ध पुनः संगठित हुआ। लोगों ने बधाइयाँ दीं, भेंट दिये और दम्पति के शुभ जीवन के लिए कामनायें प्रगट कीं। लोग प्रसन्न थे। मि० दत्त सुधा से मिलकर इतने

प्रसन्न हुए कि कदाचित इसके पहले कभी नहीं हुए थे। उन्होंने अपनी भूल सब के सामने स्वीकार की और उसके लिए सब से क्षमा मांगी। विवाह के पश्चात् सब लोगों को भोजन कराया गया। ज्योत्स्ना, सुधा और लज्जा दौड़ दौड़ कर सब काम कर रही थीं। भोजन समाप्त होने पर सब लोग बैठे ही थे कि एकाएक नौकर ने कई एक समाचारपत्र लाकर लोगों के सामने रख दिया। लोगों ने पहले पृष्ठ पर ही देखा कि कृष्णमुरारी ने ग्रामीणों में बड़ी जागृति पैदा कर दी है जिसके कारण वहाँ के अधिकारियों ने उन्हें कई बार नोटिस दी परन्तु उनकी गति न रुकी। अतएव उनको किसी सभा में बोलने और गावों में घूमने की मनहाई कर दी गयी। अन्त में चेतावनी दी गई कि यदि आप पुनः किसी सभा में भाषण करेंगे तो गिरफ्तार कर लिए जायेंगे। इसके उत्तर में कृष्णमुरारी ने लोगों से संघ का कार्य पूर्ववत चलाने का अनुरोध किया और अपनी अनुपस्थिति में योजनाओं के क्रमिक विस्तार के लिए लोगों से अपील की थी। उन्हें तीसरे ही दिन एक सभा में भाषण देना है और उन्होंने आज्ञा की अवहेलना कर वहाँ जाने का पूर्ण विचार कर लिया है। इस समाचार को पढ़ते ही सभी लोगों में सनसनी फैल गयी। ज्योत्सना ने समाचार को पढ़ा और क्षण भर के लिए सोच में पड़ गयी। सभी लोगों ने ज्योत्स्ना की ओर देखा तो प्रतीत हुआ कि वह किसी प्रतिज्ञा की सिद्धि में तत्पर है। उसने मस्तक उठाया और दृढ़ स्वरों में बोली—

सम्मानित सज्जनों! आज इस पवित्र उत्सव पर हमारे लिए जीवन का सुवर्ण अवसर आया है। ऐसे अवसर मनुष्य के जीवन में कभी कभी आते हैं। आपको जानकर

यह आश्चर्य होगा कि मेरे पतिदेव जिनके लिए सरकार की ओर से अन्तिम आज्ञा दी गयी है कि वे कहीं भाषण न करें, मैं उनकी अनुपस्थिति में उनके स्थान पर काम करने जा रही हूँ। और आप लोगों से आशा है कि आप भगवान् से यह प्रार्थना करें कि मुझे वह कार्य वहन करने की शक्ति दे। मैं अपना सारा गर्व, सारी प्रतिज्ञा, सारा गौरव पैरों से कुचल कर देश के एक सच्चे भक्त को यह दिखलाने जा रही हूँ कि नारी भी पुरुष के कार्य में हाथ बटा सकती है। मैं पति की सेवा ही नहीं, देश और राष्ट्र की सेवा करने जा रही हूँ।"

यह कह कर ज्योत्स्ना ने पिता, भाई तथा भाभी के पैर छुये और सभी से प्रेमपूर्वक मिली। लोगों का आशीर्वाद और कामनायें लीं।

लोगों ने देखा एक आदर्श नारी दीप मालिका के प्रकाश को मन्द करती हुई, जीवन के सबसे प्रधान लक्ष्य की ओर अग्रसर हो गयी है।

× × × ×

२६

अल्मोड़ा नगर में एक विशेष अधिवेशन के लिए हफ्तों से तैयारियाँ हो रही थीं। दूर दूर से जनता-सेवा-संघ के प्रतिनिधियों को सूचना दे दी गई थी। गाँव में दूर दूर तक उसकी सफलता के लिए प्रयत्न किये जा रहे थे। कृष्णमुरारी को तो

भोजन करने तक का अवकाश न मिलता था। वह दिन रात व्यस्त रहा करते थे। मंगल पांड़े तो प्राणपण से इसमें संलग्न थे। रामचरन तथा अन्य सदस्यगणों का कहना ही क्या। वे दिन को दिन और रात को रात तक नहीं गिनते थे। कृष्ण-मुरारी का मकान पूरा दफ्तर बन गया था। वह उसी की चिन्ता में बैठे थे कि समाचारपत्र मिला। उन्होंने शीघ्रता से पन्ने उलटना आरम्भ किया। एकाएक एक स्थान पर उनकी दृष्टि अटक गयी—

कल बाबू उमेशचन्द्रजी के बंगले पर सुनील कुमार और अलका देवी का विवाह सुसम्पन्न हुआ। साथ में मि० एन० दत्त ने अपनी पूर्व परित्यक्ता पत्नी से पुनः सम्बन्ध स्थापित किया। नगर के प्रसिद्ध सज्जन और पदाधिकारी उपस्थित थे। ज्योत्स्ना देवी का प्रयास सफल हुआ। पढ़ लेने के पश्चात् कृष्णमुरारी ने एक लम्बी साँस ली कदाचित सन्तोष की नहीं एक उलझन की। उन्हें आश्चर्य हुआ कि अलका का विवाह सुनील से कैसे हुआ? फिर सुनील को मैं भली भाँति जानता भी नहीं। केवल उसका पत्र ज्योत्स्ना के नाम से आया था। ज्योत्स्ना का विवाह अभी किसी से नहीं हुआ क्या? अलका वहाँ कैसे पहुँच गयी और उसका प्रेम एक अपरिचित से कैसे होगया? नारी सचमुच रहस्यमयी है। यह विवाह ज्योत्स्ना के बंगले पर सम्पन्न हुआ और उसमें उसका विशेष सहयोग था, इसमें उसका कौन सा तात्पर्य था, कुछ समझ नहीं आता। वह इसी चिन्ता में थे कि मंगल पांड़े आ पहुंचे और बोले—

"प्रबन्ध तो सारा हो चुका है परन्तु दो एक गाँव वाले यहाँ आने से हिचकिचाते हैं।"

"क्यों, ऐसा क्यों?"

"वे लोग डर रहे हैं कि कहीं जमींदार उनपर अत्याचार न करें ।"

"उनसे कह दो कि यदि उन पर कोई कुछ करेगा तो उसकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर रहेगी ।"

मंगल पाँड़े के जानेके पश्चात् उनके मस्तिष्क में यही विचार-धारा बहने लगी—मि० एन० दत्त कौन है ? सुधा कौन है ? उमेशबाबू ने ज्योत्स्ना या मेरे विषय में क्या सोचा ? क्या किया कुछ विदित नहीं होता। वह इसी विचार में बह रहे थे कि एक आदमी ने आकर सूचना दी—

"हम लोगों को अन्न नहीं मिल रहा है जो कि यहाँ आने वाले को दे सकें। हम लोग जहाँ जाते हैं, वहाँ दुकानदार कहते हैं कि हम तुम्हारे हाथ सौदा नहीं देंगे क्योंकि सरकार की आज्ञा है।"

"कोई घबड़ाने की बात नहीं है। गाँवों में इसकी सूचना भिजवा दो। बात की बात में सैकड़ों मन अनाजों का ढेर लग जायगा। हमारे गाँव अब भी अनाज के भण्डार हैं।"

"परन्तु उनको सँभालेगा कौन ?"

"इसका मैं प्रबन्ध कर लूँगा।"

अधिवेशन के कार्यक्रम में शीघ्रता होने लगी। प्रतिनिधियों का झुण्ड आने लगा। लोगों ने अपने प्रस्ताव पहले भेज दिये थे। उसपर विचार हो रहा था। कृष्णमुरारी को पूरा विश्वास हो रहा था कि सरकारी आज्ञा तोड़ने के कारण उन्हें जेल जाना पड़ेगा परन्तु वह किंचित मात्र भी भयभीत न थे। वे कड़ी चट्टान की भाँति दृढ़ थे उस आज्ञा के सामने जिसे देश भक्त एक उपहार समझते हैं। वह बैठे अपने भावी कार्यक्रम पर विचार कर रहे थे कि उनको एक पत्र मिला—अलका का, उनकी पूर्व

स्मृति के अनुराग का। उनको बधाइयाँ दी गयी थीं और कार्य में सफलता की कामनायें प्रगट की गयी थीं।

इतने में एक व्यक्ति ने आकर सूचना दी कि आप से यहाँ के दारोगा मिलना चाहते हैं। उन्होंने तुरन्त ही उन्हें भीतर आने की आज्ञा दी। दारोगा के भीतर आने पर उन्होंने हँस कर पूछा—

"कहिए! आपने कैसे कष्ट किया?"

"आपको यही कहने आया हूँ कि आप इसमें भाग न लें।"

"क्यों? यह मेरी संस्था है और इसमें मैं कैसे भाग न लूँ।"

"यह तो ठीक है परन्तु आपको वहाँ जाने तक की आज्ञा नहीं है।"

"यह आज्ञा मिल चुकी है परन्तु मैं इसकी चिन्ता नहीं करता।"

"आप जो चाहें सो करें। मैं इसी हल्के का दारोगा हूँ और आपको मित्र के नाते सचेत करने आया हूँ।"

"आपकी सहानुभूति के लिए धन्यवाद है परन्तु मैं अपने प्रण से टल नहीं सकता।"

दारोगा के जाते ही उन्होंने सबको बुलाया और भावी आपत्ति की सूचना देकर संध्या के कार्यक्रम में लग गये।

ज्योत्स्ना पहुँच गयी अल्मोड़ा। उसने लोगों से पता लगाया तो मालूम हुआ कि आज ही अधिवेशन का प्रथम दिन है। वह भी खद्दर की साड़ी और अपने आवश्यक वस्तुओं को लेकर सभामण्डप में बैठ गयी। धीरे धीरे सारा पंडाल स्त्री पुरुषों से भर गया। कृष्णमुरारी दौड़ दौड़ कर सबको बिठा

रहे थे। ठीक समय पर जय जयकार के गगनभेदी नारों के मध्य सभा की कार्यवाही प्रारम्भ हुई। सर्वप्रथम बन्देमातरम् गान हुआ। तत्पश्चात् मंगल पाँड़े ने खड़े होकर जनता-सेवा-संघ के उद्देश्यों तथा सिद्धान्तों का स्पष्टीकरण किया और संघ के विकास तथा उसकी उन्नति के लिए ग्रामों का संगठन और रचनात्मक कार्यों पर प्रकाश डाला। इसके बाद ही हर्ष-ध्वनि के मध्य कृष्णमुरारी बोलने के लिए खड़े हुए। जनता के मुख पर एक प्रसन्नता खेल गयी। ज्योत्स्ना का हृदय धक धक करने लगा—उसके सम्मुख जीवन का सबसे बड़ा प्रश्न था। वह एकबार सिहरी अपने पति के तेज के आगे, उस महान यज्ञ के प्रणेता के सम्मुख जो अपने जीवन की आहुति में एक महान् उद्देश्य की परीक्षा ले रहा था। उसने एक बार साहस करके उनकी ओर देखा।

वे मुस्करा रहे थे, उन पर एक दिव्य आभा थी जिसके सम्मुख सभी नत थे।

"सज्जनो एवं देवियों! आज जनता सेवा संघ के प्रथम अधिवेशन पर मुझे आप लोगों का यह विशाल सहयोग देखकर अपार आनन्द हो रहा है। मेरी आशायें ऊपर उठ रही हैं और भविष्य में इसको विशाल रूप में देखने के लिए मेरी आँखें आपकी ओर लगी हुई हैं। इस संघ के उद्देश्यों को आप लोग सुन चुके हैं और इसके लिए जो जो प्रयत्न किया जा रहा है उससे आप परिचित हैं। आप लोग यह जानते हैं कि देश की वर्त्तमान स्थिति किस प्रकार क्षण क्षण परिवर्तित हो रही है। जब कि सारे देश अपनी रक्षा के लिए तन मन धन से संलग्न हैं तो आपका भी कर्त्तव्य है कि आप आपस के संगठन और

सहयोग से अपने देश को दूसरे के हाथों में पड़ने से बचावें। आज हम परतन्त्र हैं, दूसरे के पैरों के नीचे दबे पिस रहे हैं। हम अपने संस्कृति और सभ्यता को लात मार कर, विदेशियों के हाथ की कठपुतली बन रहे हैं, यह हमारी सबसे बड़ी दुर्बलता है .....।

इसी बीच में शहर कलक्टर पुलिस के साथ वहाँ पहुँच गये और पंडाल में घुस पड़े। जनता में एक खलबली मच गयी। कलक्टर धीरे धीरे मंच के पास आ गया और वारंट दिखाकर कृष्णमुरारी से बोला—

"आपको सरकारी आज्ञा तोड़ने के अपराध में गिरफ्तार किया जाता है।"

"क्या भाषण समाप्त करने की अनुमति मुझे दे सकते हैं।"

उसने कुछ सोच कर कहा—अच्छी बात है। पाँच मिनट में अपना भाषण समाप्त कर लीजिये। कृष्णमुरारी ने फिर कहना आरम्भ किया।

"अब आप लोगों ने देख लिया कि हम लोगों के पग पग पर कितनी रुकावटें हैं। हम आप से यही प्रार्थना करते हैं कि आप शान्त भाव से बैठे रहें, किसी भी प्रकार की घबराहट या चिन्ता की बात नहीं है। आप लोग पूर्ण सहयोग से अधिवेशन को पूर्ण सफल बनाइये, यह तो मेरे लिए सौभाग्य की बात है कि देश के लिए मैं जेल जा रहा हूँ। मेरे पश्चात् जो इसका भार सम्भालना चाहते हैं, वे आगे बढ़ें और अधिवेशन की कार्यवाही सुचारु रूप से चलावें। मुझे आशा है कि उन्हें मुझसे भी अधिक सफलता मिलेगी।"

वह मंच से उतर ही रहे थे कि एक स्त्री झट से आकर उनके पैरों पर गिर पड़ी और उनके पद-रज को माथे से लगाती हुई सभापति के आसन पर जा बैठी। वे चकित होकर देखते ही रह गये। एक अपरिचित नारी को सभापति के आसन पर बैठते देख सारी जनता हर्ष और उत्साह से उसकी ओर देखने लगी। लोगों में एक अपूर्व उमंग का संचार हुआ। कृष्णमुरारी ने घूम कर जब देखा तो वह धक रह गये। ज्योत्स्ना! और वे वहीं खड़े होकर उसे देखने लगे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि मानों वे स्वप्न देख रहे हों परन्तु जब वह बोलने लगी तो वे स्तम्भित रह गये। प्रेम, संकोच और एक लज्जा के कारण उनका मस्तक झुक गया। उन्होंने मन ही मन उस नारी को जिसको एक बार घृणा की दृष्टि से देखा था, जिसके वियोग ने उन्हें इतना प्रतिभाशाली बनाया था, वही ज्योत्स्ना आज उनके कार्य को पूरा करने के लिए उनका भार वहन कर रही है। उन्होंने सुना ज्योत्स्ना कह रही थी—

"सज्जनों और देवियों! आप एक नारी को इस स्थान पर देखकर आश्चर्य चकित होंगे परन्तु इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं। पुरुष को पूर्ण करने वाली नारी ही है, उसको महान और उन्नति के शिखर पर चढ़ाने वाली स्त्री ही है। मैं आपके इस अधिवेशन के सभापतिजी की...... धर्मपत्नी हूँ।"

सारा मंडप जयघोष से काँप उठा।

इतना कहकर वह मंच से उनके समीप आ गयी। गले में माला पहनायी, उनकी आरती उतारी, चन्दन लगाया और पैरों को स्पर्श किया। कृष्णमुरारी ने हँसते हुए कहा—

"ज्योत्स्ना! अब मुझे विश्वास है कि मेरा अधिवेशन सफलतापूर्वक समाप्त होगा और संघ का कार्यक्रम पूर्ववत् चलता रहेगा। तुमने मेरी और घर की लाज रख ली।"

"आपके आशीर्वाद से मैं उसको पूर्ण करूँगी।"

इसी बीच में कलक्टर ने कहा—

"महाशय! शीघ्रता कीजिये! देर हो रही है।"

समाप्त